वि. स. खांडेकर

मोगरा फुला

मोगरा फूला

सामाजिक पृष्ठभूमि पर रचित
मार्मिक उपन्यास

लेखक
वि० स० खांडेकर
अनुवादक
रा० र० सर्वटे

२००२
सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

ISBN 81-7309-029-7

प्रकाशक
मंत्री,
सस्ता साहित्य मण्डल,
एन ७७, पहली मंजिल, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-११०००१
फोन : ३३१०५०५

शाखा : १२६, जीरो रोड, इलाहाबाद
फोन : ०५३२-४०००३४

●

तीसरी बार	:	२००२
प्रतियाँ	:	१०००
मूल्य	:	३५.००

●

मुद्रक
विजयलक्ष्मी प्रिंटर्स
नोएडा

प्रकाशकीय

कुछ वर्ष पूर्व हमने एक उपन्यास-माला प्रकाशित करने की योजना बनाई थी। कल्पना यह थी कि हिन्दी के एक मौलिक उपन्यास से आरंभ करके भारत की प्रमुख भाषाओं के चुने हुए उपन्यासों के हिन्दी रूपान्तर पाठकों को सुलभ करें। इस योजना के पीछे मूल उद्देश्य यह था कि हिन्दी के पाठकों को उत्तम कृतियां पढ़ने को मिलेंगी, साथ ही भारतीय भाषाओं के लेखकों में पारस्परिक निकटता स्थापित होगी और एक-दूसरे के साहित्य से परिचय बढ़ेगा।

इस योजना के अन्तर्गत अब तक हिन्दी, मराठी, बंगला, तमिल, कन्नड़, गुजराती आदि भाषाओं के अनेक उपन्यास निकल चुके हैं। हमें यह कहते बड़ा हर्ष होता है कि इन उपन्यासों को पाठकों ने बहुत ही पसन्द किया है और कुछ उपन्यासों के तो कई-कई संस्करण भी हो चुके हैं।

इसी शृंखला में मराठी के विख्यात लेखक श्री खांडेकर के एक अत्यन्त हृदय-स्पर्शी उपन्यास का हिन्दी अनुवाद निकाला गया था। इस उपन्यास की कथा वैसे सामाजिक है और उसमें इतना कौतूहल, भावनाओं का इतना उतार-चढ़ाव और इतनी संवेदनशीलता है कि पाठक उसे पढ़ते-पढ़ते विभोर हो उठते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, मानो उपन्यासकार ने मानव के अन्तर को इस कृति में खोलकर रख दिया है।

खांडेकरजी की लेखन-शैली बड़ी प्रभावशाली है। उनके एक अन्य उपन्यास पर उन्हें भारतीय ज्ञानपीठ का एक लाख रुपये का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। प्रस्तुत उपन्यास का अनुवाद इतना सुन्दर हुआ है कि पढ़ने में मूल का-सा आनन्द आता है।

उपन्यास निकलने के कुछ ही समय बाद उसकी प्रतियां खप गईं और उसकी मांग बराबर बनी रही। पाठकों के विशेष आग्रह पर हमने इसका पुनर्मुद्रण किया है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यह तथा इस माला के सभी उपन्यास आगे और भी चाव से पढ़े जाएंगे और हमें उन्हें बार-बार छापने के अवसर मिलते रहेंगे।

मंत्री

मोगरा फूला

: १ :

"दादाजी !..."

मिलिंद की इस पुकार का उत्तर नहीं मिला। ऐसा प्रायः होता नहीं था। उसने सोचा, आराम-कुर्सी में पड़े-पड़े दादाजी सो गए होंगे। धीरे-से पंजों के बल चलता हुआ वह उनके नजदीक गया। फिर भी दादाजी हिले नहीं, बोले नहीं। उनकी गोद में एक पुस्तक रखी थी। वह खुली हुई थी। लेकिन उनकी नजर थी सामने—एक बड़े फोटो की ओर। मिलिंद को उस फोटो में दिखाई देती अपनी मां की किसी भी तरह याद नहीं है।

दादाजी की आंखें खुली हुई थीं। उनका इस प्रकार देखना मिलिंद को बड़ा अजीब-सा लगा। हर सोमवार को वह नानी के साथ बाबुलनाथ के मंदिर जाया करता। उस मंदिर के सामने एक अन्धा बैठा रहता। उसके सामने रखी थाली में नानी एक पैसा डाल देती थी। हर बार वह उस अंधे की आंखों की ओर देखता था—कुतूहल से, किन्तु भयभीत मन से। फिर उस अनामा भय से उसका मन डर जाता। दादाजी की ओर देखते-देखते उस अंधे की आंखें उसके स्मृति-पटल पर उभर उठीं।

दादाजी ने पुस्तक के साथ आंखें भी बन्द कर लीं। थका हुआ बूढ़ा मजूर जिस तरह 'हा...श्...श्...करता है, उसी तरह उन्होंने 'श्री हरि, श्री हरि' कहा और "लागले नेत्र रे पैलतिरी" (आंखें उस पार लग गई रे) यह पद गुनगुनाने लगे। फिर उदास हँसी हँसते हुए बुदबुदाए—'उस पार'—उह ! उस पार क्या ! काव्य—यह निरा काव्य है। और किसीसे जैसे बातें कर रहे हों, उस तरह उन्होंने विकार-दर्शक गर्दन हिलाई, मानो वह कहना चाहते थे, "जीवन-समुद्र विशाल है, चित्र-विचित्र है, जितना सुंदर उतना ही भयंकर है; पर

उसका न इधर छोर है, न उधर। इस समुद्र मे मनुष्य का भक्ष्य होनेवाली मछलियां भरपूर हैं, लेकिन मनुष्य जिनका भक्ष्य बन सकता है ऐसी शार्क मछलियों की संख्या भी उसमें कोई कम नहीं।

: २ :

लम्बी सांस छोड़कर दादाजी ने आंखें खोलीं और यह देखने के लिए कि कितने बजे हैं उन्होंने गर्दन घुमाई ! मिलिंद नजदीक ही चुपचाप खड़ा है, यह अब जाकर उनके ध्यान में आया। खरगोश के बच्चे को जिस तरह कोई सहलाता है उसी तरह उसकी पीठ पर प्यार से हाथ फेरते हुए दादाजी ने पूछा, "राजाधिराज मिलिंद महाराज, क्या हुक्म है ? क्या खाना खाने चलें ?"

"रसोई तो कब की बना ली है नानी ने, पर मौसी कहां आई है अभी तक ?"

"अभी तक ?" इन शब्दों के कानों में पड़ते ही दादाजी चौंक उठे। बंदूक की आवाज सुनते ही पेड़ पर बैठा हुआ पक्षी जिस तरह घबड़ाकर पंख फड़फड़ाता है, उसी तरह उनके मन की स्थिति हो गई। उन्होंने कलाई की घड़ी पर निगाह डाली। साढ़े नौ हो गए थे। नंदा दोपहर चार बजे बाहर गई थी और अभी तक नहीं आई। साढ़े पांच घंटे ! उनका पितृ-मन एकदम बेचैन हो उठा। तुरंत व्यवहारी मन उन्हें संतोष देने लगा—यह बंबई है भैया, बंबई ! यहां मनुष्य मनुष्य होता है, केवल अपने स्वप्न में, अन्यथा उसका मूल्य एक अति विशाल मशीन की एक छोटी-सी कील के बराबर ही है।

उदास मिलिंद ने जमुहाई ली। उसकी पीठ थपथपाते हुए दादाजी बोले, "अब मौसी की राह मत देख। जा, जाकर खाना खा ले।"

ठुनकते हुए मिलिंद ने उत्तर दिया, "मौसी के आने तक मैं खाना नहीं खाऊंगा। खाना खाने के बाद वह मुझे कल की कहानी जो आगे सुनानेवाली है।"

"कहानी मैं सुना दूंगा। जा, खाना खा ले।"

"अं हं ! मौसी जैसी कहानियां कहां आती हैं आपको ? आपकी वे राम और शिवाजी की कहानियां मुझे अच्छी नहीं लगतीं।" वक्ता जैसे रंग में बोल रहा हो, उस तरह मिलिंद कहने लगा, "दादाजी, कल की मौसीवाली कहानी में एक भूत है, भूत ! खूब बड़ा सारा ! राक्षस कहते हैं उसे। भूत की कहानियां बहुत अच्छी लगती हैं मुझे। कल की उस कहानी में एक राजा का लड़का है। उसका नाम अं...अं...हं... आम्लेट...इस आम्लेट के बाप का भूत आता है उससे मिलने, हां !"

मिलिंद का राक्षस यानी ब्रह्म-राक्षस और राजकुमार आम्लेट याने हैम्लेट, यह ध्यान में आते ही दादाजी को हंसी आ गई, लेकिन उस नन्हे वक्ता का रंग में भंग न हो, इसलिए उन्होंने उसे रोक लिया। पर मन में वह नंदा पर नाराज हुए। हैम्लेट की कहानी क्या नन्हें-मुन्नों को सुनाने की कहानी है ? अंग्रेजी लेकर नंदा इस वर्ष एम० ए० हुई। कुछ ही नंबरों से उसे फर्स्ट क्लास न मिल पाया। इतनी होशियार और इतनी विचारशील। पर अभी तक उसकी समझ में यह नहीं आता कि छोटे लड़कों को कौन-सी कहानियां कहनी चाहिए। बचपन होता है समुद्र-तट की नरम-नरम बालू में छोटे-छोटे घरोंदे बनाने का समय। इस अवस्था में, हिमखण्ड कितना प्रचण्ड होता है, उसकी विशाल देह समुद्र के भीतर छिपी बैठी रहती है और बड़े-बड़े जहाजों को वह हंसते-खेलते किस तरह जल-समाधि दे देता है, यह सब नन्हें-मुन्नों को बताने की क्या जरूरत ?

: ३ :

यह देखकर कि दादाजी कुछ बोल नहीं रहे हैं, मिलिंद ने बात बदली। दादाजी के बदन पर झुककर उनसे जैसे कोई गुप्त बात कह रहा हो वैसे वह उनसे कानों में धीरे-से बोला "दादाजी, मौसी बिल्कुल खराब हो गई है आजकल। कुछ दिन पहले वह मेरे लिए बड़े अच्छे-अच्छे हवाई जहाज बनाकर दिया करती थी, पर आज सुबह जब मैंने उससे हवाई जहाज बना देने को कहा तो उसने मुझे एक चपत मार दी और

फिर आंखें पोंछती हुई खिड़की के पास आकर खड़ी हो गई। मुझसे कुट्टी कर ली है उसने।"

नंदा का मन ऐसा तितर-बितर क्यों हो गया है, यह दादाजी जानते थे। पर मिलिंद से यह समझाकर कैसे कहा जाय? पांच महीने पहले हवाई दुर्घटना में हुई शेखर की मृत्यु के कारण जीवन की देहलीज पर ही नंदा को बड़ी ठेस लगी थी। उसकी अपनी गृहस्थी का सुन्दर सपना टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया था। उस भग्न स्वप्न का प्रत्येक कण उसके कलेजे में चुभ रहा था। किसी भी बात को बिल्कुल मन लगाकर करना उसका स्वभाव था। ऐसे मनुष्यों की सभी भावनाएं उत्कट होती हैं। उसका यह पहला प्रेम भी इसी तरह...

: ४ :

"सुना आपने?" बीच के दरवाजे का परदा एक तरफ हटाकर भीतर आते हुए अम्मा ने प्रश्न किया। दादाजी ने अपनी तंद्रा में ही उस ओर देखा। जैसे सितार का तार टूट जाय, कुछ उसी तरह उनके हृदय में हुआ। छः वर्ष पहले अम्मा का चेहरा किसी तरो-ताजे गुलाब की तरह दीखता था। वह गुलाब अब बिल्कुल मुरझा गया था। छः वर्ष पहले सुमित्रा चल बसी। अब नंदा पर दुःख आ पड़ा। विवाह-वेदी पर चढ़ने से पहले ही यह दुर्घटना हो गई। यह भी एक भाग्य की ही बात हुई, वरना...

दादाजी ने अम्मा की तरफ घूरकर देखा। बादलों से भरे हुए आकाश की तरह उन्हें उनकी आंखें लगीं। उनके मन में आया—मैं अपने दुःख नई-नई पुस्तकों की संगति में, अथवा सन बयालीस के आंदोलन की यादों में भुला लेता हूं। हृदय के घाव पर काव्य अथवा दर्शन की फूंक मार सकता हूं, पर बेचारी इस मां के लिए ये रास्ते भी बन्द हैं।

"देखो, कितनी रात हो गई और लड़की का अभी तक पता नहीं।"

अम्मा के स्वर में खरगोश के दिल की तरह धड़कन थी। दादाजी को वह महसूस हुई। पर उधार का जोश लाकर वह बोले, "आ जायगी जी, थोड़ी देर में। बैठी होगी कहीं अपनी सहेलियों से गप्पें लगाती हुई! आजकल की इन चहकनेवाली चिड़ियों को समय का होश ही नहीं रहता कभी-कभी! आजकल के इन लड़के-लड़कियों की चिन्ता अब कम ही करनी चाहिए। वे तो निकल पड़े हैं चांद पर पिकनिक करने। हम जो पच्चीस साल की उम्र में पढ़ते थे, वह पलने में ही उनके कानों में पड़ जाता है, समझी!"

अम्मा को जरा ढाढस हो, इसलिए दादाजी यों बोल रहे थे, पर अम्मा से रहा नहीं गया। वह बीच ही में बोल पड़ीं :

"आप तो बस हमेशा इसी तरह की बातें करते हैं। लड़की बी० ए० में थी, उस वक्त कितने बढ़िया-बढ़िया रिश्ते आये थे। पर मेरी सुनता कौन है इस घर में! जब देखो तब लड़की की वकालत!" बोलते-बोलते मां आराम-कुर्सी के पास गईं। अपना दायां हाथ कुर्सी पर रखकर कातर स्वर में बोलीं, "इस लड़की का मन ही नहीं समझ पा रही हूं मैं। परसों एक साड़ी उसे बड़ी पसन्द आई। दूसरे दिन उसके लिए मैं वह खरीद लाई। दो दिन उसने वह पहनी, हँसी; पर तीसरे दिन सारी गाड़ी उलट गई। आज दोपहर को उसने खाना भी नहीं खाया ठीक से। हाथ धोकर कमरे में घुसी और भीतर से कुंडी लगाकर बैठी रही। चाय के वक्त भी गुमसुम रही। ये आजकल की लड़कियां और उनके ये प्रेम! बुरा वक्त क्या कभी कहकर आता है? बड़ों-बड़ों की लड़कियां शाम को घूमने जाती हैं और दूसरे दिन कहीं भी उनकी लाशें पड़ी या तैरती मिलती हैं।" बोलते-बोलते उनका गला भर आया। वह थोड़ा रुकीं और आंचल से आंखें पोंछती हुई सामने लगे सुमित्रा के फोटो की ओर देखने लगीं।

: ५ :

अमंगल की आशंका की तरह तेजी से बढ़नेवाली विष-लता दुनिया

में दूसरी कोई नहीं! अम्मा की बातें सुनकर दादाजी विलक्षण रूप से बेचैन हो उठे। उनके मन को यह शक छू गया कि शाम को घर से बाहर जाते समय लड़की कमरे में कहीं कोई चिट्ठी-विट्ठी लिखकर न रख गई हो। सुन्न मन से वह उठे और भारी कदमों से नंदा के कमरे की ओर जाने लगे। जाते-जाते उन्होंने खिड़की से झांककर बाहर देखा, इस धुंधली आशा से कि नन्दा सड़क पर शायद कहीं दीख जायगी।

लम्बी-चौड़ी सड़क पर लोगों की भीड़ थोड़ी कम हो गई थी। मगर मोटरों की आंख-मिचौनी अभी तक चल ही रही थी। सामने की इमारतों की हर मंजिल के हर कमरे में रोशनी हंस रही थी—नाच रही थी। वे इमारतें चमचम चमकनेवाली जुगनुओं से भरे हुए वृक्षों की तरह लग रही थीं। आकाशवाणी के मधुर स्वरों की लहरी वायु की तरंगों पर तैर रही थी।

महानगरी में से बहनेवाली उस महानदी की ओर दादाजी ने देखा, पर उन्हें नन्दा जैसी आकृति का आभास कहीं नहीं हुआ। लकवे से शिथिल और सुन्न हुए शरीर की तरह उनके मन की स्थिति हो गई। इस दुनिया में मनुष्य कितना एकाकी है, कितना असहाय है, यह महसूस करके वह जहां-के-तहां ठिठक गये। उन्हें लगा, मनुष्यों से भरी हुई इमारतें नहीं हैं ये। ये सब कबूतरखाने हैं। इन कबूतरखानों के कबूतर अपनी-अपनी बित्ते-भर की जगह में आनंद से घूम रहे हैं। पर एक कबूतरखाने के कबूतरों का दूसरे कबूतरखाने के कबूतरों के सुख-दुख से कोई सम्बन्ध नहीं। इसी तरह के एक कबूतरखाने का एक बच्चा-कबूतर आज घर नहीं लौटा है। उसके कलेजे में लगा जख्म क्या अचानक फटकर बहने लगा होगा? क्या उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया होगा और निढाल होकर कहीं गिर पड़ा होगा?

: ६ :

दादाजी ने नन्दा के कमरे का दरवाजा खोला। रोशनी के बटन पर अंगुली रखी। क्षण-भर के लिए उनका हाथ कांप उठा।

कमरा प्रकाश से जगमगा उठा। कितना सुन्दर दीख रहा था वह कमरा! सब बिल्कुल कितना साफ-सुथरा और जहां-का-तहां था। पलंग पर बिछी हुई चारखाने की सुन्दर हरी चादर में कहीं भी शिकन नहीं थी। तकिये पर हाल ही में धोबी के यहां से धुलकर आया हुआ गिलाफ चढ़ा हुआ था। मेज पर रखी फूलदानी के रंगबिरंगे फूल ऐसे लग रहे थे मानो खेलकर घर वापस जानेवाले बालक एक-दूसरे से बातें कर रहे हों। कमरे की हर चीज में नंदा की सौन्दर्य-दृष्टि प्रतिबिम्बित हो रही थी। शेखर के प्रति उसके आकर्षण में भी यही सौन्दर्य-प्रेम रहा होगा। बड़ा रौबदार दीखता था वह। हवाई जहाज के चालक की पोशाक में तो...

पर मौत किसीका भी खयाल नहीं करती। उसे किसीकी कोई कद्र नहीं होती। जीवन में आनेवाली वह अनादि, अनंत और अंधी आंधी है।

दादाजी कोने में रखी पुस्तकों की शेल्फ की ओर मुड़े। अभिमान और सन्तोष की एक मिली-जुली लहर उन्हें क्षण-भर के लिए सुख दे गई। नन्दा की बुद्धि को बचपन में ही वह पहचान गये थे। उसके पठन-पाठन को उचित दिशा में उन्होंने मोड़ा था और विभिन्न विषयों की रुचि उसके मन में पैदा की थी।

वह सराहना-भरी दृष्टि से उधर ही देखने लगे। शेल्फ पर की सारी पुस्तकें बड़े करीने से लग रही थीं। कवायद के लिए खड़े किये गए बालकों की तरह वे लगी हुई थीं। शेक्सपीयर, इब्सन, शा, चेखव, ये सब नंदा के प्रिय नाटककार थे और कबाड़ी बाजार से चुनचुनकर खरीदे गये महाभारत के ये मराठी खण्ड। यह रहा उसके प्रिय भवभूति का उत्तररामचरित—और यह है हैमिंग्वे, जो आजकल उसे बड़ा प्रिय लगने लगा है...

बहुत देर तक उनसे उन पुस्तकों की ओर देखा नहीं जा रहा था। नंदा इतनी बुद्धिमती! इन सब ग्रंथकारों से प्रेम करनेवाली नंदा! कहीं उसने अपने साथ कुछ कर-करा तो नहीं लिया। मनुष्य की बुद्धि और उसकी भावना इन दोनों का मेल इस दुनिया में कभी ठीक नहीं

बैठता।

दादाजी बहुत बेचैन हो गए। वह जल्दी-जल्दी नंदा की मेज की ओर मुड़े। मेज पर बायीं ओर दो पुस्तकें पड़ी हुई थीं। उनमें से एक बड़ी पुस्तक उन्होंने उठाई : वह था महाभारत का एक खण्ड। उसमें एक चिन्ह दिखाई दिया। बड़ी उत्सुकता से दादाजी ने वहीं से पुस्तक खोली। वह चिन्ह याने, नंदा की किसी सहेली के विवाह का निमंत्रण-पत्र था। महाभारत के उस पृष्ठ पर कथा थी सावित्री की—पति के प्राणों को यम-पाश से मुक्त करनेवाली पतिव्रता की। नंदा यह आख्यान पढ़ रही है। तो क्या अभी तक शेखर की मृत्यु का ही विचार कर रही है वह?

उन्होंने झट से उसे रखा और दूसरी पुस्तक उठाई। वह था हैम्लेट नाटक। आगरकर द्वारा किया गया मराठी अनुवाद। नंदा शेक्सपियर के लिए कितनी दीवानी है, यह दादाजी जानते थे उसके अंग्रेजी के प्रोफेसर नलिनीरंजन दास शेक्सपियर के परम भक्त थे। और नंदा थी उनकी बड़ी प्रिय शिष्या। दासबाबू का एक प्रिय वाक्य अनेक बार दादाजी से कहा था उसने। दासबाबू हमेशा कहा करते—"गांधीजी को मैं बहुत मानता हूं। पर मनुष्य क्या चीज है और दुनिया कितना बड़ा अजायबघर है, इसका ज्ञान गांधीजी की अपेक्षा शेक्सपियर को अधिक था। गांधी थे आधे-चतुर। दुनिया में पूरा चतुर एक ही मनुष्य हो गया है—शेक्सपियर!"

हैम्लेट में भी वैसा ही चिन्ह दीख रहा था। दादाजी ने वह पन्ना खोला। तीसरे अंक का चौथा दृश्य था वह। हैम्लेट और उसकी मां इन दोनों के बीच आमने-सामने होनेवाले संघर्ष का। उस पृष्ठ पर म्लेट का एक भाषण था, जिसके दोनों तरफ लाल पेंसिल की आड़ी-टेढ़ी रेखाएं दिखाई दे रही थीं।

दादाजी उस भाग को पढ़ने लगे। हैम्लेट मां से कह रहा था—"तेरी विषय-वासना की किस्म बड़ी अपूर्व है। तेरी बराबरी का मैं तेरा लड़का—मेरे जीवित होते हुए तेरह दिनों के भीतर ही तूने अपने उस प्रेमी से विवाह कर लिया। इसलिए क्या तू साक्षात राक्षसी नहीं है?

तेरी काम-वासना को जैसे उफान आ गया है। घूरे पर जिस तरह सुअर लोटते हैं, उसी तरह उस अधम को अपने बिस्तर पर ले जा, और एक दूसरे को गले लगा, सीने से चिपका, चुम्बन ले, मनमानी धींगामस्ती कर। उठ यहां से। मुझे अपना काला मुंह न दिखा।"

: ७ :

उन आड़ी-टेढ़ी लाल रेखाओं की ओर दादाजी चमत्कारिक दृष्टि से देखने लगे। धोबी से धुलकर आये कपड़ों से भरी अलमारी से सांप निकल पड़ें, कुछ इसी तरह का उन्हें हैम्लेट का वह भाषण पढ़कर लगा। ये निशान किसने लगाए? यदि ये नंदा के हों तो एक ही समय सावित्री जैसी पतिव्रता का आख्यान और हैम्लेट की मां जैसी कुलटा की कथा वह क्यों पढ़ रही है? उसके मन में कौनसा तूफान उठ रहा है? सावित्री और हैम्लेट की मां—कहां अमृतफल और कहां लाल इंद्रायण? कहां ऐन दोपहर का सूर्य-प्रकाश और कहां आधी रात का अंधेरा।

बेचैन मन से दादाजी ने मेज की बायीं दराज खोली। उसमें रबर, अंकुड़ियां, पेंसिल, रंग-बिरंगे फीते, दो-चार फाउन्टेन पेन, इस तरह की बहुत-सी चीजें थीं। उसे बंद कर वह दायीं दराज खोलने लगे, पर वह बाहर नहीं खिंच रही थी। नंदा उसमें ताला लगाकर गई है, यह उनके ध्यान में आया। इस दराज में क्या-क्या रखा होगा भला? दूसरों से छिपाने लायक कुछ होगा? नींद की गोलियां? कोई विषैली दवा?

उन्हें अपने हृदय की कोमलता पर स्वयं ही हँसी आई। वह विचार करने लगे—बहुधा शेखर के पत्र उसने इस दराज में सुरक्षित रखे होंगे। उसका एक सुन्दर फोटो भी था उसके पास। वह भी इस दराज में होगा। जिस तरह भगवान को प्यारे हुए अपने बच्चे के खिलौनों को भी मां सुरक्षित रखती है, उसी तरह की बात है यह! शेखर गया—एक सुनहरा सपना समाप्त हो गया। अब उसकी स्मृतियों के मृगजल में नंदा कितने दिन गोते खाती रहेगी? यादों के धागों से हृदय का झूला

बांधकर सिवा दुःख के वह और क्या पायेगी ?

: ८ :

"श्रीहरि ! श्रीहरि !" इस प्रकार बुदबुदाते हुए उन्होंने अपनी गीली पलकों के किनारे पोंछे। नंदा का कोई पत्र नहीं मिला, इसका उन्हें संतोष हुआ। वापस लौटने ही वाले थे कि मेज की दायीं तरफ पड़ी हुई एक सुन्दर नोटबुक की ओर उनका ध्यान गया। नंदा द्वारा लिये गए नोट्स को कापी होगी यह, ऐसा उन्होंने सोचा। अच्छे सुभाषितों को नोट करके रखने का भी शौक था उसे। कुतूहल से वह नोटबुक उन्होंने खोली। उसका पहला पृष्ठ कोरा था। परन्तु दूसरे पृष्ठ पर के कुछ शब्दों को पढ़ते ही वह चौंक पड़े। अनजाने आगे पढ़ने लगे :

"कली धीरे-धीरे खिलती है। लजीली आंखों से वह प्रकाश का स्वागत करने लगती है। अनजाने वह फूल बन जाती है। वह फूल सुगंध बिखेरता रहता है। वायु की लहरें उस सुगंध को विवाह-समारोह में लगाए जानेवाले इत्र की तरह दशों दिशाओं को फैलाने लगती हैं। फिर वह फूल धीरे-धीरे कुम्हलाने लगता है। यह सब कैसा सुसंगत है ! ईश्वर के राज्य में न्याय है, इसकी साक्षी देनेवाला है। परन्तु शेखर जैसी एकाध कली, जीजी जैसी एकाध कली, खिलने से पहले ही झड़ पड़ती है। यह क्यों ? इसमें किसका दोष है ? उस कली का ? या ईश्वर का ? पर क्या ईश्वर इस दुनिया में है ? या वह एक महज बिजूका है ? और अगर ईश्वर है, फिर भी वह सर्वसाक्षी है, दयाधन है, यह ढोंग मनुष्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी क्यों करता रहे ?"

दादाजी पन्ने उलटकर पढ़ने लगे :

"दो वर्ष हुए होंगे। हां, दो ही। हम तीन-चार सहेलियां समुद्र-तट पर गई थीं। चांदनी रिमझिम बरस रही थी। आकाश से पृथ्वी तक फैले हुए उस क्षीरसागर में देह की शक्कर घुली जा रही है, ऐसा लग रहा था। 'अभी और थोड़ी देर बैठो। इतना डरने की क्या जरूरत है ? यह कोई चंबल की घाटी तो है नहीं।' किसी एक सहेली ने कहा हम

बड़ी देर तक बैठी रहीं और प्रकृति का वह मूक संगीत सुनती रहीं, बिल्कुल मंत्र-मुग्ध होकर। दस बजने को आये। तब अनिच्छा से सब उठीं। फिर तो सबको जल्दी-से-जल्दी घर पहुंचने की उतावली थी। एक ज़रा अंधेरी-सी गली से हम लोग जल्दी-जल्दी जा रही थीं कि मैं एकदम रुकी। आनंदित हो उठी और जहां-की-तहां ठिठककर रह गई। एक घर के सामने दरवाजे की कमानी पर रातरानी फूली हुई थी। शरारती नलू चुटकी लेती हुई मुझसे बोली, 'पहला प्रेम क्या इसी प्रकार होता है ?' शेखर से हाल ही में मेरी पहचान हुई थी। नलू का वह वाक्य सुनकर सब सहेलियां खिलखिलाकर हँस पड़ीं। मैं लज्जा से लाल हो गई। फि[illegible] जल्दी-जल्दी चलने लगे हम लोग। वे सुगंधित फूल दूसरे दिन कुम्हल[illegible] गए होंगे, पर दिल को दीवाना कर देनेवाली उनकी वह खुशबू मेरे मन के अंतरंग में अभी भी महक रही है। लगता है, उसे खूब सूंघू, खूब सूंघू, इतना कि उस खुशबू से सारी सुधबुध जाती रहे। शेखर, रातरानी तुम्हें अच्छी लगती थी क्या ?"

नंदा उस नोटबुक में अपने कोमल मन का तूफान नोट कर रही थी। वह नोटबुक ही उसकी अंतरंग सहेली बन गई थी। दादाजी को लगा कि नंदा की ये स्वयं अपने-आपसे हो रही बातें उसके अनजाने में मुझे नहीं सुननी चाहिए। पर आगे पढ़ने का लाभ भी वह संवरण नहीं कर पा रहे थे। आगे का पृष्ठ खोलकर वह पढ़ने लगे :

"...इलिजाबेथ ब्राउनिंग, मुझे तुझसे डाह होती है। अमावस के अंधेरे में शुक्र तारा उदित हो जाय, उसी त[illegible] [illegible]णशैया पर पड़े हुए तेरे जीवन में राबर्ट आया। इसीलिए तू हर्षावेग से लिख सकी :

" 'जब प्रथम बार उसने मुझे चूमा तो चूमा मेरे इस हाथ की उन अंगुलियों को, जिनसे मैं लिखती हूं, उसी क्षण से मेरा हाथ स्वच्छ और धवल हो गया।' "[१]

---

१ "First time he kissed me. He but only kissed the fingers of this hand wherewith I write, and ever since it grew clean and white."

"इलिज़ाबेथ, तू तो इस तरह सुखी हो गई। और मैं ? मृगजल में यथेष्ठ नौका-विहार करने के लिए भागती रही। मेरा कलेजा टूट गया और लाचार होकर वीरान मरुभूमि में खून उगलती रही।"

एक ठण्डी आह भरकर दादाजी ने अगले पृष्ठ पर निगाह दौड़ाई :

"...शेखर, मेरी वह कल्पना तुम्हें कितनी पसंद आई थी। तुम मुझे हवाई जहाज चलाना सिखाओ और फिर तुम अपने हवाई जहाज से और मैं अपने हवाई जहाज से खूब ऊंचाई पर जायंगे, जहां सुनहरे बादलों के पांवड़े बिछे होंगे, जहां बर्फ से सजे हुए शिखर हमपर चंवर डुलाएंगे, जहां तारे ऐसे लगेंगे जैसे रात और दिन के विवाह के समय आशीर्वाद की अक्षता बिखरी हों। ऐसे स्थान पर हम जायंगे। फिर दोनों अपने-अपने हवाई जहाजों को एक-दूसरे के बिलकुल नजदीक लायंगे। मैं अपने हवाई जहाज से झांककर बाहर देखूंगी और फिर तुम मेरा चुंबन...ऐसे अद्‌भुत प्रणय की क्या किसी कवि को कभी सूझी होगी ?"

: ६ :

दादाजी से आगे नहीं पढ़ा गया। पुस्तक बंदकर भारी कदमों से पीछे लौट पड़े। रोशनी गुल करके वह कमरे से बाहर जा ही रहे थे कि इसी समय नजर चुराकर नीचे देखती हुई अंदर आनेवाली नंदा उनके सामने आई। उसकी सूरत देखकर वह धक-से हो गये। उसके बाल बिखरे हुए-से दीख रहे थे। चेहरा भाव-शून्य लग रहा था। साड़ी का आंचल गीला और शरीर से चिपका हुआ था।

"इतनी देर क्यों हुई ?" दादाजी ने रूखे स्वर में पूछा।

"आज जैसे सभी मटरगश्ती करने निकल पड़ी थीं। एक भी सहेली घर नहीं थी। फिर सोचा, बहुत दिनों से दासबाबू नहीं मिले। इसलिए माटुंगा गई; पर वह भी घर से नदारद थे।"

"तो कहना चाहिए कि आज सारी बंबई ही घर से बाहर चली गई थी। शायद चोरों को इसका पता न रहा होगा, वरना दिन-दहाड़े ही वे अपना धंधा शुरू कर देते।" दादाजी ने कहा।

"यह बात नहीं, दादाजी..." उनकी आंख बचाती हुई नंदा बोली।
पहले की अपेक्षा अधिक शुष्क स्वर में दादाजी बोले, "आज माटुंगा में बारिश भी हुई थी शायद ? यह जाती-जाती बारिश भी बड़ी सनकी होती है ! उधर महालक्ष्मी में तो अभिषेक कर देगी, पर हमारे बाबुलनाथजी यहां सूखे ही रह जायंगे।"

दादाजी अक्सर नाराज नहीं होते, पर जब होते हैं तब उनकी बातों में झट-से तीखापन आ जाता है, टूटे हुए कांच के कंगूरे की तरह। उनका हर शब्द फिर चुभता रहता है। नंदा को इसका खासा अनुभव था। इस कारण नजर ऊपर उठाने की उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी। क्या बोले, यह भी वह नहीं समझ पा रही थी।

बेसुरा गायक जैसे सुरीला होने का प्रयत्न करता है, उसी तरह अपने स्वर में प्रचुर प्यार भरते हुए दादाजी बोले, "तो इस देर के लिए आज तुझे अच्छी सजा मिली है न !"

उनकी बात का अंदाज नंदा समझ नहीं पाई। वह हक्की-बक्की-सी होकर उनकी ओर देखने लगी। हँसने की कोशिश करते हुए दादाजी बोले, "आज रेडियो पर अभी कुछ समय पहले तेरा प्यारा गीत आया था, पर तू थी कहां घर में।"

"कौन-सा गीत, दादाजी !" यह जानकर कि आकाश अब निर्मल हो रहा है, नंदा ने प्रश्न किया।

"आजकल के तुम्हारे इन गीतों की पंक्तियां झट से याद नहीं आतीं, भई, मुझे तो ! शुरू के क्या बोल हैं भला उसके ? ओ सजना"...

"ओ सजना, बरखा बहार आई।" इस गीत के मधुर स्वर छः बरस के छः सागर पार करके नंदा के कानों में गूंजने लगे। कालेज के स्नेह-सम्मेलन का वह दिन। फर्स्ट इयर की अत्यंत सुन्दर दीखनेवाली वसुन्धरा गुप्त ने यह गीत इतना बढ़िया गाया था कि उस गीत के कोमल स्वरों पर तैरती हुई ही नंदा घर लौटी थी। उस गीत ने उस पर इतना जादू कर दिया था कि उसके कारण उसने वसुंधरा से दोस्ती करने की कोशिश की थी। पर वसू अबोल जो रहती थी ! अपनी ही

धुन में मस्त ! अपने ही आसपास चक्कर काटती रहनेवाली ! इसके बावजूद नंदा, उसके मीठे गले पर मोहित होकर, उससे मित्रता स्थापित करने का आग्रह करके तीन-चार बार उसे अपने घर भी ले आई थी। मां को वसू बड़ी पसन्द आई थी। "ओ सजना !" यह गीत भी उसने गाकर सुनाया था। उस समय मां ने कहा था, "आज तेरी नजर उतारनी होगी, बेटी, नहीं तो..."

जल्द ही वसुंधरा ने कालेज छोड़ दिया और जाने वह कहां चली गई ! क्या कभी वह फिर मिल सकेगी ? अगर मिली तो मैं कहूंगी, "वसू, वह गीत बार-बार गाती रह !" वह पूछेगी, "कौन-सा गीत ?" "क्या इतनी जल्द भूल गई ?—'ओ सजना, बरखा बहार आई !' अपने मीठे स्वरों की मस्ती में मुझे सारा दुःख भूल जाने दे !" मैं कहूंगी।

"नंदा, अरी ओ नंदा, खाना परोसा रखा है, जल्दी आ न !" मां के इन शब्दों ने नंदा को उसकी तंद्रा से जगा दिया।

: १० :

दादाजी ने आंखें खोलने की कोशिश की। पर वे सहज खुल नहीं रही थीं। बदन तो जैसे भारी पत्थर जैसा हो गया था।

"कितने बजे होंगे ?" खिड़की से कमरे में आनेवाले बाहर के प्रकाश में उन्होंने कलाई पर बंधी घड़ी को आंखों के नजदीक लाकर देखा। एक पच्चीस। उन्होंने आहट ली। आम तौर पर लगातार गरजता रहनेवाला शोर मचाने और झाग उगलनेवाला बंबई का जन-सागर भी इस समय शांत था। आज असमय में मेरी नींद में यों खलल क्यों पड़ गया ?"

वह याद करने लगे—नंदा की चिंता में डूबा हुआ ही मैं सो गया था। एक ही प्रश्न मेरे मन में चक्कर काट रहा था—नंदा सावित्री का आख्यान क्यों पढ़ रही है ? क्या इसलिए कि मृत्यु को पराजित करने का बल उसके मन को प्राप्त हो ? अथवा इसलिए कि अज्ञात अथाह

सागर-तली में गई हुई शेखर की नौका फिर ऊपर आ जाय ? पर यह कैसे संभव है ? ऐसे चमत्कार पुराणों की कथाओं में तो होते हैं, पर इस बीसवीं सदी के मानवों की दुनिया में यह असंभव है।

इसी विचार के कारण स्वप्न में सावित्री की कथा के चारों ओर ही मेरा मन घूम रहा होगा और धीरे-धीरे मुझे सावित्री की जगह नंदा दीखने लगी।

और फिर--दादाजी याद कर-करके स्वप्न के दृश्यों का मेल बैठाने लगे। पर किसी भी तरह उन आड़े-टेढ़े टुकड़ों में से संपूर्ण चित्र तैयार नहीं हो पा रहा था। उन्हें अस्पष्ट-सा याद आने लगा-- "सत्यवान की कुल्हाड़ी का वार वृक्ष की शाखा से पहले सावित्री के मस्तक पर पड़ गया था। सावित्री—नहीं ! नंदा—नहीं ! अश्वत्थामा ...वेग से बहनेवाले उस जख्म को दोनों हाथों से मजबूती से पकड़कर...वे हाथ पुरुष के थे।"

स्वप्न की इस धुंधली याद से वह बेचैन हो उठे। उन्होंने करवट बदली, पर उन्हें चैन नहीं पड़ रहा था। यह देखने के लिए कि नंदा आराम से सो रही है या नहीं, वह दबे पांव उसके कमरे की ओर गये। कमरे का दरवाजा बंद लग रहा था। परन्तु कमरे के भीतर से लैम्प का मंद प्रकाश दरवाजे की सेंध से बाहर आ रहा था। "तो, नंदा अभी तक जाग रही है ? क्या कर रही है वह ?"

दादाजी ने धीमे-से दरवाजे को धक्का दिया। वह खुल गया। मेज पर रोशनी जल रही थी और नंदा पलंग पर सोई हुई थी। वह उसके पास आकर खड़े हो गये। नंदा के चेहरे की ओर देखते-देखते मूसलाधार वर्षा में ओलती के नीचे छिपने आई हुई चिड़िया की उन्हें याद हो आई। टेबल लैम्प उसी तरह जल रहा था। नंदा पढ़ते-पढ़ते ही अलसा जाने के कारण बिस्तर पर जाकर पड़ गई है, ऐसा उन्होंने अंदाज लगाया। पर जब वह मेज के नजदीक गये तो उनके ध्यान में आया कि नंदा तो बड़ी देर तक बैठी हुई कुछ लिख रही थी। उन्होंने झुककर ऊपर के कागज की पहली पंक्ति पढ़ी—"पूजनीय दादाजी के चरण कमलों में..." मतलब ? नंदा मुझे यह पत्र लिख रही थी। दादाजी ने वे

सारे कागज उठा लिये। पलंग के पास आकर नंदा के पैंताने पड़ी पतली-सी चद्दर हल्के से उसके शरीर पर डाल दी और मेज पर की रोशनी गुल करके वह कमरे से बाहर निकल आये।

: ११ :

दादाजी ने नंदा के पत्र की पहली पंक्ति फिर पढ़ी, "पूजनीय दादाजी के चरणकमलों में..."

दादा चौंक पड़े। नंदा कभी-कभार कालेज की ट्रिप में या रिश्तेदारों की शादी में दूसरे शहर जाती तो उस समय जो पत्र वह दादाजी को भेजती थी उनमें 'पूजनीय दादाजी, सप्रेम नमस्कार', ऐसा सिरनामा होता था। आज वह बदल गया था। "पूजनीय दादाजी के चरणकमलों में," यह सिरनामा नंदा अनजाने लिख गई हो, ऐसा लगता है।

दुःख मनुष्य को अन्तर्मुख बना देता है, यही सच है। वह दूसरे मनुष्य से होनेवाले अपने संबंध को अधिक स्पष्ट और दृढ़ कर देता है, ऐसा दादाजी को लगा।

दादाजी अधीरता से नंदा का पत्र पढ़ने लगे :

"पूजनीय दादाजी के चरण कमलों में,

सादर साष्टांग नमस्कार।

"दादाजी, मुझे क्षमा कर दीजिए। अपनी प्यारी नंदा को आप क्षमा कर देंगे? कुछ समय पहले मैं आपसे झूठ बोली, यह बात मेरे मन को लगातार चुभ रही है। इसलिए खाना खाकर कमरे में आने के बाद तुरंत ही मैं आपको यह पत्र लिखने बैठी हूं। इसके सिवा, सच बताऊं? आजकल आराम की नींद आती ही नहीं मुझे। बिस्तर पर पड़ते ही मन भटकने लगता है। धूल की आंधी में फंस जाता है। कमरे में अंधेरा हुआ नहीं कि ऊटपटांग चित्र दीखने लगते हैं। फिर जैसे कटे पतंग जैसी हालत हो जाती है मेरे मन की। यादों के गिद्ध अपने लालची पखों की फड़फड़ाहट करते हुए मुझे घेर लेते हैं और अपने क्रूर नाखूनों को मेरे कलेजे में घुसेड़कर...

"छोड़िए इसे। शाम को मैं किसी भी सहेली के घर नहीं गई थी। दासबाबू के घर भी नहीं गई थी। मैंने और शेखर ने जिन-जिन स्थानों पर प्रेम की बातें की थीं, वहां-वहां मैं पागल की तरह भटकती रही। भूतकाल के तहखाने में बार-बार झांककर देखती रही।

"काल-सागर में डूबी हुई उन अनगिनत रंग-बिरंगी कागजी नावों में से कोई एक नाव शायद कहीं ऊपर आकर तैरने लगे, इस पागल आशा को हृदय में दबाए मैं खूब घूमी, खूब भटकी। मैंने वह प्रत्येक स्थान, जहां हम दोनों की मुलाकातें होती थीं, इस तरह जाकर देखा, जैसे किसी समाधि के दर्शन कर रहे हों। उस प्रत्येक स्थान की मैंने आंसुओं के फूलों से पूजा की। पर मन ठिकाने पर नहीं आ रहा था। बंबई की लंबी-चौड़ी सड़कों पर लोग चींटियों की तरह घूम रहे थे। वे सारे काले-गोरे, भले-बुरे, अमीर-गरीब, छोटे-बड़े सब लोग जीवित हैं। पर मेरा शेखर... ! उन मनुष्यों को देखकर मन में आया कि ईश्वर कितना निर्दयी है, कितना कृपण है ! उन लाखों लोगों में से यह जहर का प्याला उसने मुझे ही पीने को क्यों मजबूर किया ? मौत की यह काली स्याह पहेली मुझे कौन हल करके दिखायगा ?

इस व्याकुल तथा क्रोध से छटपटाती हुई स्थिति में मैंने आज का सूर्यास्त देखा। लाल, गुलाबी और केसरिया रंग की नदी पश्चिम क्षितिज पर उमड़कर मानो बह रही थी। गत वर्ष ऐसा ही जगमगाता सूर्यास्त हम दोनों ने आंखें भरकर देखा था। उसे देखकर भी हम अतृप्त ही रहे थे। उस समय नैऋत्य की ओर के लाल रंग को देखकर शेखर ने कहा था—'नंदा, तुम्हारी सोहबत में मुझ जैसे अरसिक मनुष्य को भी काव्य सूझने लगा है। सामने देखो न। कुंकुम की इतनी बड़ी मंजूषा सूर्य की ठोकर से लुढ़क गई है और उसका सारा कुंकुम आकाश में बिखर गया है।' शेखर की यह कल्पना उस समय मुझे बड़ी अद्भुत लगी थी। मैंने मजाक में उससे कहा—'नये कवि बनने के आसार नजर आ रहे हैं अब तो।' आज यह सब याद आया तो ऐसा लगा कि उसके वे शब्द आगामी अमंगल की पूर्व-सूचना तो नहीं थे ? भगवान जाने !

"अंधेरा हो गया। फिर भी मेरा घूमना जारी ही था। उस भ्रांत

मनस्थिति में ही मैं समुद्र किनारे चली गई। वहीं बालू में बैठकर शेखर और मैंने भावी सुख के महल खड़े किये थे; पर वे बेचारे सारे बालू के महल ही साबित हुए। दुर्भाग्य की एक प्रचण्ड लहर से ध्वस्त होकर वे धूल में मिल गए।

"अंधेरा गहरा हो रहा था। भीड़ धीरे-धीरे विरल होती जा रही थी। जैसे घर के किसी बिल में से, जिसके बारे में कभी सोचा न हो, अचानक एक सांप फुफकारता हुआ बाहर निकल पड़े, उसी तरह उस एकांत अंधकार में मेरे मन में अचानक आत्महत्या का विचार झांकने लगा। लगा कि हृदय में जलनेवाले दावानल को सामने के अथाह पानी में बुझा डालूं। मृत्यु के यक्ष प्रश्न का उत्तर मृत्यु के सिवा दूसरा कौन दे सकेगा ?

"मैं जहां बैठी थी वह स्थान धीरे-धीरे निर्जन हो गया। यह देखकर कि आस-पास कोई नहीं, मैंने पानी में कदम रखा। शिवपार्वती की पूजा करने के बाद विवाह-वेदी की ओर जानेवाली वधू की तरह मैं मृत्यु-रूपी वर को वरमाला पहनाने के लिए आगे बढ़ने लगी।

"मेरे पैर लड़खड़ाने लगे। कलेजे की धड़कन नगाड़े की आवाज जैसी लगने लगी, पर मन सन्नाटे में था। मस्तक बधिर था। किसी यन्त्र-संचालित गुड़िया की तरह मैं एक-एक कदम आगे बढ़ा रही थी—इस आशा से कि मृत्यु की बाहों में तो कम-से-कम मेरे तड़पनेवाले मन को आराम मिलेगा।

"इसी समय मुझे आपकी याद हो आई। काले-स्याह आसमान में जैसे बिजली चमक उठती है, आपका प्रेम आंखों के सामने मूर्तमान खड़ा हो गया। जब मैं इंटर के प्रथम वर्ष में थी, मुझे विषम ज्वर हो गया था। डाक्टर ने करीब-करीब आशा छोड़ दी थी। पर आप मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए रात-भर बैठे रहे थे। आपके हाथ में उस रात संजीवनी शक्ति का संचार हो गया होगा। उस प्राणलेवा बीमारी से मैं अच्छी हो गई। आपका वह वत्सल हाथ मृत्यु के उस महाद्वार पर एकदम मेरी आंखों के सामने साकार हो उठा, यों इशारा करता हुआ कि—'आगे मत जा।'

"कुछ क्षण पानी में उसी तरह मैं खड़ी रही। मिलिंद के बचपन की मलाई जैसी कोमल और मधु जैसी मीठी चुम्मी की मुझे याद हो आई। जीजी के आखिरी शब्द—'मिलिंद को सम्हालना' कानों में गूंजने लगे। अम्मा की अबोल और करुण मूर्ति आंखों के सामने खड़ी हो गई। जीजी के चले जाने के बाद से वह खट हो रही है। मन में आता कि उसका दुःख मुझे हलका करना चाहिए, यानी उस दुःख में और वृद्धि करनी चाहिए ?

"मैंने मृत्यु का जो दरवाजा थोड़ा-सा खोला था, उसे धीरे-से बन्द कर दिया। उसकी तरफ पीठ कर दी। चाहे डर जाने के कारण हो, या आप सब लोगों के प्रेम के कारण हो, अथवा इस कारण कि जीवित रहने की इच्छा ही मनुष्य को सबसे प्रबल प्रेरणा होती है, मैंने जीवन का सामना करने का निश्चय किया, फिर उसका चेहरा कितना उग्र क्यों न हो, उसकी दृष्टि कितनी ही क्रूर क्यों न हो और उसका स्पर्श कितना ही कंटीला क्यों न हो ! जब कालेज में थी, उस समय मेरी ऑटोग्राफ बुक में नेहरूजी ने लिखा था—"लिव डेंजरसली।" इसी संदेश को रटते हुए मैंने मृत्यु से बिदा ले ली।

"पर..."

"परसों बस में मैंने एक तरुण को देखा, जिसका पृष्ठ भाग मेरे सामने था। वह हूबहू शेखर की तरह दीख रहा था। उस आभास ने किसी छुरी की तरह कलेजे को काट दिया। सच कहती हूं, दादाजी, यह ऐसा कितने दिन तक चलेगा ? पांच महीने हो गये, फिर भी मेरा दुःख उतना ही हरा है जितना पहले दिन था। मनुष्य को पहला सब भुला देना चाहिए, यह मैं जानती हूं। पर...मुझे अपना मन कहीं-न-कहीं उलझा देना होगा। लगातार सोच रही हूं—क्या मानव-जीवन केवल नियति के ताल पर चलनेवाला एक क्रूर खेल है ? इस विश्व का—संसार का—कोई अर्थ है या नहीं ? प्रीति का अर्थ क्या ? किसी भी तरह इन प्रश्नों के उत्तर नहीं मिल पा रहे हैं। मैं क्या करूं ? क्या किसी नौकरी में मन को उलझा देने से यह चुभन कम हो जायगी ? अथवा पी-एच. डी. के लिए अध्ययन करने लगूं ?

"दादाजी, आपने मुझे लड़के की तरह पालपोस कर बड़ा किया। आप हमेशा ऐसा कहते आये हैं कि नंदा ही मेरा आनंद है। आपने मुझे निर्भय बनाया, सोचना सिखाया। बचपन से ही आपने मेरे मन पर यह अंकित किया कि हर बात मनुष्य को बुद्धि की कसौटी पर कसकर देखनी चाहिए; पर भाग्य की कुल्हाड़ी के इस पहले ही वार से मैं इस तरह घायल हो गई! मुझे स्वयं ही इसपर अफसोस होता है। ऐसा क्यों होना चाहिए? पिछले दिनों मैं इस प्रश्न पर बराबर विचार करती रही हूं। पुस्तकों की विशाल, सुन्दर, किन्तु स्वप्निल दुनिया में मैं बढ़ी; खुशहाल सफेदपोशों की दुनिया में मैं रही; मां-बाप ने अपने प्यार के गरम शाल में मुझे हमेशा लिपटाकर रखा, जिसके कारण बाहर की धूप-हवा, आंधी-पानी तथा ठिठुरा देनेवाली ठंड से मेरा परिचय ही नहीं हो पाया। तो फिर उनसे झगड़ने की शक्ति भला मुझमें कैसे आती? जिस दुनिया में मैं बढ़ी, वह अंगूठी के नग के बराबर है! उस नग में जो जीवन प्रतिबिम्बित हुआ, वही तो मैंने देखा और वह सारा जीवन था धोबी के यहां धुलकर आए हुये स्वच्छ कपड़ों जैसा! उसमें न कहीं कोई दाग, और न कोई शिकन! पुष्करिणी के समान उस शान्त जगत में मैं छोटी से बड़ी हुई! प्रीति, द्वेष, शौर्य, क्रौर्य, जीवन और मृत्यु इन सबका ताण्डव-नृत्य तो देखा मैंने शेक्सपियर के नाटकों और महाभारत के पात्रों में! जब मैंने 'रोमियो और जूलियट' पढ़ा था तब मुझे जीजी के विवाह का स्मरण हो आया था! उस विवाह में एक बार भी किसीके मुंह से 'प्रेम' जैसा शब्द नहीं निकला था, किसी, के भी नहीं! वहां था केवल दहेज, मान-सम्मान, रूठना-मनाना। यह सब जब ध्यान में आता है तो लगता है कि झूठी सुरक्षा के इन जन्मगत आवरणों को उतारकर दूर फेंक दूं। इस विशाल दुनिया के असंख्य मनुष्यों में मैं भी एक हूं, इस तरह ही जिऊं। जो भी प्याला होठों से लग जाय, उसके पेय की चुस्कियां हँसते-हँसते लेती रहूं, मेरे हिस्से में जो जीवन आ पड़े उसे दोनों बाहें फैलाकर गले से लगा लूं।

"अम्मा विशेष पढ़ी-लिखी नहीं है। उसने शेक्सपियर नहीं पढ़ा। पर उसके पास दुःख को आत्मसात कर लेने की शक्ति है, क्योंकि ईश्वर

पर उसकी सच्ची श्रद्धा है। जब जीजो का स्वर्गवास हुआ उस समय मिलिंद को कलेजे से लगाकर उसने सिर्फ दो ही शब्द कहे थे—'भगवान की मरजी !' हृदय के फूटे हुए बांध को उसने इन दो शब्दों से बांध लिया था ! उसकी वह श्रद्धा तो मेरे पास नहीं है। इस कारण दुःख के समय मनुष्य को श्रद्धा के जिस आधार की जरूरत होती है, उससे मैं वंचित हो गई हूं। यह मुझ अकेली के ही दुर्भाग्य की कहानी नहीं है। हमारी पीढ़ी का ही दारुण दुःख है यह। हमारे सामने सच्चा प्रश्न ही यह है कि हमारे मन में ईश्वर का जो स्थान खाली पड़ा हुआ है, उसे किस तरह भरा जाय ?

"पत्र बहुत लम्बा हो गया। यह सब आपसे ठीक से कह नहीं पाऊंगी, ऐसा लग रहा था। इसलिए यह लिखा। और इससे मन कितना हलका-सा हो रहा है मेरा ! अब आप मेरी जरा भी चिंता न करें। मैंने तय कर लिया है कि कल दासबाबू के यहां जाऊंगी और पी-एच० डी० के लिए कौन-सा विषय लिया जाय, इस बारे में उनसे सलाह करूंगी। फिर दो-तीन वर्ष बाद हमारे दरवाजे पर नाम-पट्ट लगेगा—डा. अकलनंदा देशपांडे, एम. ए., पी-एच. डी.। उस पट्ट को पढ़कर मिलिंद कहेगा—'मौसी, तू अब डाक्टर हो गई है न ? तो मुझे दवा दे। पर याद रखना, दवा मीठी देना, कड़वी नहीं।'

आपकी,
नंदा

: १२ :

नंदा को लगा कि उसके मुंह पर कोई पंख फेर रहा है। वह बड़ी देर तक सोती रही है, यह उसे अब जाकर महसूस हुआ। उसे उठाने को मिलिंद उसके मुंह पर कोई मुलायम-सी चीज छुआ रहा है क्या ? उसके मन में आया कि एकदम आंखें खोलकर उठे और उसके गालों में मोटी-मोटी चुटकियां लेकर कहे—क्यों, शैतानी कर रहा था। आखिर पकड़ ही लिया तुझे ! यह सोच ही रही थी कि उसके

कानों में मां की आवाज सुनाई पड़ी, "अरी नंदा, देख, धूप कितनी ऊपर चढ़ आई है, उठ बेटी। मां के स्वर की आर्द्रता नंदा के हृदय की गहराई में छूती चली गई। उसने हंसते हुए आंखें खोलीं। मां को देखते-देखते उसे लगा कि सचमुच बाहर धूप कितनी चढ़ गई है। पर उससे उसे क्या करना है ? मां की आंखों की शरद पूनों की वह चांदनी जो उसे नहला रही है। यह भाग्य क्या कोई छोटा-मोटा है ? वह छोटी-सी लड़की होती तो कितना अच्छा होता ! तब मां की गोद में सिर रगड़ती। उसकी कोख में मुख छिपाती और उसके स्पर्श के वात्सल्य से सारे दुःखों के पहाड़ गला देती।

मां कुछ न बोलकर एकटक उसकी ओर देखती हुई उसके बिस्तर पर बैठ गई और उसके बिखरे हुए बालों को धीरे-धीरे ठीक करने लगी। नंदा ने उनका हाथ अपने हाथ में लेकर उसे बड़े जोर से दबाया, मानो वह अपने-आपसे पूछ रही थी कि बड़ी हो जाने पर लड़की का मन मां के दिल से क्या इस एक ही भाषा में बात कर सकता है ? ऐसा क्यों होता है ?

उसका सिर थपथपाते हुए मां बोली, "बेटी, तू कहीं भी जा, पर अंधेरा होने से पहले घर में आ जाया कर। तुझे मेरी सौगन्ध है। समझी ? तू जबतक घर नहीं लौटती तबतक हम लोगों को बड़ी चिन्ता लगी रहती है।" बोलते-बोलते मां का गला भर आया और आंखें सजल हो गईं।

नंदा ने हंसते हुए उत्तर दिया, "मां का प्रेम यों ही पागल होता है ? कल जब मैं ससुराल चली जाऊंगी तो क्या, मां, तुम जीवन-भर मेरी गौनहार बनकर वहां मेरे साथ रहने जाओगी ?"

हवाई जहाज की दुर्घटना में शेखर की मृत्यु हो जाने के बाद से मजाक में ही क्यों न हो, नंदा ने ससुराल जाने का आज पहली बार जिक्र किया। उसकी यह बात सुनकर मां के मन में बड़ी तसल्ली हुई थी। किसी भयानक स्वप्न से मनुष्य जाग उठे और उसे यकीन हो जाय कि जो अशुभ मैंने देखा वह सच नहीं है तो उसे जैसी राहत महसूस होती है, वैसी ही कुछ उन्हें हुई। नंदा के चेहरे को सहलाते हुए वह बोली, "चल, उठ जल्दी कर, अच्छी गरम-गरम चाय बना रही हूं मैं

तेरे लिए। उसे पीकर फिर चाहे जितना लेटती रहना। आज तुझे मैं कोई काम नहीं करने दूंगी। तुम लड़कियों का क्या ? तुम तो मायके के आंगन में दाने चुगनेवाली चिड़िया जैसी हो ! कब फुर्र से ससुराल उड़ जाओगी, इसका क्या ठिकाना !"

: १३ :

गरम चाय की चुस्कियां लेते-लेते नंदा को उस पत्र की याद हो आई, जो उसने रात को दादाजी के नाम लिख रखा था। वह पत्र दादाजी को दूं या नहीं, इस विचार में वह पड़ गई। रात के एकांत में स्वाभाविक लगनेवाली कितनी ही बातें दिन में कृत्रिम लगने लगती हैं। उसका भी यही हुआ। उसने जल्दी-जल्दी चाय खत्म की और अपने कमरे में गई। मेज पर अपना पत्र खोजने लगी। उसमें 'पुनश्च' लिखने से पहले ही वह सो गई थी, यह उसे अब याद आया। मेज पर उसका पत्र कहीं भी नहीं दीख रहा था। पर उसके स्थान में अलबत्ता दूसरा एक पत्र रखा था। नंदा ने जल्दी-जदी उसे खोला। अक्षर दादाजी के थे। मतलब ? वह आंखों में प्राण समेटकर पढ़ने लगी।

: १४ :

"चि० नंदा,

सप्रेम आशीष।

"बेटा नंदा, घर में ही हम एक-दूसरे को पत्र लिखेंगे, ऐसा भविष्य पहले कोई बताता तो उसकी मैं कठजोशियों में गणना करता। पर कुछ प्रसंग ऐसे विचित्र होते हैं कि उस समय अत्यंत प्रिय मनुष्य से भी हम दिल खोलकर बातें नहीं कर पाते। ऐसे प्रसंगों पर कोई भी रुकावट न होते हुए भी आकाश से भिड़ी हुई दीवार-सी खड़ी हो जाती है। भीतर का उबाल भीतर-ही-भीतर जोर मारने लगता है।

"यह मुश्किल तेरे पत्र ने आसान कर दी। बड़ों से अपने मनोभाव

दिल खोलकर कहने की हिम्मत मेरी पीढ़ी में नहीं थी। बेटा, तुम निर्भय और विचारवान हो। जीवन के सत्यों का सामना करने के लिए तैयार रहो, फिर वे कितने ही उग्र क्यों न हों।

"शेखर के साथ तू विवाह करे, यह हमें मंजूर था। इस विवाह के लिए हम सबके आशीर्वाद थे। विवाह का मुहूर्त कौन-सा तय किया जाय, यह शेखर की सहूलियत पर था। ऐसी स्थिति में उसके हवाई जहाज की दुर्घटना हो गई...

"मनुष्य जब अमृत के प्याले को अपने होंठों तक ले जाता है तब अनेक बार नियति से यह देखा नहीं जाता। किसी डायन की तरह वह अचानक प्रकट हो जाती है और एक झटके में उस प्याले को धूल में मिला देती है। तेरे विषय में भी यही हुआ। ऐसा होना नहीं चाहिए था। पर...

"ठीक से सोच, बेटा। विश्व के इस विराट चक्र में तू और मैं कौन हैं? ऐसे दो जीव जिन्हें इस चक्र की संकरी पट्टी पर क्षण-भर के लिए आसरा मिल गया है। ओस की दो बूंदें। अपनी ही धुन में अखण्ड रूप से भ्रमण करनेवाले इस अनादि, अनंत चक्र को तेरे और मेरे सुख-दुःख की क्यों परवा होगी—वह तेरी और मेरी क्यों सोचेगा?

"एक क्षण में तेरे सुख-स्वप्न के टुकड़े-टुकड़े हो गये। वे आड़े-टेढ़े टुकड़े भूतों की तरह तुझे डरा रहे हैं। पर एक बात कभी मत भूलना, बेटा। इन भग्न टुकड़ों को ही छाती से लगाकर बैठे रहने के लिए मनुष्य ने जन्म नहीं लिया है। मानव के मन को सिर्फ भूतकाल की जंजीरों से जकड़कर नहीं रखा जा सकता। उसे भविष्य के गरुड़-पंखों का वरदान भी मिला है। एक-आध स्वप्न देखना, उसे विकसित करना, उसे सत्य-सृष्टि में उतारने का प्रबल प्रयत्न करना, उस प्रबल प्रयत्न का आनंद लूटना और दुर्भाग्य से वह स्वप्न भंग हो जाय तो निरुत्साहित न होकर, उसके टुकड़ों को खून-भरे पैरों से रौंदते हुए दूसरे स्वप्न के पीछे दौड़ना, यही मानव-मन का धर्म है। मनुष्य के जीवन का जो कुछ अर्थ होता है वह इसीके कारण।

"संकोच सत्य का बैरी है। इसलिए थोड़ी देर उसे ताक पर रखकर

मैं अपना अनुभव तुझे बताता हूं।

"मैं कालेज में पढ़ता था, उस समय की बात है। पड़ोस की एक लड़की मुझे बड़ी अच्छी लगती थी। उससे मेरा विवाह हो, ऐसा लगा करता; पर वह नहीं हुआ। उस जमाने में वह संभव नहीं था। वह दुःख मेरे मन में अनेक वर्षों तक चुभता रहा। आगे तेरी मां मेरे जीवन में आई, ग्रीष्म में ठंडी हवा की झोंके की तरह। अपना कर्तव्य समझकर और बाद में आनंद अनुभव कर मां को छाया देने और उसकी छाया में विश्राम करने में मैं रम गया। पहला दुःख मैं पूर्ण रूप से भूल गया। जो जख्म असाध्य प्रतीत होता था, उसका जरा-सा चिन्ह भी आगे नहीं रहा।

"मेरा दूसरा स्वप्न था प्राध्यापक बनने का। वह सत्य हुआ। मैं दर्शन का प्राध्यापक बना; पर अनेक सुन्दर स्वप्न जो पृथ्वी पर उतरने पर कुरूप दीखने लगते हैं उसी तरह इस स्वप्न की भी गत हुई। मैं केवल एक खुशहाल प्राध्यापक की हैसियत से जीवन बिता रहा हूं, इसका स्वयं मुझे खेद होने लगा। आगे 'भारत छोड़ो' आन्दोलन शुरू हुआ, देशभक्ति के नए स्वप्न का भूत मुझपर सवार हुआ और भूमिगत कार्यकर्त्ताओं को मैं अपने घर में छिपाकर रखने लगा। उस समय तू अपनी मां के पेट में थी। तेरी हलचल की ओर ध्यान दें या आन्दोलन के मेहमानों की खातिरदारी करें, इस दुविधा में अनेक बार बेचारी मां का मन फंस जाता। बड़े कष्ट उठाए उसने उस जमाने में। इस दुनिया में प्रवेश करने से पहले की तेरी चंचलता को ध्यान में रखकर ही मैंने तेरा नाम अलकनंदा रखा।

"सन बयालीस की उस धूमधाम में मुझे अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा। आगे गृहस्थी की गाड़ी चलाने के लिए मैंने क्या-क्या किया, इसकी कहानी मैं नहीं कहना चाहता। वे दिन अब लद गए। पर उस समय के अनेक कटु अनुभव आज भी मुझे बेचैन कर देते हैं। जिन्हें हम मित्र कहते हैं, उनमें सच्चे कम और खोटे अधिक थे, यह अनुभव उस समय मुझे बहुत बड़ी मात्रा में हुआ था। इसके बाद तेरी और सुमित्रा की बाल-लीलाओं और स्कूल तथा कालेज की बातों से हमारी गृहस्थी ने

कुछ समय तक सुख की छाया में आराम किया। फिर सुमित्रा बड़ी हुई। हैसियत से बाहर खर्च करके मैंने उसके लिए एक डाक्टर का रिश्ता पसंद किया। विवाह हुआ। पर असमय में ही दुर्भाग्य उसे हमसे छीन कर ले गया। डाक्टर को दूसरा विवाह करने की सलाह मैंने ही दी थी। उन्हें अच्छी पत्नी मिल गई, जो प्राध्यापिका थी। पर उस सौतेली मां ने मिलिंद को संभालने की जिम्मेदारी स्वीकार नहीं की। तब चुपचाप मैं उसे अपने यहां ले आया।

"यह सब सिर्फ इसलिए लिखा है कि जीवन सुख-दुःख की आंख-मिचौनी है, यह कभी मत भूलना। जीवन में स्वप्न देखने का आनंद है और स्वप्न-भंग के कारण होनेवाला विषाद भी है!

"...क्या कह रहा था मैं तुझसे? हां, हिमालय के नीचे खड़ा रहनेवाला मनुष्य कितना बौना और क्षुद्र दीखता है, इसकी कल्पना करो। विश्व-शक्ति के सामने हम सब भी उसी तरह हैं। जन्म इस परम शक्ति का वत्सल स्मित है, प्रीति उसका मधुर गीत है, मृत्यु उसका क्रोध अभिव्यक्त करने की रीति है। इस शक्ति की कृपा और कोप दोनों को हमें नतमस्तक होकर स्वीकार करना चाहिए।

"यह पढ़ते-पढ़ते तू मन में कहेगी---बचपन से दादाजी ने मुझे इतना पढ़ाया और मुझसे खूब पढ़वा भी लिया, पर फिर भी उनके भीतर के अध्यापक को अभी संतोष हुआ नहीं लगता है। पर इस समय उपदेशों की मुझे जरूरत नहीं, बल्कि कुछ ऐसी चीजें चाहिए जिनसे जीवन की मिठास को मैं अनुभव कर सकूं।

"और वही तो तुझे बताने का मैं प्रयत्न कर रहा हूं। इस दुनिया में दुःख मनुष्य की घुट्टी में पड़ा हुआ होता है। प्रत्येक के जीवन में वह भिन्न-भिन्न रूप धारण करके आता है। स्वप्न-भंग मनुष्य का स्थायी साथी है; पर मनुष्य का बड़प्पन इसीमें है कि अपने हिस्से में सुख-दुःख जो आये उसे सहन करके नए स्वप्न देखे, हलाहल पी करके अमृत की खोज करे।

"और यह अमृत उसे सर्वत्र मिलता है। सुमित्रा गई, उस रात की बात तुझे बताता हूं। तेरी मां को नींद की दवा देकर सुला दिया था।

छोटा मिलिंद उसकी कोख में रो-रोकर सो गया था। रात के दो बजे तेरी आंख लगी, पर किसी भी तरह मुझे नींद नहीं आ रही थी। जिस सुमी को मैंने अपने शरीर और कंधों पर फूल की तरह खिलाया था, उसकी निर्जीव देह का अग्नि-संस्कार करते समय...आज भी जब वह याद आती है तो बदन सिहर उठता है। मां बीच ही में जाग न जाय, इसलिए मैं उसके पास बैठा रहा था। मन में अंधा तूफान उठ रहा था। धीरे-धीरे सवेरा हुआ। मैं अनजाने खिड़की के नजदीक गया। पूर्व दिशा में पौ फट रही थी। बात-की-बात में जासौंद के फूलों की अनेक राशियां वहां दीखने लगीं। मैं मंत्रमुग्ध होकर उस रमणीय दृश्य को देखने लगा। सौन्दर्य के उस दर्शन से मेरा मन थोड़ा हलका हो गया। मैं आंखें बंद कर उसका रस लेने लगा। बचपन में सुबह हमारे घर के सामने से गंगा नहाने जानेवाला एक भावुक ज्ञानदेव का "मोगरा फुलला, मोगरा फुलला"[1] यह अभंग[2] ऊंचे स्वर से गाता हुआ जाया करता। वह अभंग मेरे कानों में गूंजने लगा। जिस घर में किसीकी मृत्यु नहीं हुई, ऐसे घर से मुट्ठी भर राई लाने को कहनेवाले भगवान बुद्धदेव की मूर्ति आंखों के सामने खड़ी हो गई। मन में आया—लाखों मनुष्यों से भरे हुए इस शहर में कल कितने ही मनुष्य इस संसार को छोड़कर चल दिये होंगे। उनमें प्रत्येक के रिश्तेदारों का दु:ख हमारे दु:ख के बराबर ही बड़ा है। हम सदैव आत्म-केन्द्रित रहते हैं। हमेशा केवल अपने ही सुख-दु:ख का विचार करते हैं। इस कारण हमारा दु:ख हमें बहुत बड़ा लगता रहता है।

"इस प्रकाश को मन में संचित कर मैं मां के नजदीक गया। उसने अधूरी झपकी में आंखें खोलीं। वह जागने लगी थी। कल पूरे दिन उसके पेट में कुछ नहीं गया था। मैं झट से रसोईघर में गया। चाय बनाई। मां को धीरे-से उठाकर बिस्तर पर ही कुल्ली करने के लिए उसे पानी दिया। दो प्याला चाय ले आया। एक प्याला उसके हाथ में दिया। वह उसे उसी तरह लिये बैठी रही। मैंने उसकी पीठ पर

---

१. मोगरा फूला, मोगरा फूला २. मराठी भाषा के एक प्रकार के पद।

हाथ फेरा। प्लेट में चाय डालकर उसके मुंह से लगाई। चाय की चुस्कियां लेते-लेते उसमें ताजगी आने लगी। चाय पी लेने के बाद छोटी-सी बालिका की तरह उसने अपना सिर मेरी गोद में रख दिया। मैं उसे थपथपाने लगा। वह मेरी ओर देख रही थी और मैं उसकी ओर। शब्द मुंह से निकल नहीं रहे थे, पर आंखें बोल रही थीं। जैसे हम एक दूसरे से कह रहे थे– "इस अंधकार से मुझे प्रकाश की ओर ले चलो—मृत्योर्मा अमृतं गमय।"

"तीन बज गए हैं। आजकल जागरण बरदाश्त नहीं होता मुझसे। बैठकर बहुत देर तक लिखा भी नहीं जाता। इसलिए लिखना अब बंद करता हूं। पी-एच. डी. के लिए अध्ययन करने का तेरा विचार बड़ा अच्छा है। शाम को हम दासबाबू के घर चलेंगे। तू कुछ भी कर, पर दुःख के पिंजड़े में अपने-आपको बंदी मत बना। उस पिंजड़े का दरवाजा खोलो, पंख फैलाओ और आकाश में उड़ो। जीवन का अर्थ उस आकाश से पूछो।

तेरा,

बाबा"

: १५ :

दासबाबू के कमरे का दरवाजा खुला ही था। नंदा ने सोचा कि वह कुछ पढ़ते-पढ़ते लेट गये होंगे। दादाजी को लेकर वह दरवाजे के पास आई। उसने कमरे में कदम रखा। उसने सोचा था कि मुझे देखते ही "सुस्वागतम्, सुस्वागतम्!" अथवा यह "पूर्णिमा का चन्द्र आज पश्चिम में कैसे उदित हुआ?" इस तरह कुछ वह उत्फुल्ल स्वर में कहेंगे। पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। उसने झांककर देखा। दासबाबू एक कोने में अकेले ही शतरंज खेल रहे थे। लाल, हरे हाथी-घोड़े एक तरफ मरे हुए पड़े थे। कमरे का वह कोना जैसे कुरुक्षेत्र बना हुआ था और आश्चर्य की बात यह कि दासबाबू जिस तरह इस युद्ध में अर्जुन थे, उसी तरह उसमें कर्ण भी वही थे। दोनों तरफ की चालें बड़ी तन्मयता

से चल रहे थे। यह देखकर नंदा को अपने बचपन के खेल को गुड़िया के विवाह की याद हो आई। उसने दादाजी को इशारे से बताया। वह भीतर आये और दासबाबू की इस क्रीड़ा-समाधि को देखने लगे।

"पिट गया, वजीर पिट गया।" हरे घोड़े से लाल वजीर को मारते हुए दासबाबू चिल्लाए—क्रिकेट के खेल में बल्लेबाज़ की विकेट उड़ा देनेवाले बच्चों की टीम के किसी गेंदबाज की तरह।

"किसका वजीर पिट गया?" नंदा ने शरारत-भरे स्वर में दरवाज़े में से प्रश्न किया।

दासबाबू ने एकदम मुड़कर देखा। नंदा पर निगाह पड़ते ही उनके चेहरे पर मुस्कान की रेखा चमक उठी। वह जल्दी-जल्दी उठे और धोती के पल्ले को जैसे-तैसे संभालते हुए आगे आये। "नोमश्कार, नोमश्कार," कहते हुए उन्होंने दादाजी के दोनों हाथ कसकर पकड़ लिये और बड़ी आत्मीयता से उन्हें एक सुन्दर बेंत की कुर्सी पर बिठा दिया। फिर नंदा की ओर नकली आश्चर्य से देखते हुए बोले, "प्रयाग के तीर्थ-क्षेत्र में सरस्वती गुप्त है, यह हम पीढ़ियों से सुनते आये हैं। पर अलकनंदा अंतर्धान हो गई है, यह हमने कभी नहीं सुना था, भाई!" यह देखकर कि नंदा कुछ भी नहीं बोल रही है, वह दादाजी की ओर मुड़े बोले, "दादासाहब! हमारी यह अकलनंदा क्या किसी समुद्र में मिली नहीं अभी तक? बहुत दिनों से कोई समाचार नहीं मिला इसका। इसलिए पूछा कि कहीं..."

कुछ क्षण के लिए नंदा के मन में हलचल मच गई। दादाजी भी थोड़े घबराए, पर नंदा ने तुरंत अपनेको संभाल लिया। विषय बदलने की गरज से वह हँसती हुई बोली, "सर, आप शतरंज के इतने शौकीन है, यह मैं नहीं जानती थी। छोटे बच्चे की तरह अकेले ही खेल रहे थे आप।"

दासबाबू हँसते हुए बोले, "अरी लड़की, शतरंज बुद्धि का खेल है, और बुद्धि ही हमारी पूंजी है। हम प्रोफेसरों को दूसरा क्या आता है? बाजार में सब्जी लाने जाता हूं तो मैं बासी सब्जी मंहगे भाव से ले आता हूं। फिर क्या होता है, बताऊं?" ऐनक की ओट की अपनी आंखें

अधखुली करते हुए वह आगे बोले, "कक्षा में घंटों लेक्चर देकर हम तुम लोगों को परेशान करते हैं और घर में गृहिणी हमें परेशान करती हैं।" बोलते-बोलते वह हँसने लगे। दादाजी और नंदा भी उनकी हंसी में शामिल हो गये। हँसते-हँसते दासबाबू ने कोने में फैली हुई शतरंज के बिसात की की ओर देखा। वह गंभीर हो गए और नंदा की ओर मुड़कर बोले, "कभी-कभी दुर्भाग्य चलते-चलते धक्का दे जाता है। उस धक्के से हम मन का संतुलन खो बैठते हैं। ऐसे समय मैं बैठ जाता हूं और लकड़ी के इन वजीरों को नचाता रहता हूं। एक तरफ मैं और दूसरी तरफ भाग्य। भाग्य की चाल भी मैं ही चलता हूं। कभी वह जीतता है, कभी मैं जीतता हूं। फिर हार-जीत एकसी लगने लगती है और मन धीरे-धीरे ठिकाने पर आ जाता है। आज यह हुआ। दोपहर की डाक में कलकत्ता से एक पत्र आया। मेरे एक बालमित्र का लड़का है। कुछ रोजगार शुरू किया था उसने। उसके लिए उसे रुपयों की जरूरत थी। अपनी बेला के विवाह के लिए मैंने जो थोड़ी-सी जमा पूंजी इकट्ठी करके रखी थी, वह सब मैंने उसे दे दी, इस शर्त पर कि दो साल बाद वह पूरी रकम लौटा देगा। कलकत्ता में उसका एक अच्छा घर है। उस घर को बेचकर रुपये जब आप चाहेंगे लौटा दूंगा, ऐसा उसने वादा किया था, और इसी आधार पर मैंने रुपये दे दिये थे। कोई लिखा-पढ़ी भी नहीं की उससे। एक महीने पहले मुझे पता चला कि उसका रोजगार ठप्प हो गया है। यह जानने के लिए कि मेरे ये रुपए वापस मिल सकते हैं या नहीं, मैंने उसके घर के विषय में पूछताछ की। आज उस पत्र का उत्तर आया। उसने वह घर पहले से ही किसीके पास गिरवी रख रखा था। और अब उसने वह भी बेच डाला है।"

दासबाबू एकदम रुके। उनके मुस्कान-भरे चेहरे पर चिंता की धुंधली छाया दीखने लगी। एक क्षण के बाद वह आगे कहने लगे, "पत्र पढ़कर उस लड़के पर क्रोध आने के बजाय मुझे अपने पर ही क्रोध हो आया और फिर बैठ गया शतरंज खेलने। यह खेल सारे तत्त्वज्ञानों का सिरमौर है। जब हम अकेले ही इसे खेलते हैं, तब इस नाटक के नायक और प्रतिनायक दोनों हमीं होते हैं। एक ही समय हम जीतते

हैं और हारते हैं। हमारी जीत ही हमारी पराजय होती है। यह अनुभव लिये बिना मनुष्य जीवन के अर्थ को समझ नहीं सकता।"

गीत के बोल तो मीठे लगते हों, पर राग के रस का मजा न ले पाते हों, कुछ इसी तरह से दासबाबू की ये बातें सुनते हुए नंदा को लगा।

तत्वज्ञान की बातें करनेवाले दासबाबू एकदम ठहाका मारकर हँस पड़े और दादाजी की ओर मुड़कर बोले, "दादासाहब, मेरी तो सदा से ऐसी ही हालत रही है। जैसे हैम्लेट कहता है न? ठीक उसी तरह। शब्द...शब्द...शब्द।" और तुरन्त ही नंदा की ओर देखते हुए वह बोले, "मैं जानता हूं कि तुझ जैसी होशियार लड़की के आगे शब्दों के ये गुब्बारे फुलाने से काम नहीं चलेगा। न जाने कब तू इन शब्दों में आलपीन लगाकर उसमें से हवा निकाल दे, इसका क्या ठिकाना!" और एकदम गंभीर स्वर में वह बोले, "खैर, छोड़ो इन बातों को। यह बता बेटी, आज क्यों आई हो?"

एक क्षण के लिए तो नंदा हक्की-बक्की-सी रह गई। पर अपनेको स्वस्थ करती हुई वह बोली, "मैं पी-एच. डी. करने की सोच रही हूं, सर, पर जरा भिन्न विषय में। इलियट ने कहा है कि हैम्लेट में एक अजीब तरह की गूढ़ता है, मुझे भी यह जंचता है। पर यह गूढ़ता है हैम्लेट की मां के बारे में। उसका चित्रण करते समय शेक्सपियर हम से कुछ छिपा रहा है, ऐसा बराबर लगता रहता है। आप ही बताइए सर, स्त्री का प्रेम क्या इतना चंचल हो सकता है? क्या स्त्री इतनी पाषाण-हृदया हो जायगी कि जन्म के साथी के नाते जिसके साथ अपने जीवन का करीब-करीब आधा सफर तय किया है, उसे वह यों ही जहर दे दे?"

जरा देर के लिए हक्का-बक्का हुआ नंदा का मन अब स्थिर हो गया था। वह बातें करने के मनोभाव में आ गई थी। दासबाबू उसकी ओर अभिमान से देखते हुए दादाजी से बोले, "दादासाहब, बड़े भाग्यशाली हैं आप। आपकी नंदा जब किसी विषय पर चर्चा करती है तो मुझे ऐसा लगने लगता है कि प्राचीन काल की गार्गी और मैत्रेयी की कथाएं सच ही होंगी। हमारी बेला को आप ले लें और अपनी यह नंदा हमें दे

दें। बोलिए, करेंगे यह सौदा आप ?"

दासबाबू के ये शब्द सुनकर दादाजी का हृदय अभिमान से भर उठा। नंदा अलबत्ता किसी छोटी-सी लड़की की तरह लज्जा से लाल हो गई। पैर के अंगूठे के नाखून से पांव के नीचे के कालीन पर वह रेखाएं खींचने लगी।

"बोलो बेटी, बोलो।" दासबाबू के ये शब्द कानों में पड़े, तब गर्दन उठाकर वह बोली, "देखिए सर, हैम्लेट की मां के विषय में विचार करते-करते मुझे महाभारत का सावित्री का आख्यान याद हो आया। हैम्लेट की तरह उसे भी मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा है। मैं उससे और अधिक असमंजस में पड़ गई जीवन का अर्थ क्या ? प्रीति का अर्थ क्या ? इन प्रश्नों ने मुझे परेशान कर डाला। कहां यम के हाथ से पति के प्राणों को वापस ले आने वाली सावित्री और कहां अपने ही पति की हत्या के षड़यंत्र में बड़े आनंद से हाथ बंटानेवाली हैम्लेट की मां ! इन दोनों में सत्य कौन ?"

"दोनों ही सत्य हैं।" दासबाबू ने शान्ति से उत्तर दिया।

नंदा चौंक पड़ी। पर एकदम चुप रही। नंदा के पास जाकर उसकी पीठ थपथपाते हुए वह बोले, "बेटी, बड़ा अच्छा प्रश्न पूछा तुमने। सावित्री और हैम्लेट की मां, ये दोनों ही सच हैं, लड़की। सावित्री के प्रेम ने भक्ति का रूप धारण किया। शारीरिक सुख का मोह दूर फेंक कर वह प्रीति की पूजा में मग्न हो गई। उसने सत्यवान पर अपने आपको संपूर्ण रूप से भूलकर प्रेम किया। आत्म-प्रेम की शृंखलाओं को उसने हंसते-खेलते तोड़ डाला। हैम्लेट की मां से यह करते न बना। अधिकांश लोगों से यह सध नहीं पाता। वे केवल अपने पर ही प्रेम करते रहते हैं। अपने क्षणिक सुख के परे वे कुछ भी देख नहीं सकते। इस कारण वासनाओं के पाश से वे कभी मुक्त नहीं होते और अन्त में वे उन वासनाओं के ही शिकार हो जाते हैं। हैम्लेट की मां की सच्ची दु:खान्तिकी यही है।" एक क्षण के लिए रुककर और माथे का पसीना पोंछकर वह बोले, "प्रकृति ने मनुष्य को मिट्टी का बनाया है, पर मिट्टी के इस भंगुर पुतले को उसने प्रकाश के अमर पंख दिये हैं। सावित्री

ने इन पंखों का उपयोग किया। इस कारण वह आकाश के तारे चुन सकी। हैम्लेट की मां इन पंखों के अस्तित्व को ही भूल गई। मनुष्य का यह ज्ञान यदि विलुप्त हो जाता है, तो वे पंख धीरे-धीरे गलकर गिर पड़ते हैं। फिर रह जाता है सिर्फ मिट्टी का पुतला, किसी भी वासना के जोरदार बहाव में सहज बह जानेवाला, और बात-की-बात में वह पुतला कीचड़ बन जाता है, और मानव उसी कीचड़ में सूअर की तरह लोटता रहता है। अंत में... ..."

यह सोचकर कि वह बहुत बोल गये हैं, दासबाबू एकदम रुक गए। दादाजी के पास आकर वह बोले, "माफ कीजिए दादासाहब, लेक्चरबाजी का व्यसन है न मेरा!"

दासबाबू की बातों से नंदा की तरह दादाजी भी प्रभावित हो गये थे। उन्हें यह कल्पना नहीं थी कि अंग्रेजी के एक उत्तम प्रोफेसर के रूप में प्रसिद्ध यह विद्वान स्वतंत्र विचारक और जीवन का अध्ययनशील तथा निपुण विद्यार्थी भी है। दासबाबू के दोनों हाथों को स्नेहभाव से अपने हाथ में लेते हुए वह बोले, "नहीं, नहीं, आपका यह उत्तम भाषण बीच ही में रुक गया, उल्टे इसका मुझे बुरा लग रहा है। बोलिए, जारी रखिये आप।" नंदा ने भी दासबाबू से आगे बोलने का आग्रह किया। दासबाबू आरामकुर्सी में बैठते हुए बोले, "नंदा, यदि कोई मुझसे पूछे कि विरोधाभास अलंकार का सर्वोत्तम उदाहरण कौन-सा है, तो मैं तुरन्त उत्तर दूंगा—मनुष्य मनुष्य के मन में जिस प्रकार उच्छृंखल आसक्ति है उसी प्रकार उदात्त विरक्ति भी है। बेटी, मनुष्य एकरंगी नहीं। उसका सच्चा संघर्ष ईश्वर से नहीं है, समाज से भी नहीं है, स्वयं से ही है। कुछ समय पहले तुमने मुझसे पूछा था—प्रीति का अर्थ क्या है?..." और बोलते-बोलते वह कुर्सी से उठे। मेज के नजदीक की दीवार पर सुंदर चौखटे में मढ़ा हुआ एक बड़ा चित्र लगा हुआ था। उसको उन्होंने धीरे-से उतारा और नंदा को वह चित्र दिखाते हुए बोले, "इस चित्र की बेल पर नाना प्रकार के रंगों के फूल खिले हैं। प्रीति भी इस बेल के जैसी ही है, बेटी। प्रीति केवल यौवन की प्रेरणा से उत्पन्न होनेवाली वासना नहीं। उस वासना की कीमत को मैं कम नहीं

मानता। सारे संसार का आधार है वह ! पर उस वासना में जब भावना का मेल होता है तभी प्रीति अमृतबेल होती है। और फिर उस बेल पर करुणा खिलती है और मैत्री फूलती है। मनुष्य जब-जब आत्म-प्रेम का कवच तोड़कर बाहर की दुनिया से एकरूप होता है, तब-तब प्रेम का सच्चा अर्थ उसे प्रकट होता है। इस बाहर की दुनिया में रौद्र-रम्य निसर्ग है, सुष्ट-दुष्ट मनुष्य हैं। साहित्य से लेकर संगीत तक की कलाएं हैं और कोढ़ियों की सेवा से लेकर विज्ञान के आविष्कार तक के आत्मा के तीर्थक्षेत्र हैं।" वह एक क्षण के लिए रुके और फिर शांति से बोले, "पर यही प्रेम यदि आत्म-केन्द्रित हुआ, आत्म-पूजा के सिवा उसे दूसरा कुछ नहीं सूझा तो मनुष्य केवल दूसरों का ही शत्रु नहीं होता, बल्कि वह स्वयं अपना भी शत्रु हो जाता है, और फिर इस बेल पर विषैले फूलों के गुच्छे लटकने लगते हैं।"

चित्र दादाजी के हाथ में देकर दासबाबू अपनी कुर्सी पर जाकर बैठ गए। फिर स्वयं अपने पर हंसते हुए बोले, "लोग प्रोफेसरों को भुलक्कड़ कहकर हमेशा उनका मजाक उड़ाते हैं। पर दादासाहब, यह मजाक कोई झूठ नहीं है। आपकी बेटी ने यह चर्चा शुरू की और मेरी भूख-प्यास जाती रही। कॉफी वगैरा की पूछने और कहने को भी भूल गया मैं। बेटी, ज़रा मेज पर की घंटी तो बजा दो।"

मेज के पास जाकर नंदा ने घंटी बजाई। एक नौकर एकदम भीतर आया। दासबाबू ने उसे कॉफी ले आने को कहा। उसके चले जाने पर उनका ध्यान कोने में पड़ी हुई शतरंज की अधूरी चाल की ओर गया। वह नंदा की ओर मुड़कर बोले, "अलकनंदा, कुछ समय पहले जो मैं कह रहा था वह अधूरा रह गया। इधर आओ, बेटी।" नंदा उठी और दासबाबू के साथ कोने में खड़ी हो गई। दादाजी कुतूहल से उन दोनों की ओर देखने लगे। दासबाबू नंदा से बोले, "ठीक से देखो, इस बिसात की ओर। मनुष्य के हृदय में जो अक्षयदीप जलता रहता है उसके प्रकाश में इसे देखो। बिसात के इस तरफ बैठी है सती सावित्री। दूसरी तरफ बैठी है हैम्लेट की मां—एक कुलटा। अनादि काल से यह खेल चल रहा है और अनंत काल तक वह चलनेवाला है। ये दोनों मनुष्य के ही

प्रतीक हैं। पहला है एक उत्तुंग आदर्श का, दूसरा है अधोगति की चरम सीमा पर पहुंची हुई वास्तविकता का। प्रत्येक मानव-जीव इन दो ध्रुवों के बीच में हमेशा चक्कर काटता रहता है।"

नौकर कॉफी का ट्रे लेकर भीतर आया। तिपाई पर उसने वह रख दी। दासबाबू हँसते हुए बोले, "यह रूखी चर्चा काफी हो गई। अब आइये, कॉफी के प्याले में शब्दों के ये सारे बुदबुदे हम डुबो दें।"

नंदा ने दो प्यालों में कॉफी डाली और दादाजी तथा दासबाबू को एक-एक प्याला दिया। फिर अपना प्याला भरकर वह कुर्सी पर जा बैठी। कॉफी की खुशबू दासबाबू को बड़ी अच्छी लगती है। जिस तरह किसी सुगंधित फूल को कोई सूंघता है, उसी तरह उन्होंने प्याले की भाप की खुशबू ली और फिर तीन-चार गरम चुस्कियां लेकर वह बोले, "मेरे शब्दों की इस आतिशबाजी को तो भूल जाना, बेटी, पर एक बात अवश्य हृदय पर अंकित कर लेना। जीवन का अर्थ जीवन जीकर ही जाना जा सकता है। निरपेक्ष प्रेम करके ही प्रीति का अर्थ समझ में आ सकता है। अंतरतम के आकर्षण से जो दूसरों का दुःख बांट लेगा, उसे ही यह अनुभव हो सकता है कि प्रीति मानव के अभिशापित जीवन को ईश्वर द्वारा दिया गया एकमात्र वरदान है।"

जिस तरह कोई चित्रकार उफनती हुई नदी की बाढ़ को किनारे पर पुतले की तरह खड़ा रहकर देखता है, उसी तरह दासबाबू की बातें सुनते समय दादाजी की स्थिति हो गई थी। जैसे फूलों से लदे हार-सिंगार के फूल टप-टप करके गिरते रहते हैं, उसी तरह दासबाबू का सारा पठन, सारा चिंतन, जीवन-विषयक सारा तत्त्वज्ञान उनकी बातों से टपक रहा था। इस कारण उनके बंगला ढंग के उच्चारण दादाजी को कभी .ो नहीं खटके।

दासबाबू की बातें सुनते-सुनते दादाजी को नंदा की मनस्थिति का ध्यान हो आया। वह बोले, "आपका यह कहना कि मनुष्य को बाहर की दुनिया. से एकरूप होने की जरूरत है, बिलकुल सच है, दासबाबू। मैं चाहता हूं कि पी-एच० डी० करने से पहले नंदा साल छः महीने बाहर की दुनिया घूम-फिरकर देख ले।"

"तू बाहर जाने को तैयार है, बेटी ?" एकदम जैसे कुछ याद हो आया हो, ऐसा भाव बरसाते हुए दासबाबू ने नंदा से पूछा।

"कहां ?"

दादाजी की ओर मुड़कर, खिलखिलाकर हंसते हुए दासबाबू बोले :

"देखा, दादासाहब ? ये हैं हमारी लड़कियां। कहां, कब, किसके साथ इन प्रश्नों के चक्रव्यूह में हो उलझी रहनेवालीं। पाश्चात्य लड़की ऐसी नहीं ! पृथ्वी की पीठ पर कहीं भी जाने को हमेशा तैयार रहेगी वह ! बिल्कुल अकेली ! नए-नए अनुभवों का आनंद लेने के लिए !"

दासबाबू की यह उक्ति एक प्रकार की चुनौती थी नंदा को। नंदा एकदम आवेश में उछलकर बोली, "मैं तैयार हूं जाने के लिए—कहीं भी !"

कौतुकभरे स्वर में दासबाबू बोले, "मैं तुझे कोई उत्तर ध्रुव जाने के लिए थोड़े ही कह रहा था ! वैसे तुम लड़कियां एक बार वहां चली भी जाओगी ! पर हम मां-बापों को भी तो उतनी हिम्मत होनी चाहिए। हां, तो मैं क्या कह रहा था ?...एक जमींदारिन को एक पढ़ी-लिखी साथिन—कम्पेनियन—की जरूरत है। हमारे कालेज की ही विद्यार्थी थी वह ! मैं मजाक में उसे शकुंतला कहा करता था। उसके रूप के जैसा ही उसका गला भी मीठा था। उसने एक बार एक गीत गाया था, जो मुझे अभी तक याद आता है—'ओ सजना, बरखा बहार आई !"

नंदा आश्चर्य से बोली, "क्या वसुन्धरा गुप्ते ? उसे कम्पेनियन की जरूरत है ? पर वह जमींदारिन कब से हो गई ?"

दासबाबू हंसते हुए बोले, "हां, ठीक पहचाना तुमने। कल अचानक ही उसका फोन आया। तब मैंने उससे भी यही पूछा था। वह अपने कालिज की फर्स्ट ईयर में थी न ? तभी किसी फिल्म कम्पनी से फिल्म के लिए उसकी आवाज की जांच करने की बात चल रही थी। वहीं बिलासपुर के एक जमींदार भी आये थे। यह उनकी आंखों में बैठ गई और कानों

में बजने लगी। फिर क्या था ? प्रेम क्या केवल कण्व ऋषि के आश्रम में ही थोड़े पनपता है ? और, छोड़ो इस किस्से को। तो कम्पेनियन का वह ढाईसौ रुपये माहवार देगी। वैसे काम में कुछ नहीं है। सिर्फ उसके साथ घूमना-फिरना होगा। उसे कभी सनक आई, तो कुछ पढ़कर सुनाना होगा। उसके एक छोटी लड़की है। उसे बीच-बीच में फिट्स आते हैं। उस लड़की को थोड़ा संभालना होगा। बस !" और एकदम दादाजी की ओर मुड़कर उन्होंने प्रश्न किया, "क्यों बाबासाहब, ठीक है न ?"

दादाजी ने हँसते हुए उत्तर दिया, "बाहर की दुनिया देखने का यह अवसर है। तू जरूर जा, नंदा।"

नंदा उत्साहित होकर बोली, "सर, मैं अच्छी तरह जानती हूं इस वसुन्धरा गुप्ते को। उसके 'ओ सजना' गाने पर मैं इतनी खुश हो गई थी कि पूछो मत। उसकी कम्पेनियन होने मैं बड़ी खुशी से उसके यहां जाऊंगी।"

दासबाबू हँसते-हँसते बोले, "वह यहीं किसी होटल में ठहरी है। पता, फोन नंबर आदि बता दिया है उसने अपना। ठहर तो ! अभी फोन मिलाता हूं उसे।"

दासबाबू फोन करने नजदीक के कमरे में गए और नंदा की आंखों के सामने बिलासपुर की यात्रा के सुन्दर स्वप्न मूर्त हो उठे। सुन्दर वसु के मधुर गान के ताल पर नाचनेवाले, हँसनेवाले !

पर रात को जब दादाजी ने यह बात मां से छेड़ी तो नंदा को यह भय लगने लगा कि उसका यह स्वप्न ओले की तरह जरा-सी देर में ही गल जायगा। मां बस एक ही जिद पकड़कर बैठ गई कि लड़की नौकरी ही करना चाहती है तो उसे यहीं करने दो। दादाजी जब उसको दलीलें देकर समझाने लगे तो आंखों में आंसू भरकर वह बोलीं, "यह मां का मन है। आप नहीं समझ पायेंगे इसे।" इस पर दादाजी एकदम चुप हो गए। दादाजी का यह विश्वास था कि अगर नंदा बंबई में रही तो शेखर की याद के शोले उसके मन में धधकते ही रहेंगे, और वह कहीं दूर चली गई, किसी आनंदमय वातावरण में रम गई और आसपास के सुख-दुःख की ओर दुनिया की रीति समझकर देखने लगी तो उसका मन

शायद स्थिर हो जाय। इसीलिए दासबाबू को एक क्षण का भी विलंब न कर नंदा को बिलासपुर जाने की अनुमति दे दी थी, और नंदा भी बिलासपुर जाने को उत्सुक हो गई थी। एक तो उसे यह सिद्ध करके दिखाना था कि दासबाबू ने पढ़ी-लिखी भारतीय लड़कियों पर कूपमंडूक होने का जो आरोप लगाया है, वह झूठ है; दूसरे यह कि वसू के प्रति उसके मन में छिपा हुआ पुराना आकर्षण जाग उठा था और उसका मन तरंगित होने लगा था। उसके साथ के अनेक सुखद स्वप्न वह देखने लगी थी। मन में ऐसा उल्लास पिछले पांच महीनों के बाद आज प्रथम बार ही वह अनुभव कर रही थी।

दो दिन इसी तरह गुजरे। नंदा निराश हो गई। अगर कोई चमत्कार ही हो जाय तभी बिलासपुर जाना संभव हो सकता है, ऐसा उसे लगने लगा। मन को कहीं-न-कहीं उलझाना था। इसलिए एक दिन वह अपनी एक सहेली नलू के घर चली गई। यह हाल ही में अपने मायके आई थी। शाम को घर लौटने पर उसने हाथ-मुंह धोया और रसोई में कदम रखा ही था कि मां बोलीं, "मैं सोचती हूं कि अब हमें तेरी बिलासपुर जाने की तैयारी कर देनी चाहिए।" नदा उनकी इस बात का मतलब ही नहीं समझ पा रही थी। वह एकटक उनकी तरफ देखती रही। तब मां ने हँसते हुए कहा, " यों उजबक जैसी क्या देख रही है ! तेरी वह प्यारी सहेली वसुंधरा बिलासपुर की जमींदारिन हो गई है न ? उसीके यहां तो तुझे जाना है। पर यह बात किसीने भी मुझे ठीक से समझाकर बताई ही नहीं। कम-से-कम मुझे ठीक से यह सब समझा-कर बताना था कि नहीं ? वसू ने दो दिन तक तेरी राह देखी। पर तेरा पता नहीं चला। इसलिए दासबाबू से घर का पता पूछकर वह यहां तुझसे मिलने आई थी। बड़ी भाग्यशालिनी है वह लड़की। कैसी सुन्दर है उसकी गाड़ी। तुझपर बड़ा प्रेम है उसका। मुझसे कसम खिलवाकर कहने लगी, "मां, या तो नंदा को भेज दीजिए मेरे साथ, नहीं तो मुझे ही रख लीजिए अपने घर।" मैंने उससे कहा, "तुझ जैसी जमींदारिन की खिदमत करने की ताकत मुझमें नहीं है। तू अपनी नंदा को ही ले जा अपने साथ। और देख, कहीं जम जाय तो मेरे लिए

एक अच्छा दमाद भी देख देना।"

नंदा चुपचाप यह सब सुन रही थी। जो चमत्कार वह चाहती थी, वह हो गया था। लेकिन रह-रहकर उसके मन में यही आ रहा था कि उस दिन मां का इंकार सुनकर मैं इतनी घबड़ाई क्यों थी ? उससे 'हां' करवाने का यह सरल मार्ग मुझे उस दिन क्यों नहीं सूझा ?

यह देखकर कि नंदा चुपचाप खड़ी है, मां उसके पास गई और उसकी पीठ पर हाथ फेरती हुई बोली, "कल सुबह उठते ही पहले उसके घर जाना और यहां से कब कैसे निकलना है, यह सब उससे तय कर लेना। इस दुनिया में सब मिल जाता है, बेटा, पर ऐसा प्रेम नहीं मिलता।"

: १६ :

नंदा ने दरवाजे की घंटी बजाई। तुरन्त एक नौकर ने दरवाजा खोला। "बाईसाहब आप ही की राह देख रही हैं।" उसने नंदा से कहा। नौकर उसे वसुंधरा के विशाल कमरे के दरवाजे तक छोड़ आया। दरवाजा थोड़ा खुला हुआ था। नंदा ने उसे धीरे-से और खोला। आवाज वसुंधरा को सुनाई नहीं पड़ी होगी। वह एक कोच पर अधलेटी-सी बैठी हुई थी। उसकी पीठ नंदा की तरफ थी। उसके सामने एक बहुत बड़ी गुड़िया रखी हुई थी और उसे वह एकटक देख रही थी।

नंदा को आश्चर्य हुआ। वह समझ नहीं पा रही थी कि इस गुड़िया से वसुंधरा ऐसी कौन-सी अपने मन की बात कह रही है। कालेज में वह सिर्फ़ आठ-दस महीने ही रही थी। उस समय भी आम्र पल्लवों में छिपकर कुहू-कुहू करनेवाली कोयल की तरह ही वह लगती थी, हमेशा अपनी ही धुन में मस्त रहती थी। अब जमींदारिन हो जाने पर उसका वह एकान्त-प्रिय स्वभाव बिलकुल बदल गया होगा, अपनी इस कल्पना को लेकर ही नंदा उससे मिलने आई थी।

कालेज में रहते समय वसुंधरा का केवल एक ही स्वप्न था—लोकप्रिय पार्श्व-गायिका होकर खूब पैसे कमाना—इतना कमाना कि रोज नई-नई कीमती साड़ियां वह पहन सके। अनेक अच्छी गायिकाओं की वह

हू-ब-हू नकल करती, पर "यह गाना तुझसे ठीक जमा नहीं", ऐसा यदि कोई उससे कह देता तो वह रोने को आ जाती और बिलकुल प्राण देने को तैयार हो जाती। नंदा को लग रहा था कि जमींदारिन वसुंधरा, जो एक लड़की की मां हो गई है, वह मेरी उस वसू से भिन्न होगी और प्रौढ़ता से वह मेरा स्वागत करेगी। पर अब अपनी इस निराधार कल्पना पर उसे स्वयं ही हँसी आई।

इसी समय एक साफ-सुथरी और उजले रंग की होशियार-सी दीखने वाली नौकरानी वहां आई। वह वसुंधरा की ही सेवा करनेवाली उसकी खास दासी रही होगी। उसने देखा कि नंदा दरवाजे में ही खड़ी रह गई है। वह जोर से बोली, "बाई, इधर आ जाइए।" यह सुनते ही वसुन्धरा चौंक पड़ी। उसने मुड़कर देखा तो दरवाजे में खड़ी हुई नंदा को उसने तुरन्त पहचान लिया और एकदम उठकर दरवाजे के पास जाते-जाते बोली, "अरी नंदा, यों पराए जैसी दरवाजे में क्यों खड़ी रह गई? मैं जमींदारिन हूं, पर वह तो इस पार्वती के लिए, तेरे लिए, नहीं। हम और तुम तो कालेज की सहेलियां हैं।" यों कहते-कहते नंदा के दोनों हाथ पकड़कर उसे अपने कोच पर बिठाती हुई वह बोली, "देख नंदा, तू मुझे वसू ही कहा करना और मैं तुझे नंदा कहूंगी। यहां आप-बाप का कोई काम नहीं। जिस दिन दासबाबू का फोन आया कि तू मेरी कम्पेनियन बनने के लिए तैयार है, उस दिन मुझे इतनी खुशी हुई कि कुछ न पूछ। ऐसा लगा था कि तुरन्त जाकर महालक्ष्मी देवी के चरणों में साष्टांग प्रणाम करूं।"

नंदा नहीं समझ पा रही थी कि क्या कहे। वसुन्धरा की बातों में जो अतिशयोक्ति थी उसके कारण वह जरा घबरा गई थी। यह देख कर कि वह कुछ नहीं बोल रही है, वसुन्धरा उसे झकझोरती हुई बोली, "अरे, तू क्यों बोलेगी मुझसे? तू तो थी कालेज में स्कालर और हम थे 'अक्ल के दुश्मन', पर नंदा, तू तो जैसी कालेज में थी वैसी-की-वैसी अभी भी है। अपनी कोमलता टिकाए रखने की कोई कीमिया पैदा की है तूने शायद। मुझे भी सिखा दे न वह।"

नंदा की अब भी समझ नहीं आ रहा था कि क्या कहे। पर कुछ बोलना

चाहिए, इसलिए बोली, "तू तो अच्छी-खासी जमींदारिन हो गई है, वसु। भगवान ने तुझे कैसा मधुर कंठ दिया है, इसके सहारे जीवन-भर अपनी कोमलता टिकाए रख सकेगी तू।" नंदा यह बोली तो, पर वसुन्धरा की ओर बारीकी से देखने पर उसे लग रहा था कि कुछ असामान्य-सी बात है जरूर। वैसे वसु की देह पहले से कुछ भर गई है, इस कारण उसकी रूपश्री और अधिक खिली दीख रही थी। पर उसे देखकर किसी प्रतिभाशाली शिल्पकार द्वारा बनाए गए अंधे पुतले का-सा आभास हो रहा था उसे। जब वह कालेज में थी उस समय उसकी आंखों में चैतन्य छलकता रहता था। उसकी आंखें ऐसी लगती थीं जैसे शुक्र के दो तारे हों, और जब वह 'ओ सजना' गाने लगती थी तो उन आंखों से तितलियां नाचती हुई बाहर निकल पड़तीं। नंदा ने उसकी ओर फिर देखा। उसका मन पूछना चाहता था कि वसू, वे शुक्र के तारे कब अस्त हो गये, तेरी वे तितलियां कहां चली गईं? वसू के प्रति करुणा से नंदा का मन भर उठा।

नंदा का हाथ अपने हाथ में लेकर वसुन्धरा बात करती रही। वसू के हाथ का अजीब-सा उमसभरा ठंडापन नंदा को महसूस होता रहा। वसू के यह कहने पर कि 'बंबई की हवा ही ऐसी है' उसने अपने मन को संतोष दे लिया। चिंता-भरे स्वर में वसू उससे कह रही थी, "दो-तीन महीने हो गए। मधुरा को फिट्स आने लगे हैं। खूब उपाय किये बिलासपुर में, पर कोई लाभ नहीं हुआ। इसलिए उसे यहां लेकर आई। बड़े-से-बड़े डाक्टरों को दिखाया। उन्होंने जो-जो दवाएं बताईं, वे सब उसे दीं। उनसे अब वह कुछ ठीक है। पर मेरा मन अभी तक ठिकाने पर नहीं आ रहा है, बहन। सोचा, यहां से लौटते वक्त एक अच्छी मौसी लेती जाऊं, मधुरा के लिए, जिससे मेरे भी एक साथी हो जायगा और बेबी को भी अकेलापन नहीं महसूस होगा। सगी बहन की तरह ही कोई साथी चाहती थी मैं। जो भी पहचान का मिलता उसी से कहती कि मेरे लिए कोई अच्छी कम्पेनियन खोज दे। परसों मधू के लिए एक छोटी-सी कहानी की पुस्तक लाई। वह थी शकुन्तला की कहानी। तभी एकदम रामराव की याद हो आई। वह मुझे शकुन्तला कहा करते थे।"

बोलते-बोलते वसुन्धरा रुकी जैसे कोई अधूरा स्वर हवा में विलीन हो गया हो। सामने रखी बड़ी गुड़िया की ओर बड़े प्यार से देखती हुई वह गुनगुनाने लगी, "नयना बरसे रिमझिम-रिमझिम।"

नंदा को यह परिवर्तन जरा अटपटा-सा लगा। मधुरा तो वहां कहीं आप-पास भी नहीं थी।

इसी समय चाय का ट्रे लेकर पार्वती भीतर आई। चाय बनाकर उसे प्याले में डालते-डालते वह बोली, "मालकिनजी, गांव कब चलेंगे हम लोग?"

गुड़िया पर जमी हुई नजर को पार्वती की ओर घुमाकर वसुन्धरा बोली, "क्यों, क्या गंगाराम की याद आ रही है?"

पार्वती शरमा गई। गर्दन झुकाकर नीचे देखने लगी। वसुन्धरा नंदा की ओर मुड़कर बोली, "हमारी पार्वती बड़ी होशियार है, समझी! मेरे और मधू के सारे काम वह बिल्कुल दिल लगाकर करती है। पर..." जरा हँसकर बोली, "चार महीने पहले इसकी शादी हुई है न देवदत्त के ड्राइवर गंगाराम से।"

नंदा ने पूछा, "देवदत्त? ये देवदत्त कौन हैं?"

वसुंधरा ने कहा, "अरे हां, खास बात पर तो ध्यान ही नहीं गया। मुझे कहना चाहिए था कि 'उनके' ड्राइवर से, अब ठीक है न? पर मैं तो देवदत्त ही कहती हूं उन्हें! बहुत बड़ी जायदाद है, उनकी। समझी! तेरे जैसी विदुषी को बिल्कुल बुरा नहीं लगेगा वहां, बिलासपुर में! इसके सिवा नजदीक ही एक गांव है, जहां चन्दनगढ़ नाम का एक बहुत प्राचीन किला है। अच्छे जलवायु का स्थान है। वहां सुंदर बंगला भी है हमारा। बड़े मजे से वक्त गुजरेगा वहां, तेरा!"

जब पार्वती बाहर जाने लगी तब जैसे कुछ याद आ गया हो, इस भाव से वसुंधरा बोली, "अरे, मधू कहां है? देख तो जरा जाकर। उससे कहना, मौसी आई है तेरी—नंदा मौसी।"

चाय पीते-पीते नंदा मन में कहने लगी—लड़की के दुःख से बड़े ही कोमल दिल की हो गई है वसू। इसके पास मैं अगर चार-छः महीने रह जाऊं तो इसे अच्छा लगेगा और इसका मन भी स्थिर हो जायगा।

कम-से-कम वसू के लिए मुझे बिलासपुर जाना चाहिए।

जैसे ही मधुरा की चहक बाहर से सुनाई पड़ने लगी, त्योंही वसुंधरा बोली, "नंदा, हम चार-छः दिनों में चल देंगे यहां से, समझी! तू, मैं, मधू और पार्वती कार से चलेंगे। बाकी के लोग रेल से आयंगे।"

"मम्मी, मम्मी", कहती हुई मधुरा दौड़ती हुई भीतर आई। पांच वर्ष की उस प्यारी लड़की को देखकर नंदा का वात्सल्य उमड़ पड़ा। उसे मिलिंद की याद हो आई। यह निगाह पड़ते ही कि मां के पास कोई बैठा है, मधुरा ठिठक गई। नंदा की ओर एकटक वह देखने लगी। फिर उसने धीरे-से पूछा, "मम्मी, क्या यही नई मौसी हैं?"

नंदा ने उठकर शरमाती हुई मधुरा को धीरे-से उठा लिया और अपनी गोद में बिठाकर उसकी ठोड़ी ऊपर उठाती हुई बोली, "मुझे अच्छी-अच्छी कहानियां आती हैं। समझी?" उसकी ओर चकित भाव-से देखते हुए मधुरा ने पूछा, "मुझे अभी कहानी सुनाओगी?" नंदा ने पुनः गर्दन हिलाई। मधुरा धीरे-से बोली, "पर राक्षस की कहानी मत सुनाना। मुझे डर लगता है उसका।" 'राक्षस' को 'लाक्षस' न कहकर, उसने राक्षस शब्द का उच्चारण स्पष्टता से किया, इसकी नंदा ने मन-ही-मन बड़ी सराहना की। उसने हँसते हुए उत्तर दिया, "अच्छी-अच्छी कहानियां ही सुनाऊंगी मैं तुझे। पर इसके लिए मेरी भानजी को मुझे एक मीठी-मीठी पप्पी देनी होगी!" यह सोचकर कि नंदा अब मेरी पप्पी लेगी, मधुरा झट से उसकी गोद से उतरकर दूर खड़ी हो गई। तभी वसुंधरा के सामने रखी गुड़िया की ओर उसका ध्यान गया। "गुड़ियों की रानी, गुड़ियों की रानी," कहती और तालियां बजाती हुई उसे उठाने के लिए वह लपकी; पर वसुन्धरा ने वह गुड़िया तुरंत उठा ली और बोली, "अभी हाथ नहीं लगाना इसे, तू पांच मिनट में उसका कचूमर निकाल देगी! तोड़-फोड़ करना तेरे खून में ही जो है। इसके लिए क्या किया जाय?" यों कहते-कहते वह उठी और कोने में रखी एक अलमारी पर, जिसमें सुन्दर शीशा जड़ा हुआ था, उसने वह गुड़िया रख दी।

गुड़िया न मिलने के कारण मधुरा चिढ़ गई। उसके होंठ कांपने

लगे। यह देख नंदा ने उसे झट से अपने नजदीक खींचकर समझाते हुए कहा, "ऐसे रोते नहीं है, बेटा। हम तो तुम्हारे लिए इससे भी बड़ी गुड़िया ले आयेंगे। समझी!" उसके इस मीठे और प्यार-भरे शब्दों से मधुरा खुश हो गई। उसके होंठों की कंप-कंपी थम गई।

: १७ :

घाट का दृश्य देखकर नंदा का मन खिल उठा। सुन्दर स्वप्नों का मानो मेला लगा था वहां! थोड़ी देर के लिए तो नंदा का मन इस संभ्रम में पड़ गया कि वह किसी परियों के देश की तो यात्रा नहीं कर रही है! घाट के मोड़ों पर गाड़ी बड़ी सहजता से घूम जाती थी जैसे कोई कबूतर शान से गर्दन मोड़कर एक बार इधर देखे और दूसरी बार उधर देखे। कुहरे के फीके रंग की आसमानी मच्छरदानी में सोई हुई वनश्री अभी तक जागी नहीं थी। उसके निद्रित लावण्य के अस्फुट दर्शन से नंदा मंत्रमुग्ध हो गई थी। आकाश दृष्टि-पथ में नहीं आ रहा था। कदाचित उसपर बादल रेंग रहे होंगे!

सुबह ही वर्षा हो जाने के कारण प्रकृति, अभ्यंग स्नान की हुई किसी सुहागिन-सी, दीख रही थी। ऐसा लग रहा था, मानो गोबर-पानी से छिड़काव करके जगह साफ-सुथरी बनाकर और तरह-तरह के फूलों का चौक पूरकर वह अब देव-पूजा को बैठ ही रही है। सूर्य का नीराजन लगाने की तैयारी ही में है वह!

सूर्य-बिम्ब क्षितिज पर आया। बात-की-बात में आस-पास का धुंधलापन विलुप्त हो गया।

इतनी देर तक नंदा घर को भूल-सी गई थी। नया खिलौना मिलते ही छोटे बच्चे को जैसे मां की याद नहीं आती, कुछ उसी तरह की उसकी भी हालत हो गई थी; पर सामने सूर्य-बिम्ब के दीखते ही उसे एकदम मां, दादाजी और मिलिंद की याद हो आई। उसे लगा, दादाजी चाय पीकर अखबार पढ़ रहे होंगे; पर उनका आधा ध्यान तो समाचारों में और आधा ध्यान मेरी यात्रा की ओर लगा होगा! मां चाय के वक्त

मेरी याद करके बेचैन हो रही होंगी और जागकर मिलिंद ने "मौसी कहां है, मौसी कहां है ?" कहकर शोर मचाना शुरू कर दिया होगा और उसे समझाते-समझाते मां परेशान हो रही होंगी !

पीछे से मधू की आवाज कानों में पड़ी, "मैं मौसी के पास बैठूंगी ! ऊं, ऊं, ऊं... मैं मौसी के पास जाऊंगी।"

नंदा ने मुड़कर देखा। वसुन्धरा कोने में आंखें बंद किये लेटी थी और पार्वती की गोद में सोई मधुरा जाग उठी थी। नंदा ने धीरे-से उसे अपने पास ले लिया। मौसी की गोद में बैठकर मधुरा बाहर देखने लगी। पेड़ आंख-मिचौनी करते हुए दौड़ रहे थे। गर्दन घुमाकर वह बोली, "नंदा मौसी, हमारे बाग के पेड़ तो कभी नहीं दौड़ते। ये क्यों दौड़ रहे हैं इस तरह ?"

हर पीढ़ी के बचपन में खड़े होनेवाले इस सनातन प्रश्न को सुनकर नंदा मन में हंसी। मधुरा के बालों को सहलाते हुए उसने उत्तर दिया—"पेड़ नहीं दौड़ रहे हैं, बेटा, हम दौड़ रहे हैं।"

मधुरा भी कोई कम उस्ताद नहीं थी। वह झट-से बोली, "हम कहां दौड़ रहे हैं। हम तो गाड़ी में बैठे हैं।"

"हम दौड़ रहे हैं, यानी हमारी गाड़ी दौड़ रही है।"

"गलत, गलत !" मधुरा ताली पीटती हुई चिल्लाई। फिर शरारत-भरी नज़र से नंदा की ओर देखते हुए उसने पूछा, "तुम कहां तक पढ़ी हो, मौसी ?"

"एम० ए० हो गई हूं मैं।"

"एमे ! पर मेरी तरह मांटसेरी कहां हुई हो तुम ? पेड़ कैसे दौड़ते हैं, यह तो हमारे एक गीत में बताया है !"

यह देखकर कि मधुरा ने शिशुवर्ग के गीत को अपनी बात के प्रमाण में पेश किया, नंदा को बड़ा मज़ा आया। वह बनावटी गम्भीरता से बोली, "मुझे सुनाओ तो जरा वह गीत। मुझे एम० ए० में भी किसी-ने ऐसा कोई गीत नहीं पढ़ाया !"

गर्दन और हाथ से अभिनय करती हुई मधुरा मुक्तकंठ से गाने लगी :

गाड़ी चलती छुक् छुक् छुक्,
बंदर देखे टुक टुक टुक।

: १८ :

नंदा का खयाल था कि बिलासपुर का दर्शन उसे दिन के उजाले में होगा; पर दोपहर को आराम करने के बाद, पूना छोड़ते समय, वसुंधरा ने ड्राइवर से कहा, "महादेव, हम सीधे बिलासपुर नहीं जा रहे हैं। सातारा के आगे बीच में जो एक रास्ता फूटता है न, जहां आते समय हमने भभूत ली थी, वहां उसी ओझा के पास पहले हमें चलना है। बेबी से उनके पैर छुआवेंगे और फिर आगे चलेंगे।" महादेव ने गर्दन हिलाकर 'हां' कहा और उसके चक्र घूमने लगे। पर उस चक्र की अपेक्षा और भी अधिक वेग से नंदा का विचार-चक्र घूमने लगा। बंबई के बड़े-बड़े डाक्टरों से मधुरा की जांच कराकर वसुन्धरा वापस बिलासपुर जा रही है। मधुरा को आनेवाले फिट्स डाक्टरों की दवाओं से थम गए हैं। फिर वसुन्धरा इस भभूत-वभूत के चक्कर में क्यों पड़ी है ?

मधुरा से जिन महाराज के चरण छुआये जानेवाले थे, वह अपने स्थान पर नहीं थे। पता चला कि गांव के नजदीक की टेकड़ी पर भूतनाथ का मंदिर है, वहां गये हैं। गाड़ी उस तरफ मोड़ दी गई, पर टेकड़ी पर गाड़ी ले जाने के लिए सड़क नहीं थी। इसलिए सब लोग नीचे उतरे और पैदल ऊपर चढ़ने लगे। टेकड़ी बहुत ऊंची नहीं थी। पर उसपर खूब घनी झाड़ी थी। ड्राइवर उस ओझा महाराज की खोज में जरा आगे बढ़ गया और मधुरा नंदा की अंगुली पकड़कर जल्दी-जल्दी चलने लगी। पार्वती और उसके पीछे वसुन्धरा धीरे-धीरे टेकड़ी चढ़ने लगीं।

उस घनी झाड़ी में एक पक्षी की ऊंची सीटी जैसी आवाज सुनाई दी, जैसे किसी दूर चले गए साथी को कोई पुकार रहा हो। उस सीटी को सुनकर मधुरा दीवानी-सी हो गई। 'मौसी, मुझे वह पक्षी दिखाओ।"

उसने ज़िद पकड़ ली। नंदा भी सीटी बजानेवाले उस अपरिचित पक्षी को देखने के लिए उत्सुक हो गई थी। सारा जीवन बंबई में बीता होने के कारण पक्षियों की आवाजें संध्या के रंगों की तरह ही नाना प्रकार की होती हैं, इसकी उसे कल्पना नहीं थी। मधुरा का हाथ पकड़े हुए वह झाड़ी में बाईं तरफ घुस पड़ी। सीटी की आवाज जिस दिशा से आ रही थी उस ओर वह मुड़ी। वह पक्षी इधर-उधर कहीं नजदीक ही होगा। पर वह ठीक किस जगह पर है, यह समझ में नहीं आ रहा था। उसे खोज निकालना आंख-मिचौनी से भी अधिक दिलचस्प और आनंद-दायी खेल था। नंदा भी मधुरा के बराबर ही छोटी हो गई। उस पक्षी को खोज निकालने के लिए वह कभी बाएं मुड़ती तो कभी दायें। अब सीटी बहुत ही पास सुनाई पड़ रही थी। हर्षावेग में मधुरा ने अपना हाथ नंदा को पकड़ से छुड़ा लिया और वह आगे दौड़ पड़ी। इसी समय बंदूक का निशाना साधे सैनिक-जैसा दीखनेवाला एक आदमी झाड़ी में से निकल आया। उसके हाथ की बंदूक देखते ही मधुरा एकदम "म-म-म-ममी" कहकर चीख पड़ी और थरथर कांपती हुई नीचे गिर पड़ी।

पलक झपकते ही यह सब हो गया। ऐसा कुछ हो जायगा, इसकी नंदा को कल्पना भी नहीं थी। फिर शिकार का शौक पूरा करने उस टेकड़ी पर आये हुए उस मनुष्य को भी वह कैसे हो सकती थी। नंदा झट-से नीचे बैठ गई। मधुरा का सिर गोद में लेकर वह अपने आंचल से उसे हवा झलने लगी। उसने उस मनुष्य से कहा, "पीछे जमींदारिनजी आ रही हैं, उन्हें यहां जल्दी से बुलाओ।"

मधुरा बीच-बीच में आंखों को बराबर खोलती और बंद कर लेती। नंदा के मन में आया कि बिलासपुर पहुंचने से पहले ही यह क्या विघ्न आ खड़ा हुआ? इस विचार से वह जरा घबरा-सी गई।

वसुंधरा आई। भभूत देनेवाला वह भूतनाथ का उपासक भी इसी समय वहां आ पहुंचा। बहुत देर तक छू-छा करके और उस टेकड़ी पर के सारे भूत-पिशाचों को धमकियां देकर उसने अपनी मंत्रित भभूत मधुरा को लगाई। पर मधुरा के जल्दी होश में आने के आसार नजर नहीं आ रहे थे। महादेव दौड़ता हुआ नीचे गया और दौड़ता हुआ ही

गाड़ी से दवाओं का बैग लेकर आया। वसुधरा ने जल्दी-से एक दवा निकालकर नंदा को दी और नंदा ने उस दवा की एक-दो बूंद मधुरा के मुंह में डालीं। दस-दस मिनट के बाद वह उन बूंदों को उसके मुंह में डालती जा रही थी। करीब दो घंटे के बाद मधुरा को होश आया। थरथर कांपते हुए उसने पूछा, "मम्मी ! दादी कहां हैं ?" और तुरन्त ही उसने अपने नन्हें हाथों से यकायक आंखें बंद कर लीं। वह रुआंसे स्वर में बोली, "मत मारो—मेरी दादी को मत मारो।"

: १६ :

नंदा बिलासपुर पहुंची, उस समय सारा गांव अंधेरा ओढ़कर नींद की गोद में पड़ा झपकियां ले रहा था। अपने विशाल कमरे के नजदीक का एक कमरा वसुंधरा ने नंदा को दिया। वहां उसने अपना सामान रखा। मधुरा गाड़ी में ही सो गई थी। इसलिए मुंह-हाथ धोने के बाद तुरन्त दोनों खाने पर बैठीं। खाते वक्त नंदा बिल्कुल चुप थी। उसे जो कमरा दिया गया था उसकी दीवारों पर जहां-तहां देवी-देवताओं और साधु-संन्यासियों, संतों तथा वैरागियों के चित्र लगे हुए थे। उनमें के एक चित्र की ओर उसने कुतूहल से देखा। कुर्सी पर चढ़कर यह जानने का प्रयत्न किया कि वह किसका चित्र है। चित्र के नीचे लिखे "अक्कलकोटकर स्वामी", ये अक्षर बड़ी मेहनत से उसने पढ़े। खाना खाते समय उसकी निगाह बीच-बीच में आसपास घूम रही थी। जमींदार के निवास-स्थान को शोभा दे, ऐसी कोई भी सजावट उसे वहां नहीं दीख रही थी। किसी मठ के समान इधर-उधर पुराण की कथाओं पर आधारित चित्र उसका स्वागत कर रहे थे और एक गूढ़ तथा अद्भुत जग में उसे खींचकर ले जा रहे थे। चित्र-विचित्र वेष धारण किये हुए साधु-संतों के चित्रों की यहां भी कमी न थी।

यह देखकर कि नंदा कुछ भी नहीं बोल रही है, वसुंधरा ने पूछा, "दीवार की ओर क्या देख रही है बार-बार ?"

हंसने की कोशिश करती हुई नंदा बोली, "तू आजकल बड़ी धार्मिक

हो गई दीखती है। कोई बूढ़ी दादी हो जैसे।"

उसका आशय वसुंधरा समझ गई। शून्य दृष्टि से सामने के चित्रों की ओर देखती हुई वह बोली, "यह मेरा बंगला नहीं है, नंदा। मेरे ससुरजी यहां रहते थे पहले। उनकी स्मृति के लिए मेरी सासजी ने उनके समय की सारी सजावट ज्यों-की-त्यों रखी है।"

"तेरे ससुरजी बड़े देवभक्त थे!"

"कौन जाने? देवदत्त के बचपन में ही वह चल बसे। सुनती हूं, साधु-संतों का बड़ा शौक था उन्हें। उनके पीछे वह बिलकुल पागल थे। इतने साल हो गये। पर सासजी उन्हें अभी तक नहीं भूली हैं। जान-बूझकर वह यहीं रहती हैं। उन जैसी पतिव्रता..."

"कहां हैं वह? रात को खाना-वाना नहीं खातीं क्या?"

"आजकल तीर्थयात्रा को गई हैं। वह हमेशा जाया करती हैं। साल में छः महीने भी यहां नहीं रहतीं वह!"

"मधुरा उन्हें बहुत प्यार करती मालूम होती है।"

यह पूछते समय दोपहर को भूतनाथ की टेकड़ी पर घटी वह विचित्र घटना नंदा की आंखों के सामने आ खड़ी हो गई—बंदूक का निशाना ताने पक्षियों का शिकार करनेवाला वह आदमी ज्योंही आगे आया, उसे देखकर मधुरा एकदम घबड़ा गई और डर के मारे बेहोश हो गई। पहले से ही उसे फिट तो आते ही थे। इसमें अनोखी बात कुछ नहीं थी। पर होश आने पर उसके मुंह से जो शब्द निकले थे कि 'मत मारो, मेरी दादी को मत मारो!' इन उद्‌गारों का आखिर क्या अर्थ था? उसके मुंह से ये शब्द क्यों निकले? यह असंगत था, या उसके उद्‌गारों के पीछे कोई गहरा रहस्य है?

नंदा के प्रश्न का वसुन्धरा ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह हाथ के कौर को मुंह में रखती हुई नंदा की नजर चुरा-सी रही थी। दोनों की आंखें जब टकराईं तब नंदा के ध्यान में आया कि वसू का चेहरा बिलकुल फीका पड़ गया है। नंदा विचारों में डूब गई।

खाना खा चुकने के बाद नंदा जब अपने कमरे की ओर जाने लगी तो वसुन्धरा ने उसे अपने नजदीक खींचा और उसके गले में बांहें

डालती हुई बोली, "मुझे बड़ा डर लगता है, नंदा, यहां। लोग कहते हैं कि ससुरजी का भूत इस कमरे में घूमा करता है। मुझे तो वह अभी तक नहीं दीखा। पर मन में डर जरूर समाया हुआ है। तुझे आग्रह करके जो मैं यहां ले आई वह इसीलिए कि रात-दिन कोई मेरी सहेली मेरे साथ रहे। तू मेरे ही कमरे में सोना, समझी!"

नंदा आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगी। उसके मन में आया कि इतने दिनों बाद तो वसुन्धरा लौटी है, देवदत्त उसके आगमन के लिए आंखें बिछाए बैठे होंगे! विरह-काल के छोटे-मोटे सुख-दुखों का आदान-प्रदान करते हुए वह सारी रात जागकर गुजारना चाहते होंगे! उसकी जगह वसुन्धरा यह पागलपनभरा आग्रह मुझसे क्यों कर रही है? वसुन्धरा को आये इतनी देर हो गई और अभी तक वह इधर आये नहीं! नंदा ने हिचकिचाते हुए पूछा, "देवदत्त किसी दूसरे गांव गये हैं क्या?"

"क्या पता?" वसुन्धरा चिड़चिड़े स्वर में बोली और तुरंत ही पार्वती को पुकारती हुई बाहर चल दी।

नंदा और अधिक असमंजस में पड़ गई। मधुरा को फिट आते हैं, इसलिए उसकी जांच कराने वसुन्धरा बंबई गई थी। यह मालूम होने पर कि मधुरा लौट आई है, लड़की के स्नेह से आकर्षित देवदत्त को क्या यहां नहीं आना चाहिए था? उनका बंगला वैसे यहां से कोई बहुत दूर भी नहीं है। बीच में सिर्फ एक बाग ही तो है। आने के कुछ समय बाद ही पार्वती ने नंदा को उनका बंगला दिखा भी दिया था।

वसू के बंबई जाने से पहले पति-पत्नी में शायद कोई झगड़ा हो गया हो! सुमित्रा दीदी कहा करती थीं मुझसे—"बचपन में जैसे भाई-बहन में दोस्ती और कुट्टी, उसी तरह विवाह के बाद पति-पत्नी में!" सावन की धूप-वर्षा की तरह प्रेम और कलह की आंखमिचौनी का खेल होता ही रहता है पति-पत्नी के जीवन में! पर ऐसा रूठना और रिसाना क्या इतने दिन बना रह सकता है?

वसुन्धरा पार्वती से बरामदे में कुर्सियां रखने को कह आई थी। दोनों ही बाहर आ गई और चुपचाप रात का गूढ़-रम्य सौन्दर्य देखने

लगीं। वर्षा ऋतु कभी की समाप्त हो चुकी थी। पर आज आकाश अचानक काले बादलों से घना हो गया था—लंबा-चौड़ा चरागाह जैसे भेड़ों से पूरा भर गया हो! बादलों में छिपी हुई वर्षा को छूकर दौड़ती आती हवा शरीर को रोमांचित कर देती। सामनेवाले देवदत्त के बंगले में गाना-बजाना हो रहा होगा! वाद्यों के मधुर स्वर बाग के निद्रित फूलों के कानों को झंकृत करते हुए इस बंगले तक आकर पहुंच रहे थे। उन मीठे स्वरों ने नंदा के मन की छः वर्ष पहले की स्नेह-सम्मेलन की याद को जगा दिया। वसुन्धरा का हाथ अपने हाथ में लेकर वह बोली, "कितने-कितने साल हो गये री, तेरा वह 'ओ सजना' सुने! उसे एक बार फिर सुनने की बड़ी इच्छा हो रही है मेरी! उसे सुनूं और इस आकाश की तरह उन्मत्त होकर सो जाऊं..."

नंदा के हाथ से अपने हाथ को छुड़ाती हुई वसुन्धरा ठंडेपन से बोली, "गाने को जी ही नहीं करता मेरा अब! क्या हो गया है, मुझे, सो भगवान जाने! चंपा के फूल कितने भाते थे, मुझे! तुम सब सहेलियां हंसती थीं, फिर भी मैं उन्हें अपने बालों में खोंसती रहती थी। पर अब उनकी खुशबू से जी भारी-सा हो जाता है। लाल गुलाब से तो डर ही लगता है मुझे। उसका वह रंग देखा कि खून की याद हो आती है—किसी मूक प्राणी के खून की!"

नंदा का मन शेखर की दुखद स्मृतियों के पिंजड़े से बाहर निकल गया था। खुले आसमान में वह उड़ना चाह रहा था। वह पक्षी अपना अत्यंत प्रिय गीत सुनना चाहता था। उसी गीत के प्रिय स्वरों को मन में समाता हुआ वह सो जाना चाहता था। अपनी इस उल्लसित मनस्थिति के कारण वसुन्धरा की बात पर ध्यान नहीं दिया, उल्टे उससे वह बड़े प्यार से बोली, "ऐसा कहा है कि मनुष्य को सुख भी दुःख देता है! तुझे देखकर मुझे यह सच लगने लगा है। अरी पगली, ईश्वर ने इतना मीठा गला दिया है तुझे, तो क्या यों बैठे-बैठे कुढ़ने के लिए?"

वसुन्धरा ने नंदा के दोनों हाथ एकदम कसकर पकड़ लिये। उसके कांपते हुए हाथों के स्पर्श से नंदा स्तब्ध हो गई। भरे हुए कंठ से वसुन्धरा बोली, "इस गले ने ही मेरा गला काटा है, नंदा! तेरे उस

प्रिय गीत ने ही ! बिलकुल लता की तरह गाती थी मैं उसे ! पर..." एकदम उसने नंदा के हाथ छोड़ दिये और दोनों हाथों से अपना मुंह ढांपकर वह चुप हो गई।

नंदा उसकी इस बात का कुछ भी अर्थ नहीं समझ पा रही थी ! कोई बहुत बड़ा दुख वह उससे छिपा रही है, इतना अलबत्ता उसे विश्वास हो गया। लेकिन इतना दु:खी होने के लिए वसू के जीवन में ऐसी कौन-सी बात हो गई थी ? सफर में उससे उसके विवाह का हाल नंदा ने सुना था। यह लड़की वसू बचपन में ही अनाथ हो गई थी। दीखने में सुन्दर। गला मीठा। पढ़ाई में, बेशक, बहुत मामूली। मामा ने छोटे-से बड़ा किया, पढ़ाया-लिखाया। जब कालेज के प्रथम वर्ष में थी, उस समय ही पार्श्वगायिका के रूप में प्रसिद्ध होने का अवसर अनायास ही इसको मिल गया था। इसके मामा जिस स्टूडियो में इसे ले जाते थे वहीं देवदत्त भी आया करते थे। वह इसके गाने पर खुश हो गये। इसके रूप ने उन्हें दीवाना बना दिया। बात-की-बात में यह लड़की बिलासपुर की जमींदारिन हो गई। रियासतों तथा जमींदारियों का अब पहले जैसा महत्व नहीं रहा था। पर यह अनाथ गरीब लड़की एक धनी घर की लक्ष्मी बन गई ! जिसे भाग्य कहते हैं, वह इसके लिए और क्या होता ! भाग्य ने वसू की इतनी सहायता की, फिर भी यह पगली लड़की उसकी ओर पीठ फेरकर इस तरह क्यों बर्ताव कर रही है ?

इस प्रश्न का उत्तर खोजने का यह समय नहीं है, बल्कि वसू को धीरज देने का है, यह नंदा को तुरंत समझ में आ गया। वसू की पीठ पर बहन के स्नेह से हाथ फेरती हुई वह बोली, "तू ऐसा क्यों करती है, वसू ? तू तो मधुरा से भी छोटी बन गई है ! चल, भीतर चलकर अब हम सोएं।"

वसुन्धरा का हाथ पकड़कर वह उसे भीतर ले गई। नंदा ने उसे उसके पलंग पर आहिस्ते से सुला दिया। उसका सिर थपथपाते हुए वह कुछ देर वहीं बैठी रही। सफर की थकान उसे भी महसूस हो रही थी। थोड़ी देर बाद वह उठी और सामनेवाले अपने पलंग पर जाकर लेट गई। पर उसे एकदम नींद नहीं आई। बाहर आकाश में उमड़नेवाले

बादलों की तरह कितने ही प्रश्न उसके मन में भी उमड़ने लगे थे।

: २० :

पक्षियों के मीठे कलरव से नंदा की नींद टूटी। पर एक-दो मिनट उसका मन असमंजस में पड़ गया। उसे लगा, मैं यह कलरव कहीं सपने में तो नहीं सुन रही हूं! अंगड़ाई लेते-लेते "मां, क्या चाय बन गई," यह प्रश्न अस्पष्टता से उसके मन में झांक गया। पक्षियों का कलरव अब अधिक सुनाई पड़ने लगा। कौवों की कांव-कांव भी इस समय उसे कर्कश नहीं लग रही थी, जैसे नाना प्रकार के पक्षी अपना मधुर वृंदवाद्य बजा रहे हों और उसमें कौवों की ऊंची आवाजें उभरकर आ रही हों!

यह अब उसके ध्यान में आया कि वह बंबई में नहीं, बल्कि बिलासपुर में है। वह हँस पड़ी। सामने के पलंग पर आसमानी रंग की सुन्दर मच्छरदानी में वसुन्धरा और मथुरा शांति से सोयी हुई थीं। उनकी ओर उसने देखा। दबे पांव वह बाहर निकली। मुंह धोकर पार्वती द्वारा दी गई बढ़िया गरम चाय उसने पी और थोड़ा घूम आने के लिए वह उठी।

बंगले की सीढ़ियां उतरते ही उसने जो दृश्य देखा उसके कारण उसे ऐसा लगा, जैसे किसी विशाल समुद्र में घूमनेवाली वह कोई मत्यस्यकन्या हो। ऊपर, नीचे, आसपास, चारों ओर कुहरे का समुद्र-सा फैला हुआ था। नाजुक, रेशमी, आसमानी रंग का भीना-सा कुहरा—नन्हें बच्चे के घुंघराले बालों जैसा! बाहर रात-भर रिमझिम पानी बरसा होगा। इस कारण हवा की सुखद ठंडक शरीर की तरह मन को भी गुदगुदा रही थी। नंदा अपने कमरे में लौट आई और स्वेटर पहनकर बाग में गई। उसे लगा कि इस कुहरे में आंखमिचौनी खेलने को कोई साथी हो। बचपन में ननिहाल जाने पर नदी के पानी में उतरकर वह और सुमित्रा एक दूसरे पर पानी उछाला करती थीं। उसी तरह इस कुहरे को भी एक-दूसरे के बदन पर उड़ाने का खेल खेलने की इच्छा

उसके मन में पैदा हुई। इस कल्पना के साथ खेलते-खेलते उसे लगा कि प्रकृति मनुष्य के भीतर के शैशव को सदैव जगा दिया करती है, यह सत्य है!

उस ठंडे और आसमानी रंग के समुद्र की तली में घूमते-घूमते वह बाग के वृक्षों, लताओं और फलफूलों की माली से पूछताछ करने लगी। कलियां अभी खिलने को थीं। समुद्र की तली के मोतियों की सीपों के समान वे उसे लगीं। बाग के मध्य भाग में एक सुन्दर चबूतरा था। किसी सिरपेंच की तरह एक छोटा-सा फव्वारा उस पर शान से खड़ा था। नंदा उसी चबूतरे पर बैठ गई, तो एकाएक उसे मिलिंद की याद हो आई। वह अब जाग गया होगा और घर में इधर-उधर मौसी की खोज कर रहा होगा!

घर की याद से उसका मन कुछ क्षण के लिए बेचैन हो उठा। दादाजी से बिदा लेते समय उसने जब झुककर उन्हें प्रणाम किया, उस समय उसकी पीठ पर वात्सल्य से हाथ फेरते हुए उन्होंने जो कहा था, उसे वह याद हो आया—"नंदा, यहां की चिन्ता न करना। व्यर्थ ही पुरानी यादों की पपड़ियां मत निकालती रहना। जो बात हो गई, सो हो गई। बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुध ले! नए मित्र और नई सहेलियां बनाना। सुखी रहना। यह एक क्षण के लिए भी मत भूलना कि आखिर जीवन में हर मनुष्य को अपने-अपने रास्ते से ही आगे बढ़ना पड़ता है। उस रास्ते से फिर नए रास्ते फूटते हैं और पुराने रास्ते उसमें आकर मिलते हैं। उन सबका स्वागत करना। आषाढ़ की वर्षा और शरदपूनों की चांदनी की तरह उनपर प्रेम करना!"

दादाजी के इस कथन का एक-एक शब्द उसने अपने मन में सम्हाल कर रखा था। वसू मेरी बहन है, मधुरा मेरी भानजी है, यह मानकर ही वह यहां रहनेवाली थी। परंतु उसके मन के धागे अभी तक बम्बई के घर में उलझे हुए थे। कितनी ही देर तक वह शरीर से बिलासपुर के उस चबूतरे पर बैठी हुई मन से बम्बई के अपने घर में घूमती रही।

: २१ :

सुनहरी धूप के वत्सल स्पर्श से नंदा अपनी तंद्रा से जागी। उसने आसपास देखा। किसी विलक्षण स्वप्न की तरह कुहरे का वह समुद्र जाने कहां विलुप्त हो गया था। दूर बाग के पूर्वी कोने में एक पीपल उस सुनहरी धूप से खेल रहा था। उसके पत्तों की सरसराहट निर्झर के कलकल जैसी मीठी लग रही थी। उसने सामने देखा कि बाग के उस पार छोटे-बड़े कई सुन्दर बंगले शान से खड़े थे और कोमल धूप में नहा रहे थे। देवव्रत वहीं रहते होंगे। वसुन्धरा के जगने से पहले उन बंगलों का एक चक्कर लगा आने का विचार उसके मन में आया।

वह पहले बंगले के नजदीक पहुंची। वह इमारत उसे किसी सभा-भवन जैसी लगी। बंगले का दरवाजा खुला हुआ था। भीतर मनुष्यों की कोई चहल-पहल नहीं दीख रही थी। उसे आश्चर्य हुआ। दरवाजे के बाहर स्टूल पर बैठा एक बूढ़ा नौकर बीड़ी पी रहा था। यह देखते ही कि सीढ़ियां चढ़कर कोई महिला बंगले की तरफ आ रही है, उसने वह बीड़ी फर्श पर झटपट बुझाई और अपने पाजामे की जेब में घुसेड़ ली। नंदा के आगे आते ही उसने उसे बड़े अदब से सलाम किया। बाई साहब को उसने भाभीसाहब के बंगले से आते देखा था। वह कोई बड़ी मेहमान होंगी, इस कल्पना से ही उसने वह सलाम ठोका था।

"क्यों दादा, क्या यहां कोई रहता नहीं है?" नंदा ने प्रश्न किया।

'दादा' के संबोधन से बूढ़े चौकीदार की कली खिल गई। उनके चेहरे पर संतोष फैल गया। उन्होंने उत्तर दिया, "यह सरकार की लायब्रेरी है, बाई साहब।"

"लायब्रेरी?" नंदा के मुंह से आश्चर्य-भरा उद्गार निकल पड़ा। वसुन्धरा ने उससे यह कहते समय कि बिलासपुर में तुझे जरा भी बुरा न लगेगा, शायद इसी लायब्रेरी का उल्लेख किया होगा। उसे यह याद हो आया। पर वह लायब्रेरी इतनी बड़ी होगी, ऐसा उसने नहीं सोचा

था। स्वभाव से ही वह प्रतिमा की पुजारिन थी। इस कारण लायब्रेरी के इस दर्शन से देवदत्त के विषय में उसके मन में अनुकूल मत बन गया। रात-दिन सुंदर ग्रंथों की संगति में रहनेवाला मनुष्य बुद्धिमान और संवेदनशील होना चाहिए, यह उसकी कल्पना यद्यपि थोड़ी-बहुत भोलेपन की थी, फिर भी बार-बार उस इमारत की ओर कौतुक से देखते समय उसके मन में वह चमक गई।

"क्या मैं भीतर जा सकती हूं?" नंदा ने नौकर से पूछा। बूढ़े ने हंसते हुए उत्तर दिया, "हमें कौन पढ़ना-लिखना आता है, बाईसाहब! हां-हां, आप जाइएं भीतर। सरकार की सवारी रात-भर थी यहां।"

सरकार की सवारी? याने देवदत्त? वसुन्धरा के पति? वह सुबह तक यहां थे? पर वह वसू से मिलने क्यों नहीं आये? मधुरा की पूछताछ करने के लिए वह फटके भी नहीं। ऐसा क्यों होना चाहिए? लकड़ी को खोखली कर देनेवाले कीड़े के समान यह प्रश्न नंदा के मन को उसके अनजाने कुतरने लगा।

पर भीतर कदम रखते ही वह चकित होकर चारों ओर देखने लगी। उस विशाल कमरे में चारों तरफ पुस्तकों से भरी हुई अलमारियां-ही-अलमारियां दीख रही थीं। खिलौनों से भरी हुई किसी बड़ी दूकान में जाते ही छोटा बालक जिस तरह खुश हो जाता है, उसी तरह वह इस ग्रंथ-संग्रह को देखकर आनंदित हो उठी। उसे बाण भट्ट का उस प्रसंग का वर्णन याद हो आया, जब चन्द्रापीड़ को अच्छोद सरोवर दीख जाता है।

उस कमरे के मध्य भाग में जाकर वह फिर सब ओर आंखें फाड़-फाड़कर देखने लगी। फिर हर अलमारी के पास जाकर उसमें बड़ी तरतीब से रखी हुई नाना आकारों और नाना विषयों की पुस्तकों का वह निरीक्षण करने लगी। प्रत्येक अलमारी पर उसके भीतर होनेवाली पुस्तकों की सुन्दर अक्षरों में लिखी हुई सूची टंगी थी। उसने सहज एक अलमारी पर टंगी हुई सूची पढ़ी। अनेक प्रकार की रामायणें, महाभारत के विभिन्न अनुवाद, विवेकानंद के समग्र ग्रंथ—इस सूची पर निगाह डालने पर लगा कि देवदत्त के पठन-पाठन का क्षेत्र बड़ा विस्तृत होना

चाहिए। यहां रहकर मैं पी-एच० डी० का अध्ययन सहज कर सकूंगी, यह विचार भी उसके मन को छू गया।

उसने फिर नजर चारों ओर घुमाई। उसे एक कोने में एक सुन्दर गोल मेज दिखाई दी। उस मेज के पास दो बड़ी आरामकुर्सियां आमने-सामने रखी हुई थीं। क्षण-भर के लिए उसे लगा कि यहां से एकाध पुस्तक उठाऊं और उस कुर्सी पर बैठकर आराम से पढ़ने लगूं। पर तुरंत ही यह विचार उसके मन में आया कि वसुंधरा के जागने का समय हो गया होगा, इसलिए वह दरवाजे की ओर मुड़ी। पर उस गोल मेज पर पड़ी हुई दो पुस्तकें उसे दूर से ही दीख गईं। रात-भर देवदत्त यहां थे, याने वह यहीं बैठे पढ़ रहे थे, यह स्पष्ट था। उन्हें नींद न आने की बीमारी है क्या? या कि किसी अन्य कारण से उन्हें नींद नहीं आती? फिर कल रात को यहां जो गाना-बजाना चल रहा था, वह किसलिए?

उसने सोचा कि रात को देवदत्त अगाथा ख्रिस्ती अथवा पेरी मेसन की पुस्तकों में से कोई पुस्तक पढ़ रहे होंगे। पर मेज के नजदीक जाकर उसने जो पुस्तक उठाई तो वह था भवभूति का उत्तररामचरित नाटक। वह चकित हो गई। मतलब? क्या देवदत्त और मैं एक ही प्रकार की पुस्तकें पसंद करते हैं? पुस्तकों के बारे में दोनों की रुचियां क्या एक ही प्रकार की हैं?

उत्तररामचरित में रखा हुआ चिन्ह का कागज बाहर झांक रहा था। देवदत्त क्या पढ़ रहे थे, इस विषय के उसके कुतूहल ने जोर पकड़ा। उसने वह चिन्हवाला पृष्ठ खोला। वहां जो कागज रखा था, वह सिर्फ चिन्ह का कागज ही नहीं था, बल्कि उसपर सुन्दर अक्षरों में कुछ मजमून भी लिखा हुआ था। उसे वह पढ़ने लगी—

"वसिष्ठ ने सीता की तरह दीखनेवाली सोने की मूर्ति बनवाई। सहधर्मचारिणी के नाते उस मूर्ति को नजदीक बिठाकर रामचन्द्र ने अश्वमेध-यज्ञ सम्पन्न किया। उत्खनन करनेवाले कोई अन्वेषक यदि उस मूर्ति को खोज निकालें, तो हमारी वर्तमान सरकार को बड़ी मदद होगी।

"छोड़ो इसे। यह तो मजाक हुआ! उस सोने की कीमत कितनी

होगी, यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण नहीं। उस मूर्ति के कारण यज्ञ सम्पन्न हो भी गया होगा, क्योंकि धर्म-कृत्य, यज्ञ-याग आदि बातें आखिर बाहरी चीजें हैं, आजकल के अभिनंदन-समारोहों की तरह, मंत्रियों के भाषणों की तरह। पर वह निर्जीव स्वर्ण-प्रतिमा जब राम के पास रखी गई होगी, उस समय उनके हृदय में किन भावनाओं का कोलाहल उठा होगा? जिसका कसकर चुम्बन नहीं लिया जा सकता, अपने हाथ से जिसके आंसू नहीं पोंछे जा सकते, 'तुम मेरे हो न?' 'मेरे ही हो न?' 'मैं तुम्हारी हूं।' 'मैं तुम्हारी ही हूं!' इस तरह अमृतभरे शब्दों से जिसके साथ मधुरालाप नहीं किया जा सकता, ऐसे उस पीले पत्थर की अचेतन मूर्ति को देखकर उनका हृदय भर आया होगा। मुझे लगता है कि यज्ञ के उन दिनों में हर रात को हाड़-मांस की सीता की याद में बनवास के दिनों के स्वर्ग-सुख के क्षणों का स्मरण करके राम के आंसुओं से उनका सिरहाना तर हो गया होगा। पर हां, पंडित लोग इसपर शंका उपस्थित करेंगे—यज्ञ के यजमान गद्दों पर सिरहाने लेकर सोते होंगे क्या? कौन जाने?"

नंदा विचार करने लगी। यह सब देवदत्त ने ही लिखा होगा, क्योंकि जमींदार की इस लायब्रेरी में दूसरा तो और कौन आयगा? इस मजमून का प्रारंभ और अंत, बीच के भाग की अपेक्षा, भिन्न प्रकार का था, मानो पहला और आखिरी वाक्य किसी नटखट मनुष्य के लिखे हों, और बीच का भाग किसी भावनाशील मनुष्य के हृदय का उफान हो। इस बीच के भाग को लिखनेवाला स्वयं कोई दुखी लगता है या यह सारा किसी कल्पना का विलास मात्र है?

'उत्तररामचरित' रखकर उसने दूसरी पुस्तक उठाई। वह था शेक्सपीयर का नाटक 'हेम्लेट'। नंदा चौंक पड़ी। मेरा और देवदत्त का पूर्व-जन्म का कोई रिश्ता तो नहीं! यह कल्पना उसके मन को छू गई, जरा देर को। आजकल वह भी तो हेम्लेट का पारायण कर रही थी! इस पुस्तक में भी चिन्ह के लिए एक कागज रखा था। वह पृष्ठ उसने खोला। पहले अंक का दूसरा दृश्य था वह—"मैं अब जीना नहीं चाहता! हे ईश्वर, इस दुनिया की हर चीज से मुझे नफरत हो गई है।

धिक्कार है इस दुनिया को ! यह दुनिया मुझे उस बाग की तरह लगने लगी है, जिसमें कोई देखभाल न होने के कारण जहां-तहां घासफूस मनमानी तौर से उग रही है !"

उस चिन्ह के कागज पर लिखा था :

"इस दुनिया की देखभाल करनेवाला कोई माली है—उसे ही कुछ लोग ईश्वर कहते हैं, ऐसा मैं बचपन से सुनता आ रहा हूं। पर उस बाग का वह चतुर्थ श्रेणी का अधिकारी मुझे तो अभी तक कहीं भी नहीं मिला। शायद बुढ़ापे के कारण वह किसी अस्पताल में भरती हो गया होगा ! यह दीर्घायु हो, ऐसी मेरी हार्दिक इच्छा है। पर जबतक वह अस्पताल में है तबतक इस लावारिस बाग का क्या किया होगा ? उसे ठीक-ठाक कौन रखेगा ? उसके घासपात कौन निकालेगा, इन प्रश्नों के उत्तर..."

मजमून यहीं खत्म हो गया था। मंदा ने हेम्लेट बंद कर मेज पर रख दिया। एक कुर्सी खींचकर वह बैठ गई और सोचने लगी, जिसने यह लिखा है, उसकी बुद्धि कुशाग्र होनी चाहिए। उसके पास हृदय की कोमलता भी है। यह लेख यदि देवदत्त का होगा, तो उसका और उसके आचरण का संबंध कैसे लगाया जाय ? इस आदमी को वसू और मधुरा की पूछताछ करने के लिए कल रात में पांच मिनट का भी समय नहीं मिला होगा ?

घड़ी के बजने की मधुर आवाज उसके कानों में पड़ी। उसने गर्दन उठाकर घड़ी की ओर देखा। आठ बजे थे। मैं आई तो हूं वसू की कम्पेनियन बनकर, और पहले ही दिन घूमते-घूमते लायब्रेरी में घुस गई ! यह ठीक नहीं हुआ, ऐसा उसे लगा। वह तुरंत उठी और जल्दी-जल्दी जाने लगी। पर दरवाजे तक पहुंचते-पहुंचते ही घुंघरुओं की मंजुल ध्वनि उसके कानों में पड़ी, मानों उस स्थान में अदृश्य रूप में रहनेवाली सरस्वती अपनी वीणा के मधुर स्वर छेड़ने लगी हो। पायलों की वह छम-छम किधर से आ रही है, उसे समझ नहीं पड़ा !

दूसरे ही क्षण उसे जो दृश्य दीख पड़ा, उसे देखकर वह आनंद से खिल उठी। एक सुन्दर हरिनी के गले में बंधे नन्हें घुंघरुओं की

वह मीठी आवाज थी। चकित-सी वह हरिनी इधर-उधर देखती हुई धीरे-धीरे भीतर आ रही थी। कुछ-कुछ लंगड़ाती हुई वह चल रही थी। नंदा की तरफ उसका ध्यान नहीं था। जिस तरह क्षितिज पर बिजली क्षण में इधर और क्षण में उधर चमक जाती है, उसी तरह उसकी नजर इधर-उधर घूम रही थी, मानों वह किसीको खोज रही हो या उसके साथ कोई आंख-मिचौनी खेल रहा हो और वह छिपकर बैठे हुए अपने साथी को खोज निकालने की कोशिश कर रही हो।

हरिनी थोड़ी और आगे बढ़ी। तब नंदा के ध्यान में आया कि उसका एक पैर लंगड़ा है। एक क्षण के लिए उसे लगा, मानों जीवन की अपूर्णता ही उस हरिनी के रूप में मूर्तमान उसके सामने खड़ी है। उसने हरिन दो-चार बार पहले भी देखे जरूर थे, पर दूर से। किसीको उसने अपनी गोद में कभी नहीं लिया था या उसे सहलाया नहीं था। उसकी मासूम आंखों में आंखें डालकर उससे बातें भी कभी नहीं की थीं। शकुंतला की तरह उसने कभी प्यार से उसे घास नहीं खिलाई थी। उसके मन में आया कि धीरे-से आगे बढ़कर उसे पकड़ ले और उसे गले से लगाकर उसके कान में कहे—"ईश्वर ने तुझे कब बनाया है री? बाघ और सिंह से पहले, या उसके बाद? तेरी मूर्ति बनाने के बाद उन क्रूर प्राणियों की प्रतिमाएं बनाने की उसके हाथों ने हिम्मत भी कैसे की होगी? या अपनी उस क्रूरता के प्रायश्चित्त-स्वरूप यह कोमलता निर्मित की हो।"

नंदा धीरे-से चार-पांच कदम आगे बढ़ी ही थी कि उस हरिनी की निगाह उसपर पड़ी। एक अनजान व्यक्ति को देखते ही वह डर गई। भाग जाने के लिए वह पीछे की ओर मुड़ी, पर बिलकुल आराम से। पैर लंगड़ा होने के कारण वह दौड़ नहीं सकती थी। यह सोचकर कि उसे पकड़ लेना कोई मुश्किल बात नहीं, नंदा जरा तेजी से आगे बढ़ी। इसी समय "चंचल, चंचल" की आवाज बाहर से सुनाई दी। कान खड़े कर चंचल ने उसे सुना और गर्दन मोड़कर प्रसन्न मुद्रा से आगंतुक की ओर वह देखने लगी। पुकारनेवाला व्यक्ति अगले ही क्षण भीतर आया। वह एक ऊंचा, सुदृढ़ और गोरा नवयुवक था। उसके सिर के

लंबे घने बाल बिखरे हुए थे, पर उसका भव्य माथा और उसकी भेदक आँखें उन केशों की मेहराब के बाहर झांक रहे थे।

भीतर आनेवाले मनुष्य ने झुककर चंचल को सहलाते हुए कहा, "मुझे छोड़कर भाग जाने का इरादा है क्या ? पर एक बात मत भूलना, बेटी ! इस दुनिया में देवदत्त के सच्चे मित्र दो ही हैं—एक तू और दूसरी मृत्यु !"

जिस तरह कोई छोटी लड़की अपनी गुड़िया से बातें करती हो, उसी तरह चंचल से वह बातें कर रहा था। उसे यह कल्पना भी नहीं थी कि उसकी ये बातें कोई दूसरा सुन रहा होगा। अपनी उपस्थिति वह किस तरह महसूस कराये, यह नंदा समझ नहीं पा रही थी। पर जो बात उसके कानों में पड़ी, वह बड़ी विचित्र थी। एकाकी आत्मा का वह मूक आक्रोश था। उसके अनजाने ही उसे सुनना गुनाह था। उसने सोचा कि मुझे अपनी उपस्थिति देवदत्त को महसूस करा देना बहुत जरूरी है। इसलिए उसने भी पुकारा, "चंचल, चंचल।"

चंचल चौंक पड़ी। उसकी ओर मुड़कर देखती हुई वह देवदत्त के और अधिक निकट आ गई। नंदा के शब्द कानों में पड़ते ही देवदत्त भी चौंक पड़ा। तनिक आगे बढ़कर उसकी ओर देखा और कुछ क्षण के लिए 'क्या कहूं क्या न कहूं, यह उसे सूझ न पड़ा', पर तुरन्त ही उसकी विनोद-वृत्ति जाग उठी। उसने गंभीरता से उससे पूछा, "आप कौन हैं ? हेम्लेट नाटक की 'आफेलिया' या कि उत्तररामचरित की 'सीता' ? अमर ग्रंथों की नायिकाएं पुस्तकों से बाहर निकलकर अपने चाहकों से मिलने चली आती हैं, यह अनुभव मेरे लिए बिलकुल नया है ?"

भावनाओं की भिन्न-भिन्न घटाओं से नंदा का मन भर उठा। संकोच से दब-सी गई।

देवदत्त उसके नजदीक आ गया और बोला, "माफ कीजिएगा। मजाक करने के मोह को मैं कभी संवरण नहीं कर पाता। वैसे देखा जाय तो किसी भी मोह को मैं रोक नहीं पाता। अत्यंत दुर्बल हूं मैं। मेरे मित्र हमेशा कहते हैं कि देवदत्त के कोश में 'संयम' शब्द ही नहीं है। आप कौन हैं, यह अनुमान से ही मुझे जान लेना चाहिए था।"

उसके इस प्रकार दिल खोलकर बातें करने से नंदा का संकोच जाता रहा। उसकी ओर स्निग्ध दृष्टि से देखते हुए पर शरारत-भरे स्वर में उसने प्रश्न किया, "कौन हूं मैं ?"

"वकील।"

"वकील ?"

"हां, हमारी रानी सरकार की वकील। पर आप मेरी भी अच्छी वकालत करेंगी।"

"सो किस तरह ? मैं तो आपको प्रथम बार ही देख रही हूं आज।"

"पर मुझे आपकी पूरी जानकारी है। वसू के साथ आई हैं आप कल रात को उसकी कंपेनियन होकर। आपका नाम नंदाजी है।"

देवदत्त को यह कैसे मालूम हुआ, नंदा समझ नहीं सकी। उसके लिए यह एक पहेली ही हो गई। तभी देवदत्त हंसते हुए बोला, "आप तो चक्कर में पड़ गई दीखती हैं। अजी, ऐसी मामूली जानकारी प्राप्त कर लेना हमारे लिए कोई बड़ी कठिन बात नहीं। जिस तरह वसू के जासूस हमारे दरबार में हैं उसी तरह हमारे जासूस उसके अंतःपुर में हैं।"

उसके इन शब्दों को सुनते ही नंदा का चेहरा फीका पड़ गया, यह देवदत्त के ध्यान में आया। वह हाथ जोड़ता हुआ बोला, "माफ कीजिए, नंदाजी ! मैंने आपको जासूस नहीं कहा। आप आई हैं कल रात को। यहां की राजनीति में अभी आपको मंजना है। आपका नाम मुझे कैसे मालूम हुआ, बताऊं ? वसू की सेवा में जो पार्वती नौकरानी है न, उसका पति गंगाराम मेरा ड्राइवर है। कल रात पत्नी ने पति को जो समाचार दिया, पति ने वही सुबह अपने मालिक के पास पहुंचा दिया, समझीं !"

: २३ :

देवदत्त की बातें सुनते हुए नंदा हर क्षण अपने मन में सोच रही थी कि वसू को इतना बढ़िया, सुन्दर और रसिक पति मिला है, फिर भी मुझे ऐसा महसूस हो रहा है कि इन दोनों के बीच जैसे एक भयानक

छाई फैली हुई है। रात को जब मैंने वसू से 'आ सजना' गीत गाने को कहा, तब वसू ने यह क्यों कहा था कि उस गाने ने ही उसका गला काटा ? उस गाने को सुनकर ही देवदत्त का मन उसकी ओर आकर्षित होने लगा होगा। पर बाद में ये दोनों किसी कारण से एक-दूसरे से दूर हो गये लगते हैं। मुझे इन दोनों किनारों को जोड़नेवाला पुल बनना होगा। वसू की भूल होगी, तो उसे मैं समझा सकती हूं। वह मेरी सहेली है। भूल अगर देवदत्त की हो तो ? हेम्लेट और उत्तररामचरित पर इतना प्रेम करनेवाला मनुष्य, एक निरीह मृगछौने से शकुन्तला की तरह अपने हृदय की बातें कहनेवाला क्या पत्नी की भूल को सुधार लेने के लिए तैयार नहीं होगा ? क्या उसके सुख-दुःख को वह महसूस नहीं करेगा ? क्या वह अपने कर्तव्य को नहीं पहचानेगा ? नहीं, ऐसा नहीं होगा। इन दोनों में अनबन होने का कारण जो भी हो, उसे खोजना होगा और उसे खत्म करना होगा।

बातचीत करते हुए नंदा और देवदत्त गोल मेज के पास आ गए थे। देवदत्त ने एक कुर्सी नंदा की तरफ बढ़ाई। दोनों कुर्सियों पर बैठ गए। अपने पैरों के नजदीक बैठी चंचल को सहलाता हुआ देवदत्त बोला, "चंचल का एक पैर लंगड़ा है। मेरी ही कारगुजारी है यह। आज तो मैं इसके लिए जान देने को तैयार हूं, पर एक दिन ऐसा था कि हरिनों का शिकार करके उनका कोमल मांस खाना मेरा शौक था।

"मतलब ?" भयभीत स्वर में नंदा ने पूछा।

"अरे हां, आपको यह बताना रह ही गया। मुझे लगा कि वसू ने मेरा सारा गुण-गान आपसे कर दिया होगा। शिकार का बेहद शौक है मुझे। चंदनगढ़ के उस पार के जंगल में हमेशा शिकार खेलने जाता हूं। जाता हूं, माने पहले जाया करता था। शेर भी मिल जाते हैं उस जंगल में। इसी तरह एक दिन शिकार खेलने गया था। मेरी आहट पाते ही इस चंचल की मां प्राणों के भय से भागने लगी। यह बच्ची बहुत छोटी थी। यह घबड़ाई और डर गई। यह मां के साथ तेजी से भाग नहीं सकी और इसका एक पैर गढ़े में गिरकर लचक गया। यह गिर पड़ी। मैंने बन्दूक का निशाना ताना, पर इसी समय इस बच्ची ने पीछे मुड़

कर देखा। उसकी करुण आंख से आंख मिलते ही मेरा शिकार का मज़ा उतर गया और उस नशे का स्थान करुणा ने ले लिया। लंगड़ी चंचल को लेकर मैं घर लौट आया। जिस समय स्वाद से इसका कोमल मांस खाता, उस समय मैं इसका सिर अपनी गोद में रखकर इसे थपथपा रहा था, और पशु-चिकित्सक इसके पैर का इलाज कर रहा था।"

चंचल की इस कहानी को सुनते हुए नंदा को लगा कि देवदत्त के स्वभाव में असाधारण उत्कटता है। अनजाने आथेलो और लियर उसकी आंखों के सामने आ गये। इस साम्य के कारण ही मेज पर रखे हुए हेम्लेट नाटक की ओर उसका ध्यान गया। सहज ही वह पूछ बैठी, "रात को शायद आप यहां बैठे कुछ पढ़ रहे थे?"

"रात को? जी नहीं, रात-भर कहिए। जब मन ज्यादा बेचैन हो जाता है तो मैं या तो कहीं दूर चला जाता हूं, अथवा पुस्तकों के इस बाग में आकर बैठ जाता हूं। पर कभी-कभी यह बाग भी स्मशान की तरह लगने लगता है।" बोलते-बोलते वह हंस पड़ा। उसका वह हास्य नंदा को बड़ा विचित्र लगा, पागल के जैसा। पुस्तकों पर देवदत्त की अपार भक्ति है। पर स्मशान की यह कल्पना उसके मन में क्यों आनी चाहिए? यह पहेली किसी तरह वह हल नहीं कर पा रही थी। ज़रा रुष्ट स्वर में वह बोली, "यह सरस्वती का मंदिर है, स्मशान नहीं।"

देवदत्त फिर पहले जैसा हंसा और एकदम गंभीर होकर बोला, "पुस्तकों की दुनिया सुंदर होती है, इसमें संदेह नहीं, परन्तु प्रत्यक्ष सत्य में, सुख-दुःख भोगते समय पुस्तकों की इस मरहम-पट्टी का कुछ भी उपयोग नहीं होता। ऐसे समय आवश्यक होता है प्यार का स्पर्श, हृदय से उमड़नेवाली आत्मीयता का सहारा! गरम पानी के झरनों जैसा होता है यह प्रेम।" बोलते-बोलते वह एकदम रुक गया और हंसते हुए कहा, "माफ कीजिएगा, बोलते-बोलते मुझे होश ही नहीं रहता। मन में जो उबलता रहता है वही उफनकर बाहर निकल पड़ता है। मैं भी क्या करूं? इस दुनिया में जहां-तहां सब नकली चेहरे ही मिलते हैं। इस कारण सत्य से हमारा सामना हो नहीं पाता। मनुष्यों के इन

नकली चेहरों और ढोंगबाजी पर बड़ा क्रोध आता है मुझे। नंदाजी, जो यह मानकर चलता है कि यह दुनिया जैसी दीखती है वैसी ही है, तो उसे तो कदम-कदम पर ठोकर ही लगती है। पैर की सारी अंगुलियां लहूलुहान हो जाती हैं। इसीलिए कहती हूं कि इस दुनिया में सज्जनों की विजय सिर्फ इन अलमारियों के नाटकों और उपन्यासों में ही होती है। इस मंदिर में से निकलकर बाहर की दुनिया में पैसा, प्रेम, कीर्ति और सत्ता के बाजार में जाकर देखिए तो आपको दीख पड़ेगा कि वहां सज्जन किस तरह सूली पर चढ़ाए जाते हैं। ये सारे कवि शुद्ध और निर्मल दाम्पत्य प्रेम की प्रशंसा के पुल बांधते हैं, पर पृथ्वी पर उतरनेवाली हर रात को कितने भयंकर प्रकार के व्यभिचार देखने पड़ते हैं, यह उसीसे पूछिए। नंदाजी, इस दुनिया में सत्ता चलती है अंधी और आसुरी वासना की, मधुर और ईश्वरीय भावना की नहीं।" मेज पर से 'हेम्लेट' नाटक उठाकर वह बड़े उल्लास से बोला, "इस सरस्वती मंदिर के बड़े-बड़े लोगों में सत्य कहने का प्रयत्न करनेवाला एकाध मनुष्य कभी-कभी मिल जाता है। शेक्सपीयर ऐसा ही एक दुर्लभ मनुष्य है।"

"मुझे भी शेक्सपीयर बहुत पसंद है।" नंदा बोली।

"तब तो यही कहना होगा कि हमारी इस मित्रता पर शेक्सपीयर ने ही छाप लगा दी है। क्रूर सत्य की नजर से नजर मिलाने की हिम्मत मेरे और आपके इस प्रिय मित्र में है। बाकी के लेखक 'आई, थोर तुझे उपकार',[1] यह गला फाड़कर चिल्लाने में ही आनंद मानते हैं। परन्तु जन्म देनेवाली मां अपने ही बेटे के प्राण लेनेवाली बैरिन कैसी होती है, यह कहने का साहस सिर्फ हेम्लेट लिखनेवाले इस बहादुर साहित्यिक ने ही दिखाया है।"

बंदूक से जैसे फट-फट गोलियां छूटती हैं, उसी तरह वह बोल रहा था। उसकी बातें सुनते हुए नंदा को दासबाबू की याद आ रही थी। वह भी जब बोलना शुरू करते, तो इसी तरह बोलते रहते थे, मानो झरने

---

१. मां, तेरे बड़े उपकार हैं।

मैं बाढ़ आ गई हो !

देवदत्त की ये सारी बातें सुनकर उसका मन एक ओर तो प्रफुल्लित हो रहा था, दूसरी ओर वह भयभीत भी हो गया था। उसे कुछ ऐसा लग रहा था, मानों बिजली की रोशनी में जगमगानेवाली किसी अंतहीन सुरंग में से वह गुजर रही हो। उसने धीरे-से प्रश्न किया, "क्या थोड़ा कुछ पूछूं ?"

"यह थोड़ा क्या ? यह मुझे मंजूर नहीं। मनुष्य को किसी भी बात में कंजूस नहीं होना चाहिए। फिर वह बात किसीके लिए प्राण देने की हो, अथवा स्वयं अपने ही प्राण लेने की हो।"

देवदत्त के इन अंतिम शब्दों को सुनकर नंदा सिहर उठी। उसकी इन विचित्र-सी बातों में कहीं पागलपन की झलक तो नहीं है, यह शंका उसके मन में पैदा हो गई। पर उसे थोड़ा कुछ छेड़े बिना इस शंका का निवारण होना भी तो संभव नहीं था। इसलिए उसने हँसते-हँसते चुटकी ली, "आप इस सरस्वती-मंदिर को एक ओर श्मशान कहते हैं, पर कल रात-भर आप इस श्मशान में बैठे भी थे। सो क्यों ?"

उसकी बात पर देवदत्त को क्रोध नहीं आया। उसने शांति से उत्तर दिया, "कल की रात मैं गायन के नशे में गुजारना चाहता था। पर मेरे दोस्त जो गानेवाली छोकरी ले आये उसके गायन का नशा किसी भी तरह मुझपर चढ़ा नहीं। इसलिए महफिल में से धीरे-से उठ आया।" अपने पैरों के पास बैठी ऊंघनेवाली चंचल का मुंह उठाकर देवदत्त ने पूछा, "सच है न बेटी ?" और फिर वह नंदा की ओर मुड़कर बोला, "सिर्फ यही अकेली मेरे साथ यहां आ गई। दुःख से भरी हुई इस दुनिया में सुख से जीने के लिए मनुष्य के सामने सिर्फ दो ही मार्ग हैं। सारी संवेदनाओं को मार डालो, मन से बधिर हो जाओ और हिंस्र पशुओं की तरह जीओ—यह हुआ एक मार्ग। इस मार्ग से जीने का मैंने प्रयत्न किया, पर उसमें मुझे सफलता नहीं मिली। दूसरा मार्ग है किसी प्रकार की मस्ती में जीवन का प्रत्येक क्षण बिताओ। फिर वह मस्ती चाहे शिकार की हो, संगीत की हो, साहित्य की हो, मदिरा की हो या कि मदिराक्षी की हो।" बोलते-बोलते वह रुका और बोला, "देखा न आपने, मेरी

नौका किस तरह भटक जाती है और मैं अनाप-शनाप बकने लगता हूं। गायन की महफिल छोड़कर रात-भर मैं यहां बैठा पढ़ता रहा। क्यों? यह बताऊं आपको? इस श्मशान में शंकर जैसा रम जाता हूं मैं, इसलिए।" तनिक हंसता हुआ वह आगे बोला, "माफ कीजिए मुझे, और मेरी इन सारी बातों को एक पागल की बकवास मानकर बिल्कुल भुला दीजिएगा। इस दुनिया में ढोंगों और स्वांगों की इतनी धूम है कि नकली सभ्यता का नाटक करके मुझ जैसों को और उसमें शामिल होने की जरूरत नहीं। कभी-कभी यह सब असहनीय हो जाता है। लगता है, जिस बंदूक से इस चंचल पर निशाना ताना था, वह ले लूं और निकल पड़ूं...हैमिंग्वे मुझे बहुत पसंद है।" बोलते-बोलते वह चंचल से खेलने लगा। उसने हंसते हुए पूछा, "सच है न, बेटी?"

उसके अंतिम शब्दों से नंदा बेचैन हो गई। उसे लगा, देवदत्त के मन में कोई भयंकर तूफान उठ रहा है और उसकी भयानक प्रतिध्वनियां शब्दों के जरिए उसे सुनाई पड़ रही हैं। वह जल्दी से उठी और बोली, "नौ बज रहे हैं। वसू उठ गई होगी। आपकी इजाजत लिये बगैर मैं यहां आई और बिना किसी पूर्व-परिचय के बराबरी के नाते से आपसे विवाद में पड़ गई। इसके लिए आप मुझे क्षमा करेंगे।"

कुर्सी से उठता हुआ वह बोला, "सच पूछा जाय तो मुझे ही आपसे क्षमा मांगनी चाहिए। किसी पुराने परिचित की तरह मैंने आपसे बातें कर डालीं। आपसे चाय के लिए भी पूछने का होश नहीं रहा मुझे। लेकिन एक बात ध्यान में रखिए कि मैंने कुछ समय पहले मन की कड़ुआहट के मारे यह कहा था कि यह श्मशान है। पर ऐसी बात नहीं है। यह तो नंदनवन है। मुझे कोई भी पुस्तक किसी भी समय पढ़ने की सनक आ जाती है। इसलिए अलमारियों में मैंने ताले नहीं डाले। आप जब चाहें यहां आ जाया करें। जो पुस्तक पसंद हो, उसे पढ़ने घर ले जाया करें। चाय की जरूरत हो तो बाहर जो नौकर बैठा है उससे कह दिया करें। यदि आपसे कभी फिर मुलाकात हुई, तो और भी बातें करेंगे।"

नंदा को पहुंचाने के लिए देवदत्त दरवाजे तक आया। उसे नमस्ते

कहकर वह सीढ़ियां उतर ही रही थी कि देवदत्त ने उससे पूछा, 'मधुरा तो अच्छी है न ?'

देवदत्त ऐसा प्रश्न पूछेगा, इसकी नंदा को कल्पना नहीं थी। उससे बातें करते समय नंदा की यह धारणा हो गई थी कि इस दुनिया में किसी प्रकार भी उसकी श्रद्धा नहीं रह गई है, किसी भी संवेदना से उसका मन स्पंदित नहीं होता, किसी कुशल सर्जन की तरह शांत चित्त से प्रत्येक अनुभव की चीरफाड़ करने का कमाल ही सिर्फ उसने साधा है। लेकिन इस प्रश्न को पूछते समय उसकी आवाज का कम्पन उसे महसूस हुआ। उसके हृदय का यह दर्शन उसके मन को बड़ा भाया। उसने हँसते हुए उत्तर दिया, "कल सफर में उसे फिट आया था। पर रात को अच्छी नींद आई। मैं यहां आई, उस समय वह सोई हुई थी, वरना उसे भी साथ ले आती।"

नंदा को लगा, जैसे उसके अंतिम शब्दों को सुनते हुए देवदत्त ने अनचाने आकाश की ओर आंखें उठाईं और एक हलकी-सी आह भरी।

: २४ :

बंगले की सीढ़ियों पर ही नंदा की पार्वती से भेंट हो गई। जब पार्वती से उसे यह पता चला कि वसुंधरा अभी सो ही रही है, तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसके मन में आया—कल के सफर की थकान के कारण जग जाने पर भी शायद वह बिस्तर पर योंही लेटी पड़ी होगी। वैसे भी अमीरों के लिए घड़ियां शोभा के लिए ही तो होती हैं।

दबे पांव वह वसु के सोने के कमरे में गई। वसुन्धरा के पलंग के पास जाकर खड़ी हो गई। मधुरा के लिए बंबई से जो गुड़िया लाये थे, वह टुकुर-टुकुर देखती हुई वसुन्धरा की बगल में आराम कर रही थी—अपने-आपसे खेलते रहनेवाले बच्चे की तरह! उस गुड़िया को देखकर नंदा को हँसी आ गई। वसू के इस शौक का क्या अर्थ होगा? उसे बच्चों का बड़ा शौक है? या...

नौ बज गए थे। फिर भी वसुन्धरा गहरी नींद में सोई हुई थी। परन्तु उसकी बन्द आंखें तनिक फूली हुई-सी लग रही थीं। तो क्या वसू रात-भर रोती और कुढ़ती रही थी ?

वसू के सिरहाने रखी मेज पर नंदा की निगाह पड़ी। कोई दवा की शीशी थी। मेज के नजदीक आकर नंदा ने देखा तो वह नींद की गोलियों की शीशी थी। नंदा मन में डरी।

देवदत्त के कुछ समय पहले के उद्‌गार उसे याद हो आये। कितने विचित्र थे वे। मनुष्य सुख से जी सकता है तो सिर्फ किसी नशे में—किसी मस्ती में, फिर वह नशा किसी भी चीज का हो। उन उद्‌गारों और नींद की इन गोलियों का कोई संबंध है क्या ? ये दोनों इस तरह का एकाकी और दुखी जीवन क्यों जी रहे हैं ? नंदा की उलझन बढ़ती आ रही थी।

: २५ :

दिन-भर नंदा अनजाने देवदत्त के विषय में विचार करती रही। क्षणमात्र के लिए एक कल्पना उसे एक हाथ से गुदगुदाती और दूसरे हाथ से चिकोटी काटती हुई उसके मन में चमक गई —शेखर से पहले देवदत्त उसके जीवन में आया होता तो ? पर दूसरे ही क्षण उसे अपने पर गुस्सा आ गया। लेकिन उसे बाहर धकेलकर मन के दरवाजे बन्द कर लेने की शक्ति उसमें नहीं थी। पहली मुलाकात में ही देवदत्त के प्रति इतनी आत्मीयता उसके मन में क्यों उत्पन्न होनी चाहिए ? क्या इसलिए कि वह दुखी है ? एक बुद्धिमान तरुण के प्रति यह करुणा है, या...?

अपने पागल मन पर उसे क्रोध हो आया।

: २६ :

बड़ी जल्दी ही मधुरा से नंदा की घनिष्ठता हो गई। वैसे वह

लड़की बड़ी प्यारी थी, 'मौसी, मौसी' कहती हुई नंदा के आसपास ही दिन-भर चक्कर काटती रहती और अनेक प्रकार के बालसुलभ प्रश्न पूछती रहती। उसके एक प्रश्न ने तो नंदा को निरुत्तर ही कर दिया। उसने पूछा कि लाल प्याज सफेद कैसे हो जाता है? जब नंदा कोई उत्तर न दे सकी तो 'फेल, मौसी, फेल' कहती हुई,वह अपने नाजुक हाथों से तालियां बजाने लगी। वह दृश्य इतना सुहावना था कि उसकी चुम्मी लेने के लिए नंदा ने उसे नजदीक खींच लिया। मधुरा ने वह चुम्मी तुरन्त पोंछ डाली और गर्व से अकड़कर बोली, "मैं अब छोटी-सी हूं ,जो मेरी चुम्मी लेती हो?"

उसकी वह लाल प्याजवाली पहेली दूसरे दिन हल हो गई। यों हमेशा देर से उठनेवाली मधुरा आज सूर्योदय से पहले ही जाग उठी। नंदा का हाथ पकड़कर खींचती हुई ही वह उसे बाग में ले गई। पूर्व की ओर दीखनेवाले सूर्यबिम्ब की ओर अंगुली दिखाती हुई वह बोली, "मौसी, वह देखो लाल-लाल प्याज!" फिर उसी तरह एकटक उसकी ओर देखती हुई वह खड़ी रही। थोड़ी देर बाद वह बिम्ब सफेद शुभ्र हो गया। तुरन्त ही मधुरा बोली. "प्याज सफेद हो गया—प्याज सफेद हो गया।"

मधुरा की कल्पना का यह स्वैर नृत्य नित्य चलता ही रहता था। एक दिन उसने नंदा से पूछा, "आकाश के पेड़ की जड़ कहां रहती है, मौसी?" नंदा उसकी जिज्ञासिनी हो गई! इस पांच साल की छोकरी को आकाश वृक्ष की तरह क्यों लगता है, यह किसी भी तरह नंदा के ध्यान में नहीं आ पा रहा था। एक-दो दिन इसी तरह बीते। तीसरे दिन रात होने पर मधुरा नंदा को बगीचे में ले गई। ऊपर चमचम चमकनेवाले सितारों की ओर अंगुली दिखाती हुई वह बोली, "मौसी, आकाश के पेड़ पर कितने फूल लगे हैं, देखो तो।" फिर बगीचे में लगे हरसिंगार के पेड़ की ओर अंगुली दिखाकर वह बोली, "इस पेड़ को हिलाते ही बहुत-से फूल नीचे झर पड़ते हैं। तुम आकाश का यह पेड़ हिलाओ न, जिससे ढेर सारे फूल नीचे गिरें और तब मैं उन्हें बीनकर उनके साथ खेलूंगी।" उसकी यह बात सुनकर नंदा को देवदत्त की याद

हो आई।

यों मथुरा इतनी होशियार थी पर लकड़ी के रंगीन टुकड़ों को जमाकर बंगला बनवाने के लिए उसे बिठाते ही उसकी सारी होशियारी गायब हो जाती। किसी भी टुकड़े को कहीं भी ऊटपटांग लगा देती। नंदा ने उसे तीन-चार बार ठीक से बंगला बनाकर दिखाया, परन्तु उसका कोई उपयोग न हुआ। ऐसा क्यों होता है? इसे खोज निकालने के लिए एक दिन वह बिल्कुल उसके पीछे ही पड़ गई। तब मथुरा बोली, "मैं नहीं बनाऊंगी बंगला। बनाऊंगी तो उसमें रहने को राक्षस आ जायगा।"

उसकी इस अजीब बात का मतलब नंदा की समझ में तीन-चार दिन के बाद आया। नंदा रोज तड़के ही उठ जाती। चाय पीती और लायब्रेरी जाती। एक दिन वह जरा देर से उठी। चाय पीकर लायब्रेरी जा ही रही थी कि मथुरा भी जाग उठी और बरामदे में आ गई। यह जानते ही कि नंदा कहां जा रही है, वह चिल्ला पड़ी, "मौसी, मौसी उधर मत जाना।" नंदा एकदम रुकी। मथुरा दौड़ती-दौड़ती उसके पास गई और डरी हुई नज़र से इधर-उधर देखती हुई बोली, "उधर मत जाओ, मौसी।"

"क्यों?"

"वहां एक राक्षस रहता है। वह जान से मार डालेगा तुम्हें, बंदूक से।" मथुरा की स्वैर कल्पना की यह एक नई उड़ान होगी, ऐसा सोचकर नंदा ने हंसते हुए पूछा, "उस राक्षस का नाम क्या है, सो जानती हो तुम?"

मथुरा ने गर्दन के इशारे से 'हां' कहा, पर उसके मुंह से शब्द नहीं फूट पा रहा था। उसका हाथ कांपने लगा। चेहरा एकदम सफेद हो गया। नंदा के हाथ में रखे उसके हाथ में पसीना छूट पड़ा। बिलासपुर आने के बाद से उसे फिट नहीं आया था। यह सोचकर कि फिट आने का यह पूर्व-चिन्ह है, नंदा उसे उठाकर भीतर ले जानेवाली थी। पर मथुरा के हाथ की कंपकंपी धीरे-धीरे रुक गई। उसका चेहरा थोड़ा चमकने लगा। नंदा को झुकाकर उसके कान में फुसफुसाती-सी वह

बोली, "किसीसे कहना नहीं है, मौसी। उस राक्षस का नाम है भाईजी।"

"भाईजी ? कौन भाईजी ?"

"मेरे पिताजी। मां उन्हें देवदत्त कहती हैं।"

: २७ :

रात को बिस्तर पर आकर लेटने के बाद नंदा मधुरा के उद्‌गारों पर विचार करने लगी। देवदत्त को राक्षस कहने के लिए मधुरा को किसने सिखाया ? वसुन्धरा ने ? लेकिन क्यों ? उसने ऐसा आखिर क्या भुगता है ?

वसुन्धरा के विचित्र बर्ताव के कारण इन प्रश्नों के उत्तर पाना भी संभव नहीं था। वसुन्धरा ने बंबई में तो कहा था कि बिलासपुर पहुंचने पर हम दोनों दिल खोलकर गप्पें मारा करेंगी, सुबह-शाम घूमने जाया करेंगी, चंदनगढ़ की सैर किया करेंगी, परन्तु यहां आने पर बंबई की वसू बिल्कुल ऐसे बदल गई जैसे कोई जादूगर आदमी को पत्थर का पुतला बना दे। वह नौ बजे उठती, हमेशा उदास रहती, निश्चेष्ट की तरह बिना बोले उसका सारा कार्य-क्रम चलता रहता। चाय और खाने का समय छोड़कर सारा दिन वह बिस्तर पर पड़ी-पड़ी छत की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखती रहती। बीच-बीच में नंदा बड़े स्नेह से पूछती, "तेरी तबीयत अच्छी नहीं है क्या ? कोई पुस्तक पढ़कर सुनाऊं तुझे ?" तो वह माथे पर बल लाकर उत्तर देती, "कोई पुस्तक देखती हूं, तो मेरे कलेजे में आग लग जाती है। मुई सब झूठी हैं। उनका प्रेम झूठा, सुख झूठा, सब बातें झूठी, सिनेमा की तरह। शाकुन्तल लिखनेवाला वह कालिदास मुझे एक बार मिल जाय तो देखना कैसी गत बनाती हूं उसकी।"

वसू की इन बातों को सुनकर और उसके अजीब बर्ताव को देखकर वह अधिक उलझन में भर जाती। अमीरों के घर में कान होते हुए भी वहां की बातें सुननी नहीं चाहिए, आंखें होते हुए भी देखना नहीं चाहिए,

और मुंह होते हुए भी बोलना नहीं चाहिए. नंदा यह मर्यादा जानती थी। आसपास के नौकरों से वह सिर्फ उतना ही बोलती, जितना काम के लिए आवश्यक होता। उनकी आपस की कानाफूसी पर वह बहुधा ध्यान नहीं देती थी। पर इस तरह अलिप्त रहकर भी जो कुछ थोड़ा उसके कानों में पड़ जाता, उसके कारण वसुन्धरा और देवदत्त के बीच की खाई के विषय में उसका मन और अधिक असमंजस में पड़ जाता। गलोचा बुनने बैठें और गुदड़ी तैयार हो जाय, उसी तरह उसके सारे तर्कों की गत हो जाती।

एक दिन यह अनुभव उसे अत्यन्त तीव्रता से हुआ। वह लायब्रेरी से एक पुस्तक घर पर पढ़ने को ले आई। पुस्तक के पन्ने उलटती हुई वह बरामदे में बैठी थी। आज मथुरा के बाल काटने का दिन था। जमींदार का पुश्तैनी बूढ़ा नाई अपने नाती के साथ, जो बंबई से नए-नए फैशन सीख कर आया था, इस काम के लिए हाजिर हुआ था। चूंकि मथुरा अभी उठी नहीं थी, इसलिए नजदीक ही वे दोनों गप्पों में अपना वक्त काट रहे थे। बूढ़े की बातों में 'बड़े सरकार' ये शब्द नंदा के कानों में पड़ने पर उसका ध्यान उन गप्पों की ओर गया। किसी मारपीट में विजय प्राप्त करके आये हुए किसी वीर की तरह ये बूढ़े नापित महाराज नमक-मिर्च लगाकर यह बता रहे थे कि बड़े सरकार की दाढ़ी मैंने नींद ही में कैसे बनाई थी। "दौलत, तेरे जैसे कारीगर को विलायत में पैदा होना चाहिए था कि विक्टोरिया रानी तुमसे अपने बाल कटवाती!" ऐसा सर्टीफिकेट देकर बड़े सरकार ने उसकी पीठ किस तरह थपथपाई, इसका उस बूढ़े ने जब अत्यंत रसभीना वर्णन किया तो नंदा को बड़ा मजा आया और काफी मनोरंजन हुआ। वह उसकी बातें ध्यानपूर्वक सुनने लगी। उस बूढ़े की वाक्-गंगा का प्रवाह धीरे-धीरे बड़े सरकार की देव-भक्ति की ओर मुड़ पड़ा। बड़े सरकार हिमालय से जो गुरु लाये थे वे कितने तेजःपुंज थे, उनकी दाढ़ी कैसी नरम और काली-काली थी, वे अपने मंत्रों के जोर से मरी हुई तितलियों को किस तरह जीवित कर दिया करते थे, वह गुरुजी कुछ वर्षों के बाद किस तरह अचानक लापता हो गए, बड़े सरकार ने उस दुःख के कारण चंदनगढ़ के पहाड़ के कगार से कूद-

कर किस तरह अपने प्राण दे दिये, आदि बातें बड़े मजेदार ढंग से कह-कर, बूढ़े महाशय ने अंत में भाष्य किया, "बड़े सरकार ने प्राण दिये, यह बिलकुल झूठ बात है। उन्हें ले जाने के लिए तो तुकाराम महाराज की तरह स्वर्ग से विमान आया होगा, विमान।"

यह सब सुनकर हंसते-हंसते नंदा के पेट में बल पड़ गए। पर देवदत्त और वसुन्धरा के मनमुटाव के रहस्य की जो खोज वह कर रही थी, वह अलबत्ता अब उसे और अधिक कठिन लगने लगी। उसके मन में एक निराला ही विचार-चक्र शुरू हो गया। चंदनगढ़ पहाड़ के कगार से कूदकर देवदत्त के पिता ने आत्महत्या क्यों की? क्या हिमालय से लाये अपने गुरु के लापता हो जाने के कारण? या कहीं वह पागल तो नहीं हो गए थे? इस घराने में पागलपन आनुवंशिक तो नहीं है? देवदत्त की बातें सुनते समय एक-दो बार इस शक की धुंधली-सी छाया उसके मन पर पड़ गई थी। अब वह शक उसके मन में फिर जड़ पकड़ने लगा। देवदत्त कितना ही रसिक और अच्छा हो, फिर भी बीच में उसे इस आनुवंशिक पागलपन का दौरा-सा जरूर आ जाता होगा। शायद मधुरा के फिट का भी इसी बात से संबंध होगा। पति के इस पागलपन के कारण वसू को न जाने क्या-क्या यंत्रणाएं सहन करनी पड़ी होंगी। उन यंत्रणाओं के कारण ही चिढ़ या क्रोध में मधुरा के सामने देवदत्त को वसू ने अनेक बार 'राक्षस' कहा होगा। उस बाल-हृदय के अन्दर अपने जन्मदाता पिता के प्रति इतना भय भर जाने का इसके सिवा दूसरा कोई कारण नजर नहीं आता।

विचार-चक्र घूमता-घूमता अंत में एक प्रश्न-चिन्ह के सामने रुक जाता। प्रेम का अर्थ क्या है? देवदत्त ने वसुन्धरा को पसंद किया— याने उसे उसका रूप और गला अच्छा लगा। वसुन्धरा ने देवदत्त को पसंद किया याने उसका रूप और उसकी अमीरी उसे अच्छी लगी। इस परस्पर की पसंदगी के कारण दोनों का विवाह हुआ। पर उस समय का वह आकर्षण, वह पसंदगी और सर्वस्व का दान कर देने की वह भावना, यह सब आज कहां गई? क्या वसू का प्रेम सिर्फ देवदत्त की अमीरी पर था और उसका केवल वसू के रूप पर, उसके गले की मिठास पर? अबतक

खिलौना मिलता नहीं है तबतक बच्चा उसे पाने को पागल-सा हो जाता है। पर जब वह उसे मिल जाता है तो उसकी तोड़फोड़ करने में वह नहीं हिचकिचाता। क्या प्रेम इसी प्रकार का कोई खिलौना है? वसुंधरा और देवदत्त—सावित्री और सत्यवान—हेम्लेट की मां और उसका पति—ये कितने भिन्न-भिन्न प्रकार के दंपति हैं? ये मनुष्य पहले नजदीक आये, एक-दूसरे के जीवन को स्वर्ग बनाने के लिए! पर... प्रत्येक जोड़ी का प्रेम दूसरी किसी भी जोड़ी के अनुभव से मेल न खानेवाला उपन्यास ही होता है क्या? वसुन्धरा जमींदारिन हो गई, यह उसका सौभाग्य हुआ या दुर्भाग्य? उसके विवाह को लगभग छः वर्ष हुए होंगे। पर इतने समय में ही वह देवदत्त के दिल से इतनी गिर जाय कि वह उसे अब अपनी नजरों के सामने भी न चाहे! इनका प्रेम इतना सूख जाय! गर्मी में नदियां सूख जाती हैं, ठंड में वे जम जाती हैं, पर समुद्र न कभी सूखता है, न जमता है।

इस विचार-चक्र के बीच में ही एक प्रश्न कांटे की तरह उसके मन में चुभने लगता—शेखर जीवित होता तो क्या मेरी भी गृहस्थी इसी तरह कुम्हला गई होती? स्त्री-पुरुष की प्रीति को प्रकृति ने भंगुरता का ही अभिशाप दे रखा है क्या? या प्रीति एक जुआ है? इस जुए में किसी की जीत भी होती है? या इसमें दोनों का ही दिवाला निकल जाता है?

शेखर की स्मृति को लेकर अपने मन की प्रतिक्रिया को देखकर, उसे अपने पर ही आश्चर्य होने लगा। उसकी मृत्यु का समाचार सुनने के बाद से एक भी रात ऐसी नहीं गई कि जब उसका सिरहाना आंसुओं से तर नहीं हुआ हो। परंतु बिलासपुर आने के बाद उसकी आंखों की वर्षा थम गई। पुराने जख्म पर पपड़ी-सी जम गई। देवदत्त, वसुन्धरा और मधुरा, इनके सुख-दुःखों में उसका मन उलझ गया और अनजाने ही भूतकाल को वह भूलने लगी।

बिलासपुर आने के बाद वह जैसे किसी कुहरे में रहने लगी थी—उस कुहरे में जैसे भूतकाल नहीं दीख पाता था उसी तरह भविष्य का धुंधला दर्शन भी नहीं हो पा रहा था। लेकिन बीच-बीच में यदा-कदा सुनहरी धूप चोरी-चोरी उसके मन में प्रवेश करती रहती। निर्द्वन्द्व

निर्झर की तरह चलनेवाली मधुरा की बोली सुनते समय, अलंकारों की तरह लगनेवाली देवदत्त की लायब्रेरी की पुस्तकों को पढ़ते समय और लायब्रेरी में जाने पर घुंघरुओं की रुनझुन करनेवाले किसी बालक की तरह छमछम करती उसके पास आनेवाली चंचल को सहलाते समय, इस सुनहरी धूप का साक्षात्कार उसे होता। चंचल के मूक प्रेम से तो वह गद्‌गद् हो जाती। उसके मन में होता कि यह दुनिया इसी तरह निष्पाप होती तो कितना अच्छा होता !

: २८ :

मंदा को, उसकी कोई कल्पना न होते हुए भी, चंचल के इस मूक प्रेम को दूसरे मुखर प्रेम की अचानक एक जोड़ मिल गई।

बिलासपुर आये नंदा को एक महीना हो गया था। उसके बार-बार आग्रह करने पर वसुन्धरा एक-दो बार घूमने के लिए बाहर निकली, पर उस घूमने में खुलापन नहीं था। अंतरंग का कोई दर्शन नहीं था। रोज सुबह लायब्रेरी जाते समय नंदा के मन में यह पागल आशा जागृत होती कि आज देवदत्त मिलेगा और शल्य-चिकित्सक के ओजार जैसी उसकी पैनी बातें फिर सुनने को मिलेंगी। पर वह कहां गायब हो गया, कौन जाने ! वह न मिलता तो उसे बुरा लगता। पहली ही मुलाकात के दिन चंचल से बातें करते समय देवदत्त ने कहा था कि इस दुनिया में उसके सिर्फ दो ही मित्र हैं। एक तू (चंचल) और दूसरा मृत्यु। उसके ये शब्द नंदा को बार-बार याद हो आते। फिर मन में आता, मैंने ही उस दिन भूल की। मुझे तुरंत कह देना चाहिए था कि आपके तीन मित्र हैं। कोई भी मनुष्य हो, उसे जब मृत्यु अपना मित्र लगने लगती है तो उसके पासवाले दूसरे मनुष्य को उसे प्रेम से पीछे खींच लेना चाहिए। मनुष्य का मनुष्य के साथ होनेवाला यह सबसे निकट का रिश्ता है।

देवदत्त से हुई उस प्रथम भेंट को बार-बार याद करती हुई नंदा बाग में घूम रही थी। कोने में लगे पीपल ने उसे पुकारा। वह उसके चबूतरे पर आकर बैठ गई। उससे अपने हृदय की बातें करने लगी। अपने ही विचारों के दह में बहुत गहराई तक डूब गई। इसी समय एक नाटे दुबले-पतले महाशय, जैसे आसमान से टपक पड़े हों, उस तरह उसके सामने आकर खड़े हो गये। "नमस्कार नंदाजी।"—उनके ये शब्द सुनते ही नंदा अपनी विचार-तंद्रा से जाग पड़ी। वह घबड़ाकर उठ खड़ी हुई। बड़ी-बड़ी जेबवाला खादी का कुरता, खादी की छोटी धोती, बगल में पुराना छाता और सिर पर बिना इस्त्री की हुई सफेद टोपी। यह साज-सज्जा देखकर नंदा कुछ पसोपेश में पड़ गई। उसने सोचा कि ये महाशय गांधीजी के नाम की पूंजी पर जीवित रहनेवाली किसी भुक्खड़ संस्था के संचालक लगते हैं। यह पता चलने पर कि जमींदारिन बाई के घर बंबई से एक पढ़ी-लिखी मेहमान आई है, वह उसे अपनी संस्था में 'गीता का संदेश' अथवा 'गांधीजी आज होते तो?' ऐसे ही किसी विषय पर भाषण देने की प्रार्थना करने के लिये आए होंगे। इस विचार से उसे जरा हँसी तो आई, पर उसे रोककर उसने उन्हें नमस्कार किया। परंतु ज्यों-ज्यों वह उनकी ओर अधिक बारीकी से देखने लगी, त्यों-त्यों उनके चेहरे पर का स्निग्ध भाव देखकर उसे अपने विचार पर क्रोध हो आया। उन महाशय की दृष्टि आश्विन की चांदनी की याद दिलाती थी। पर उस चांदनी की वर्षा करनेवाली आंखों के चारों ओर काले वर्तुल स्पष्ट दीख रहे थे। उन वर्तुलों के परे, बड़े स्टेशन पर रेल लाइनों का जिस तरह जाल फैला रहता है, उसी तरह अनेक शिकनें फैली हुई थीं। परंतु उन शिकनों और काले वर्तुलों के बीच प्रसन्नता से हँसनेवाले दो अक्षय दीपों को देखकर उसे अपने दादाजी की याद हो आई। उसके सामने एक अत्यंत स्नेहशील व्यक्ति खड़ा है, यह आभास होते ही उसका मन खुश हो गया। मुस्कराहटभरे चेहरे से उसने उसका स्वागत किया।

चबूतरे पर छाता रखकर बैठते हुए वह महाशय बोले, "हमें पहचान लिया शायद आपने ?"

नंदा ने सहज मुस्कान से उत्तर दिया, "पहचानी हुई लड़की को क्या कोई 'आप' कहता है ?"

"हां, भई, चूक हो गई मुझसे। यों पाठशाला में मैं व्याकरण में शून्य ही था, ऐसा कहते हैं। इसीलिए वचनों की यह गड़बड़ी हो गई। खैर, इसे छोड़। क्या कह रहा था मैं तुमसे, नंदाजी ? हां, तो मेरा नाम है बापू-बापू कोतैने। यह घर का नाम नहीं है, समझी ? वह तो रहा होगा घोंडू, गुंडू या इसी तरह का कोई और दूसरा ! पर इस नाटे और दुबले-पतले शरीर को सारा बिलासपुर बापू के नाम से ही जानता है। यह तो हुआ नाम-पुराण। धंधा है जमींदार की नौकरी। इन जमींदार-साहब की माताजी ने मुझे नौकरी से लगाया। इसीलिए किसी काल का यह देशभक्त आज जिंदा है। वरना...खैर, इसे भी छोड़। मैं जमींदार का निजी अहलकार हूं। उनकी स्टेट का हिसाब-किताब मैं ही देखता हूं।"

नंदा हिचकिचाती हुई बोली, "पहले आपको कभी देखा हो, यह याद नहीं आता।"

"हां, वह तो बताना रह ही गया ! तू तो हमारे दादासाहब देशपांडे की लड़की है। तू जब यहां आई थी, उसी समय मुझे आकर तुझसे मिलना चाहिए था। पर कहा है न—'कर्मणा गहनो गतिः'। तू आई, उससे पहले ही मुझे बंबई-यात्रा पर जाना पड़ा। मेरा लड़का वहां नौकरी करता है -इकलौता है। उसे टाइफाइड हो गया है, ऐसा बहूरानी का तार आया था, इसलिए चला गया। अब वह ठीक है। वहां से आज सुबह ही लौटा हूं। कचहरी का काम काफी इकट्ठा हो गया था। इसलिए तुझसे मिलने में देर हो गई।"

नंदा ने पूछा, "दादाजी से मुलाकात हुई थी बंबई में ?"

"अरे हां, वह भी बताना तो भूल ही गया। कितने ही सालों के बाद गया था बंबई। फिर बिना दादाजी से मिले वापस कैसे आता ? पंढरपुर जाकर बिना पंढरीनाथ के दर्शन किये लौट आना संभव है ?

अरो बेटी, तेरे दादाजी थे, इसीलिए सन बयालीस में इस बापू को जेल में गिट्टी नहीं फोड़नी पड़ी। समझी ?"

"मतलब ?" चकित होकर नंदा ने प्रश्न किया।

"मतलब क्या ? तेरे पिताजी ने उस समय हम भूमिगत लोगों को बड़ा सहारा दिया था। सगे भाई की तरह रखा था हम लोगों को। पहले की कोई जान-पहचान न होते हुए अपने घर में हमें छिपाकर रखा ! वह थे इसीलिए हम बच सके। पर इसके कारण उन्हें खासे अच्छे वेतन वाली जमी-जमाई नौकरी से हाथ धो बैठना पड़ा था। ऐसे बाप की बेटी होना बड़े भाग्य की बात है। बेटी, यह ध्यान में हमेशा रखना।"

बापू के इन शब्दों से नंदा का दिल उमड़ आया। मन में उसने कहा, 'यह दुनिया भी कितनी अजीब है ! घर के लोगों का मूल्य जानने के लिए भी घर से बाहर आना पड़ता है।"

बापू कहने लगे, "मैं जो कह रहा हूं उसका तुझे क्या ख्याल होगा ? तू तो उस समय अपनी मां के पेट में थी। एक अंधेरी रात को लुकता-छुपता मैं तेरे पिताजी के घर पहुंचा। उससे पहले मैं एक बड़े कार्यकर्ता के घर गया था, पर वह यह बला अपने गले में बांधने के लिए तैयार नहीं हुआ। तुझे कल्पना ही नहीं हो सकती कि उन दिनों देशभक्ति जान पर खेलने का काम था। उसे कोई नहीं चाहता था। पर जब आजादी आ गई तो गरम तवों पर जल्दी-जल्दी मीठी रोटियां चढ़ने लगीं और उन-पर घी चुपड़कर हाथ साफ करने के लिए झुंड-के-झुंड लोग आगे बढ़े। यह दुनिया है ही ऐसी। उस रात मुझे अपने बंगले से निकाल बाहर करनेवाले वह कार्यकर्ता आगे नेता बन गए और धीरे-धीरे मंत्री की हैसियत से घूमने लगे, और तेरे दादाजी ? उनकी नौकरी गई सो तो गई ही। बाद में किसी व्यापारी कम्पनी में हिसाब-किताब लिखने का काम करके..." बोलते-बोलते बापू रुके, और तुरंत एक ठहाका मारकर बोले, "जिस दुनिया में सुकरात को जहर का प्याला पीना पड़ता है, और गांधी को बंदूक की गोलियां खानी पड़ती हैं, वहां दूसरों की क्या कहना !"

"दादाजी, मां, मिलिंद सब मजे में तो हैं न ?"

"सब मजे में हैं। आजकल की भाषा में कहूं तो बिलकुल ओ. के. हैं।

पर मिलिंद तुझसे नाराज है। मां ने मुझसे कहा है कि लड़की अकेली गई है वहां, तुम्हारी ही बेटी है। उसे कोई तकलीफ वगैरा हो तो..."

"लड़के कितने ही बड़े हो जायं, फिर भी मां-बाप के लिए तो वे छोटे ही हैं। है न, बापू ?"

बापू ने पश्चिम की ओर देखा। धूप अलसा गई थी। संध्या अपने आंगन में चौक पूरने की तैयारी में लगी थी।

बापू जल्दी-से उठे और बोले, "रोज तेरी कुशल पूछने आऊंगा मैं। पर हमारे घर भी तो आना है तुझे। जल्दी ही। किसी चीज-वस्तु की जरूरत पड़े, तो निःसंकोच मुझे बता दिया करना।"

चबूतरे पर रखा छाता बापू ने उठाया। वह जा ही रहे थे कि नंदा पूछ बैठी, "क्या देवदत्त यहां नहीं हैं ? कहीं बाहर गए हैं ? बहुत दिनों से दीखे नहीं।"

तनिक मुड़कर हंसते हुए बापू ने उत्तर दिया :

"बादलों की बिजली है वह। कहां चमकेगी और कहां छिप जायगी, इसका कोई भरोसा नहीं।"

: ३० :

जाते हुए बापू को देखते-देखते नंदा के मन को एक विचार ने झकझोर दिया। बापू से देवदत्त के बारे में मैंने क्यों पूछा ? उससे मेरा क्या संबंध ? संयोग से उस दिन मुलाकात हो गई, वह बातें करता रहा, मैं सुनती रही। गाड़ी के सफर में ऐसे बहुत-से लोगों से मुलाकात हो जाती है। हम उनसे खूब बातें करते हैं, पर गाड़ी से उतरने के बाद आगे कहां उनकी याद आती है ? जिंदगी का सफर भी तो इसी तरह है। मुझे बापू से यह प्रश्न नहीं पूछना चाहिए था। जैसे कोई नटखट लड़का मां की अंगुली छोड़कर, सड़क छोड़कर, अलग दौड़ जाय, कुछ उसी तरह की बात मेरे मन ने की है। मेरे प्रश्न के कारण बापू के मन में...

रात को नींद आने तक वह अपने मन को कई तरह से समझा रही थी—मैंने देवदत्त की पूछताछ वसू के लिए की। इतने दिन हो गए। पर

पति-पत्नी की आपस में मामूली मुलाकात भी नहीं हुई। इस तरह यह कितने दिन चलेगा? और क्यों? वसू के मन पर इसका क्या परिणाम होगा? वह रोज नींद की गोलियां खाती है। उन्हें खाए बगैर उसे नींद नहीं आती, ऐसा वह कई बार कह चुकी है। इन गोलियों का उसके स्वास्थ्य पर बुरा परिणाम नहीं होगा क्या? अब देवदत्त से भेंट होने पर इन दोनों के बीच चल रहे इस शीतयुद्ध का निपटारा कर ही लेना होगा।

इस निश्चय पर पहुंचते ही नंदा को खुशी की अनुभूति हुई और उसकी आंख लग गई, परन्तु आधी रात बीतते-बीतते वह अचानक जाग पड़ी। उसे लगा, जैसे कोई 'देवदत्त, देवदत्त' कहकर जोर-जोर से पुकार रहा है। जागने पर कुछ क्षण के लिए तो घबरा गई। वसू ने उससे कहा था कि देवदत्त के पिता का भूत उस बंगले में घूमता रहता है। उस समय वह बात उसने मजाक में उड़ा दी थी, पर अब उसके मन में आया, कहीं वह भूत ही तो देवदत्त को न पुकार रहा हो! उन्होंने आखिर आत्म-हत्या क्यों की? क्या उनकी कोई इच्छा अतृप्त रह गई थी और उसे पूरा करने के लिए वह देवदत्त को पुकार रहे हैं?

आधी रात के एकान्त में बड़ा मनुष्य भी छोटे बालक की तरह कुछ डरपोक हो जाता है। इस विचार के मन में आते ही उसे स्वयं अपने पर ही हंसी आई। धीरे-धीरे उसे ख्याल आया कि वह जो स्वप्न देख रही थी, वह उसकी आंखों के सामने धीरे-धीरे मूर्त होने लगा... और वह पुकार उसकी ही थी—स्वप्न की। पर उस स्वप्न में उसे जो हवाई जहाज गिरता हुआ दिखाई दिया था, वह तो शेखर का था। तो फिर मेरे मुंह से 'शेखर, शेखर' की आवाज आनी चाहिए थी। वैसी न आकर, 'देवदत्त, देवदत्त...' ये पुकारें क्यों आईं?

वह उठकर बिस्तर पर बैठ गई। कमरे में दीये की मंद फीकी नीली रोशनी फैली हुई थी। नजदीक ही वसुन्धरा और मधुरा गहरी नींद में सोई हुई थीं। नंदा बिस्तर पर बैठी हुई अपने स्वप्न की छोटी-छोटी बातों को याद करने की कोशिश करने लगी...

पर्वत का बर्फ से ढंका हुआ एक ऊंचा शिखर था। शुभ्र पुष्पों से

पूजित शिवजी की पिंडी के जैसा लग रहा था वह। उस पर्वत की ओर एक हवाई जहाज बड़े वेग से जा रहा था। हां, वह शेखर का ही तो था। आगे क्या होता है, इसका पता चलने से पहले ही उस हवाई जहाज में आग लग गई और वह नीचे आने लगा। मैं उस पर्वत के नीचे खड़ी थी। "शेखर, शेखर! संभालो।" इस प्रकार चीत्कार करने का मैंने प्रयत्न किया, पर मेरे मुंह से शब्द निकले, "देवदत्त, देवदत्त।" ये शब्द निकले, ऐसा कम-से-कम स्वप्न में मुझे आभास हुआ। ऐसा क्यों होना चाहिए? मेरा अन्तर्मन क्या नींद में भी देवदत्त का ही विचार करता रहता है? रोज सुबह लायब्रेरी में वह न मिला तो मुझे भूला-भूला-सा लगता है। यह क्यों? उसके प्रति लगनेवाला यह विचित्र आकर्षण किसमें से पैदा हुआ है? क्या उसकी बुद्धि के प्रति होनेवाले आदर से, अथवा उसकी नष्ट-भ्रष्ट हुई गृहस्थी के लिए अनुभव होनेवाली अनुकम्पा से? क्या यह प्रेम है? भोला, पागल, अंधा। नींद में चलनेवाले मनुष्य की तरह, निसर्ग की प्रेरणा के पीछे पागल की तरह दौड़नेवाला, गले में रस्सी बांधकर जिधर खींचकर ले जाओ, उधर वह जानेवाला। शेखर से उसने इस तरह का प्रेम किया था?

इस अंतिम विचार से उसका मन कांप उठा। अभी तक शल्य-चिकित्सक की शांत वृत्ति से वह अपने मन की चीर-फाड़ कर रही थी, पर अब उसका हाथ कांपने लगा। वह बिस्तर से उठी। दबेपांव कमरे के दरवाजे तक गई। आवाज न कर उसने दरवाजा खोला। बाहर निकलकर उसने वह बंद कर दिया। दरवाजे के नजदीक सोया हुआ नौकर तालसुर में खर्राटे ले रहा था। पर बंगले की रखवाली करनेवाला अल्सेशियन कुत्ता उसकी आहट पाते ही भौंकता हुआ उसके पास आया। उसने प्यार से उसकी पीठ पर हाथ फेरा। उस परिचित स्पर्श के साथ ही उसका भौंकना बंद हो गया। दुम हिलाता हुआ वह उसके पीछे-पीछे बाग में गया।

बाग चांदनी में नहा रहा था। हर तरफ शांति थी। चांदनी की सफेद शुभ्र चादर ओढ़कर सोए हुए बिलासपुर नगर की ओर वह कितनी ही देर टकटकी लगाए खड़ी देखती रही। देखते-देखते यह विचार

उसके मन में कौंध गया कि यह सारी शांति विश्वासघातिनी है। इस बिलासपुर में इस क्षण किसी जगह प्रेमीजन अधीरता से एक-दूसरे के चुम्बन ले रहे होंगे, किसी जगह प्रसव की वेदनाओं से व्याकुल हुई पहलौठी बच्चे का नन्हा मुंह और मृत्यु का कराल जबड़ा—इनके अस्पष्ट चित्र बारी-बारी से देख रही होगी और किसी जगह पचास साल तक जीवन-यात्रा में साथ देनेवाला साथी अंतिम विदा ले रहा है, इसलिए कोई वृद्धा, जिनमें त्रिभुवन का दुःख भरा है, ऐसे आंसू बहा रही होगी और एकाएक वह कांप उठी और उसका मन बेचैन हो उठा।

इस विचार-तंद्रा में नंदा चबूतरे पर आकर बैठी। उसके शरीर पर चांदनी छा गई। उसने कुछ शांति अनुभव की। मन का पंछी ऊंचा उड़ा। उसने एक बार अपने दादाजी से फिर जीवन का अर्थ पूछा था। वह अब धीरे-धीरे उसकी समझ में आने लगा है, ऐसा उसे प्रतीत हुआ। कोई भगवान कहे, कोई भाग्य कहे, कोई निसर्ग कहे, कोई संयोग कहे; पर जिसे मनुष्य के सुख-दुःख से कोई संबंध नहीं, ऐसी एक अंधी और चंचल शक्ति मनुष्य को मनुष्य से जोड़ती रहती है। कभी खून के नाते, कभी कर्तव्य के नाते और कभी भावना के नाते। तूफानी समुद्र में टूटे हुए तख्तों के सहारे तैरनेवाले मनुष्य जिस तरह लहरों के कारण नजदीक आ जाते हैं, उसी तरह इस विशाल संसार में होता है। किसीके पेट से हम जन्म लेते हैं, कोई हमारा पालन-पोषण करता है, शाला की छोटी दुनिया में कोई हमारी बुद्धि को प्रकाश की राह दिखाता है, कोई दांत से काटकर आंवले का या फल का एक टुकड़ा हमें देता है और मित्रता बढ़ती है। संयोग से निकट आये हुए किसीके भी जीवन में यौवन अपना जीवन मिला देता है। जीवन-चक्र के इस निरंतर के भ्रमण में मनुष्य एक ही बात कर सकता है और वह यह कि दूसरे के साथ जुड़े हुए अपने संबंध को न भूले। जीवन फूले-फले, इसलिए उसकी खातिर जो भी करते बने, करे। देवदत्त और वसुंधरा भी उसके जीवन में इसी प्रकार आये हैं। अब उनके जीवन से वह बंध गई है—मनुष्यता के नाते। उन दोनों को ऐसी दुखद स्थिति में छोड़कर वह यहां से भाग नहीं सकती। रणभूमि में घायल हुए मित्र को मौत के मुंह में छोड़कर

भाग जानेवाले मनुष्य की तरह यह कायरता होगी।

सहज ही उसकी निगाह सामने लायब्रेरीवाले बंगले पर गई। वहां रोशनी नजर आ रही थी, याने देवदत्त वापिस आ गए ? कब आये वह ? लायब्रेरी में जाकर देखें क्या ? उसका मन दुविधा में पड़ गया, ऐसे यात्री की तरह, जो यात्रा में ऐसे स्थान पर पहुंचा हो, जहां दो रास्ते फूटते हों। वह उस रोशनी की ओर बड़ी देर तक देखती रही, एक मूर्ति की तरह, जड़वत्।

: ३१ :

पौ फटते ही नंदा उठी, परंतु नित्य की भांति बरामदे में जाने पर पार्वती चाय लेकर उसके सामने नहीं आई। नंदा को आश्चर्य हुआ। घड़ी के कांटे की ताल पर पार्वती का काम सदैव चलता था। कहीं उसे बुखार तो नहीं आ गया, नंदा के मन में शंका हो आई। वह बंगले के पिछवाड़े की ओर गई। रसोईघर में रोशनी हो रही थी। उसे धीमी आवाज में किसीका बातें करना सुनाई दिया। जरा आगे बढ़ने पर उसने देखा कि पार्वती एक पुरुष के हाथों से अपनेको छुड़ाने की कोशिश कर रही है। वह उसे कसकर पकड़े हुए था और शरारत से हँस रहा था। वसू ने बंबई में नंदा से जो कहा था, वह याद हो आया। देवदत्त की बातचीत में गुप्त जासूस का जो उल्लेख आया था, वह भी उसके मन में कौंध गया। उसे यह समझते देर नहीं लगी कि यह पुरुष पार्वती का पति गंगाराम—देवदत्त का ड्राइवर था। कल रात वह वापस आया होगा और इतने दिनों के विरह के बाद अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए वह तड़के ही पार्वती के पास चला आया दीखता है। मेघदूत का काव्य केवल यक्षों और गंधर्वों की ही ठेकेदारी नहीं है। यह विचार मन में आते ही वह हँस पड़ी और तुरंत वापस लौट आई।

: ३२ :

नंदा लायब्रेरी गई। चंचल मानो उसका स्वागत करने के लिए ही दरवाज़े में खड़ी थी। नंदा के साथ वह धीरे-से भीतर आ गई और उसके पैरों के आसपास चक्कर काटने लगी। नंदा को लगा, जैसे उसे कोई खास खुशी हुई है और उसे बताने की वह कोशिश कर रही है। झुककर चंचल के मुंह को दोनों हाथों से ऊपर उठाते हुए उसने पूछा, "कौन थी तू पिछले जनम में मेरी ? मां या बहन ?" उसकी बात वह समझ गई हो, ऐसा दिखाते हुए चंचल ने अपनी गर्दन हिलाई। नंदा ने उससे फिर कहा, पगली, मैं जान गई हूं कि तुझे इतनी खुशी क्यों हो रही है ? देवदत्त आ गए हैं न ? रात को यहां बड़ी देर तक बैठे पढ़ रहे थे न ? अगर हमेशा वह इस तरह रात-भर जागते रहें तो क्या यह जागरण उनसे बरदाश्त हो सकेगा ? तू तो उनकी प्यारी सखी है न ? तुझे उनको थोड़ा समझाना नहीं चाहिए ?

नंदा का ध्यान गोल मेज की ओर गया। उसपर नई पुस्तकों का ढेर लगा हुआ था। उत्सुकता से वह वहां गई और वहां रखी नई पुस्तकों को कौतुक से देखने लगी। काव्य से लेकर दर्शनशास्त्र तक की सब प्रकार की पुस्तकें थीं उस ढेर में। उनमें के एक मोटे ग्रंथ से एक कागज़ बाहर झांक रहा था। उसका कुतूहल जाग उठा। उसने वह पुस्तक उठाई। किसी पाश्चात्य पंडित द्वारा आधुनिक दृष्टिकोण से महाभारत पर लिखी हुई मीमांसा थी वह। उसमें रखे कागज़ों को बाहर निकालकर उसने देखा। रात को देवदत्त वहां बैठे पढ़ रहे होंगे और उन्होंने ही यह लिखा होगा, यह स्पष्ट था। वह पढ़ने लगी :

"महाभारत का नायक कौन ? कोई कहते हैं कृष्ण; कोई कहते हैं अर्जुन और कोई आधुनिक पंडित दुर्योधन को यह सम्मान दे सकते हैं। पर मेरी दृष्टि में उसका सच्चा नायक अश्वत्थामा है। वह मनुष्य-जाति का प्रतिनिधि है, इसीलिए वह चिरंजीव हो गया है।

"इस दुनिया में सदैव एकाकी रहने के लिए बाध्य होनेवाले मानव का प्रतिनिधि अश्वत्थामा है। अनंत जीवन के मार्ग पर उसे दारुण दुःख

के सिवा दूसरा कोई साथी नहीं मिला। मां, बाप, मित्र सभी उसके अंतर्धान हो गये। महाभारत में उसकी पत्नी का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। जिस अभागे को मां-बाप का भी सच्चा प्रेम नहीं मिला, उसे आखिर पत्नी भी देती तो क्या देती? शरीर-सुख ही तो देती।

"बचपन में ही मां ने उसे धोखा दिया। आटे में पानी घोलकर उसे दूध कहकर पिलाया। अपनी गरीबी पर परदा डालने के लिए ही उसने यह किया होगा। पर जीवन को वीरान मरुस्थल बना देनेवाले दाहक सत्य की ओर उसकी मां ने उसे खुली आंखों देखने नहीं दिया, यह सत्य है। बहुत बड़ा अपराध था यह उसका।

"बाद में उसकी वंचना की द्रोणाचार्य ने, साक्षात उसके पिता ने। द्रुपद से बदला लेने के लिए और अपना बड़प्पन प्रस्थापित करने के लिए द्रोण हस्तिनापुर गये। कौरव-पांडव के गुरू बने। अपने इस अहंकार में कि उन्होंने अर्जुन जैसा शिष्य तैयार किया, अश्वत्थामा को वह भूल गये।

"पर धर्मराज के नाम से शेखी बघारनेवाले पहले पांडव को तो कम-से-कम उसे धोखा नहीं देना चाहिए था। जिसकी सत्यवादिता का त्रिभुवन में ढिंढोरा पीटा जा रहा हो, वही धर्मराज स्वार्थ के लिए अंधे हो गए। "अश्वत्थामा मारा गया", "अश्वत्थामा मारा गया।" यह शोर सुनते ही द्रोण ने धर्मराज से पूछा, "कौन मारा गया? मेरा पुत्र अश्वत्थामा या हाथी अश्वत्थामा?" धर्मराज ने उत्तर दिया, "नरो वा कुंजरो वा।" उन्हें अंतिम शब्द सुनाई न दें, इतने अस्फुट स्वर में कहने की सावधानी उस महात्मा ने बरती।

"दुर्योधन ने भी उसे इसी तरह चकमा दिया। जबतक युद्ध में विजय प्राप्त होने की संभावना थी तबतक उसने अश्वत्थामा के हाथ में युद्ध की बागडोर नहीं दी। परन्तु अन्त के भीषण प्रतिशोध के लिए अंग-भंग होकर धूल में पड़े हुए उस राजा ने अभागे द्रोण-पुत्र को सेनापति के पद पर अभिषिक्त किया! बेचारा बिना सेना का सेनापति!

"अश्वत्थामा ने दुर्योधन को जो वचन दिया था उसने वह सच करके दिखा दिया। ऐसा उनसे बदला लिया कि पांडव उसे आमरण

नहीं भूले और मज़ा यह कि उस बदले का प्रायश्चित्त उस अकेले को ही भोगना पड़ा। उसके मस्तक की मणि छीन ली गई। वहां हमेशा बहते रहनेवाला जख्म हो गया। दुनिया का भी प्रत्येक अभागा इन्सान इसी तरह का कोई-न-कोई बहता हुआ जख्म साथ लिये ही जीवन जीता रहता है।

"उस भयानक घाव को अपने मस्तक पर धारण कर चिरजीवन का अभिशाप भोगता हुआ अश्वत्थामा जंगलों में भटक रहा है। इस भ्रमण में भी बेचारा वह एकाकी है। उसके इस दुःख में उसकी पत्नी सहभागिनी हुई हो, ऐसा महाभारत में कहीं भी लिखा नहीं मिलता। अपने अभागे पति का साथ देते हुए उसका अंत हुआ होता, तो सीता-सावित्री से भी वह अधिक वंदनीय हो जाती, परन्तु महान प्रतिभाशाली व्यासजी को भी ऐसी पत्नी की कल्पना नहीं हुई।

"मेरे मन में एक ही प्रश्न लगातार डंक मारता रहता है और एक क्षण के लिए भी वह चैन नहीं लेने देता कि अश्वत्थामा के ही हिस्से में यह सारा भोग क्यों आना चाहिए? दारुण दुःख से मुक्ति पाने के लिए मृत्यु ही सुलभ मार्ग होता है। परंतु अश्वत्थामा के लिए तो यह चोर-दरवाजा भी बंद कर दिया गया। क्यों? आखिर क्यों?"

लेख यहीं समाप्त हो गया था। पर जितना लिखा था उतने ही ने नंदा के मन को फिर बेचैन कर दिया। क्या यह केवल कल्पना-विलास है? अथवा अश्वत्थामा के रूपक से देवदत्त अपने अंतर की व्यथा प्रकट कर रहा है? अश्वत्थामा की पत्नी का वह अकल्पित उल्लेख लिखने के प्रवाह में ही आ गया है या देवदत्त ने इस संबंध के अपने निजी दुःख को ही शब्दों का रूप दिया है? पर ऐसा यह विलक्षण दुःख उसे आखिर है भी कौन-सा? छः वर्षों के सहजीवन में वसू को उसे समझ लेने का प्रयत्न नहीं कर लेना चाहिए था क्या?

देवदत्त के प्रति उसके मन में अनाम किन्तु असीम करुणा उत्पन्न होने लगी। किसी दुर्घटना में फंसे हुए मनुष्य के प्रति जैसी होती है, कुछ इसी तरह की।

घुंघरू की आवाज सुनकर, यह देखने के लिए कि चंचल क्या कर

रही है, नंदा ने उन कागजों पर से अपनी नजर जो उठाई तो देवदत्त को अपनी ओर एकटक देखते हुए पाया। वह भौंचक्की हो गई—कुछ शरमा गई, क्या कहे यह उसे सूझा ही नहीं!

देवदत्त ने जरा चिड़चिड़े स्वर में पूछा, "दूसरे का लिखा बिना उसकी इजाजत के पढ़ना क्या अच्छी बात है?"

नंदा झेंप गई और नीची निगाह करके वह बुदबुदाई, "माफ कीजिए..."

देवदत्त खिलखिलाकर हँसता हुआ बोला, "माफ तो मुझे आप ही करें।"

नंदा ने जरा भृकुटी तानकर पूछा, "क्यों?"

"आप जैसी विदुषी को मेरे इस रद्दी लेख को पढ़ने की तकलीफ उठानी पड़ी, इसलिए।"

देवदत्त ने गेंद उसकी तरफ फेंक दी थी। उसे कुशलता से लौटा देना आवश्यक था। शरारत-भरी नजर से उसकी ओर देखती हुई वह बोली, "इस जगत में अधिकांश मनुष्य अपनेको अपनी असली कीमत से अधिक आंकते हैं; अपने पीतल को सोना कहकर दुनिया के बाजार में खपाते हैं। पर आप तो बिलकुल दूसरे सिरे पर पहुंचते दीखते हैं। अपने सोने को पीतल कहकर बेचने की जिद है आपकी।"

देवदत्त जरा खिन्न स्वर में बोला, "कौन जाने वह पीतल है या रांगा। कुछ लिखते समय मस्ती के ऐसे क्षण आ जाते हैं कि लेखक अपने-आपको बिलकुल भूल जाता है और दुनिया के सुख-दुखों से एकरूप हो जाता है। इसीलिए यह व्यसन मैंने अपनेको लगा लिया। विवाह से पहले लिखे अपने सारे कागज मैंने वसू को पढ़ने को दिये थे, लेकिन उसने उनका एक अक्षर भी कभी पढ़ा ही नहीं। फिर एक दिन मेरे भीतर का ब्रह्मराक्षस जाग उठा। उसने वह सारे कागज चिराग अली के सुपुर्द कर दिये और सब अग्नये स्वाहा करके अग्नये इदं, न मम. कहकर छुट्टी पाई।"

चर्चा अप्रिय विषय की ओर मुड़ गई थी। नंदा को लगा कि वह धीरे-धीरे इस तरह मुड़ती गई तो देवदत्त के दुःख का उसे ठीक से पता

रूक जायगा। इसलिए वह बोली, "कोई महीना-भर हो गया, मैं रोज यहां आती हूं। पुस्तकें देखती हूं। जो पुस्तकें चाहती हूं, वे ले जाती हूं। पर आपका दर्शन मुझे बस, पहले ही दिन यहां हुआ था। उसके बाद आज देखा है आपको। कहीं शिकार के लिए दूर निकल गए थे?"

"हां, गया तो था शिकार के ही लिए। पर वह जंगल के खूंखार जानवरों का शिकार नहीं था। वह था मनुष्य के मन-रूपी जंगल में छिपे बैठे हिंसक मानव-पशुओं का शिकार।"

नंदा ने जो सहज भाव से पूछा था उसका ऐसा अजीब-सा उत्तर मिलेगा, इसकी उसे कल्पना नहीं थी। रोज की आदत से बिजली का बटन हम जाकर दबाएं, और वहां हमें जोर का धक्का लगे, ऐसी उसकी स्थिति हो गई। उसने देवदत्त की ओर देखा। उसकी आंखें किसी गहरे गह्वर की तरह दीख रही थीं, ऊपर से शांत, किंतु भीतर जैसे कुछ छिपाकर रखा हो।

कुछ देर दोनों ही चुप बैठे रहे। पर दो मूर्तियों की तरह आमने-सामने ज्यादा देर तक मूक बैठे रहना भी बड़ा कठिन होता है। नंदा जाने के लिए उठना चाहती थी। यह शायद देवदत्त के ध्यान में आ गया। वह आत्मीयता के स्वर में बोला, "पागल की तरह मैंने कुछ यों ही बोल दिया है—पागल की तरह भी क्यों कहूं? पागल ही तो हूं मैं। वसू ने ही मुझे पागल करार दे दिया है। वह मुझे कब पागलखाने में भरती कराती है, यह देखना ही अब मेरा काम रह गया है।" देवदत्त यह कह तो गया; पर टांके लगाते-लगाते कपड़ा और फट गया, ऐसा उसे महसूस हुआ। तार पर चलनेवाले मनुष्य की चपलता से उसने अपने मन को संभाला। वह उठा और नंदा से बोला, "आज दो प्याले चाय पीनी होगी आपको। उस दिन भी मेहमानी बाकी रह गई थी। याद है न?"

: ३२ :

परली तरफ के बंगले के देवदत्त के बैठकखाने में जब नंदा ने प्रवेश

किया, तब उसकी आंखें एकदम दो चीजों पर खास तौर से पड़ीं—फूलोंवाले कालीन पर फैली हुई शेर की खाल और शीशम की तिपाई पर रखी हुई संगमरमर की बुद्ध की मूर्ति।

उस मूर्ति के पासवाले एक कोच पर देवदत्त ने नंदा को बिठाया। फिर सामने की मेज के पास आकर उसने उसपर रखी घंटी बजाई। घंटी की आवाज पर नंदा का ध्यान उस मेज के नजदीकवाले कोने की ओर गया। उस कोने में एक भव्य एवं सुन्दर चित्र रखा हुआ था। चौड़ा जबड़ा, भेदक आंखें, सिंह के अयाल की याद दिलानेवाली दाढ़ी। उसे ठीक से देखने के लिए नंदा उठी और जरा आगे बढ़कर खड़ी हुई। वह हैमिंग्वे का तेल-चित्र था! उसके नजदीक ही दीवार से टिकी हुई एक बन्दूक रखी थी। हैमिंग्वे को बन्दूक का कितना शौक था, इस विषय में नंदा ने काफी पढ़ा था। उसने आत्म-हत्या भी अपनी प्रिय बन्दूक से ही की थी, यह वह जानती थी। उसके मनःचक्षु के सामने एक विचित्र-सा त्रिकोण मूर्त्त हो उठा। देवदत्त, अश्वत्थामा और हैमिंग्वे—ये उस त्रिकोण के तीन कोण थे।

नौकर को चाय लाने के लिए कहकर, देवदत्त नंदा के पास आया। "कहां से लिया यह चित्र?" नंदा ने पूछा।

"बंबई की एक प्रदर्शिनी में से।"

"हैमिंग्वे बहुत पसंद है आपको?"

"बहुत।" यह कहकर वह क्षण-भर के लिए रुक गया। अंत में जैसे स्वयं अपने से ही कह रहा हो, उस तरह वह बोला, "दुनिया में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं—एक मनस्वी और दूसरे मुरदार मनवाले। मुरदार मनवाले आठों पहर जिंदा रहने की दयनीय कोशिशें करते रहते हैं। वे किसीकी भी ठोकर खा लेंगे, ऐरे-गैरे के सामने हाथ पसारेंगे धरती पर लोटकर उसे दंडवत करेंगे, घूरे पर पड़े हुए जूठे अन्न से पेट भर लेंगे, पर किसी भी तरह उनकी देह में प्राण बने रहें, ऐसा प्रयत्न करते रहेंगे। उन्हें सबसे बड़ा भय मरने का लगता है। पर मनस्वी मनवाले ऐसे नहीं होते। सम्मान और अभिमान के साथ अगर जिंदा रहा जा सकता हो, तभी वे जिंदा रहेंगे। वे उन्माद में जीयेंगे, मस्ती

में जीयेंगे। पर वे दूसरों की शरण नहीं जायंगे। ईश्वर से भी वे समझौता नहीं करेंगे। वे अपने-आपसे तो हमेशा ही झगड़ते रहते हैं। हैमिंग्वे इसी प्रकार का मनस्वी मनुष्य था। जिस क्षण उसे यह जीवन असहनीय हो गया, उसी क्षण उसने शांतिपूर्वक अपनी बंदूक से..."

नंदा बीच ही में बोली, "पर इसी हैमिंग्वे ने एक बूढ़े मछुवे की समुद्र से हुई लड़ाई का चित्र रंगा है। बड़े कष्ट से बूढ़े ने जो शिकार प्राप्त किया था, वह गायब हो जाता है और वह हाथ हिलाता हुआ लौट आता है। पर इस कारण वह आत्म-हत्या तो नहीं कर लेता। उलटे अफ्रीका के सिंहों का शिकार करने के स्वप्न देखता हुआ वह सो जाता है।"

यह सुन देवदत्त चौंक पड़ा। अपनेको सम्भालता हुआ वह बोला—"ओर, मैं यह तो भूल ही गया कि मैं एक बुद्धिमती विदुषी से बातें कर रहा हूं।"

नौकर चाय लेकर आया। दोनों ही कोच पर बैठे। चाय बनाने के लिए नंदा उठ ही रही थी कि देवदत्त बोला, "नहीं, नहीं, आज आप मेरी मेहमान हैं। इसलिए..."

नंदा ने शरारत-भरे स्वर में उत्तर दिया, "यह किसने आपसे कहा कि मैं मेहमान हूं, ? यह वसू का घर है और मैं वसू की सहेली हूं। इसलिए इसी घर की हूं मैं।"

"एम० ए० में आपने तर्क-शास्त्र लिया था शायद ?" देवदत्त ने हँसते हुए पूछा।

चाय बनाते-बनाते नंदा गर्दन उठाकर बोली, "तर्क-शास्त्र में तो आप ही मुझसे अधिक पारंगत हैं। इसीलिए तो मनुष्यों को दो प्रकारों में बांटकर आपने छुट्टी पाली। पर सच तो यह है कि यह दुनिया जो चल रही है वह न मनस्वी पुरुषों के कारण और न ही मुरदार मनवालों के कारण।"

चाय के प्याले को नंदा के हाथ से लेते हुए देवदत्त ने पूछा, "आप का मतलब ? क्या आप यह कहना चाहती हैं कि मनुष्यों की एक तीसरी श्रेणी भी होती है ?"

कुछ क्षणों के लिए नंदा चुप रही। चाय की दो-तीन चुस्कियां लेने के बाद वह बोली, "हां, यह तीसरी श्रेणी ही वास्तव में बड़ी महत्वपूर्ण है, और वह है प्रेमी मनुष्यों की। स्वयं को भुलाकर दूसरों पर प्रेम करनेवाले मनुष्यों की।"

देवदत्त हंसता हुआ बोला, "ऐसा प्रेम इस दुनिया में है कहीं ?"

दादा और मां की अनेक यादों से नंदा का मन भर आया। गद्गद् स्वर में वह बोली, "निश्चित रूप से है। वह किसीको मां के रूप में मिलता है, किसी को दूसरे किसी रूप में..."

स्निग्ध और अर्थपूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखता हुआ देवदत्त बोला, "सच है !"

उसके उद्‌गारों में सुझाव की जो झलक थी उसका अर्थ ध्यान में आते ही वह शरमा गई। थोड़ी खुश भी हो गई। क्षण-भर के लिए रुककर वह बोली, "साधारण लोग भी यह प्रेम दे सकते हैं। पर...",

देवदत्त एकदम उठा। "अभी आया," कहकर बाहर चल दिया। बैठकखाने की सजावट को नंदा देखने लगी। एक दूसरे कोने में हैमिंग्वे के चित्र जैसा ही एक और भव्य व सुंदर चित्र देखकर वह चौंक पड़ी। थोड़ा आगे बढ़कर उसने ध्यान से देखा। वह चित्र स्वामी विवेकानंद का था। उसके सामने खोल में से बाहर निकला हुआ एक सितार दीख रहा था। विवेकानंद और हैमिंग्वे—सितार और बन्दूक—जीवन और मृत्यु। देवदत्त के मन में कौन-सा संघर्ष चल रहा है, इसकी नंदा को पूरी कल्पना हो गई। आत्म-हत्या के विचार से मनुष्य किस तरह सिरफिरा हो जाता है, इसका स्वयं उसने अनुभव किया था। जो होना हो सो हो, पर इस विचार से उसे परावृत्त करने के लिए वह अपनी सारी शक्ति खर्च कर देगी, ऐसा उसने मन-ही-मन निश्चय किया।

देवदत्त वापस आया तो उसके हाथ में एक सुंदर गुड़िया थी। उस गुड़िया के हाथ में दूध की छोटी बोतल थी। चाभी के घुमाते ही गुड़िया उस बोतल का दूध पीने लगती। उस गुड़िया को नंदा के हाथ में देता हुआ वह बोला, "मधुरा को यह बहुत पसंद आयगी। उसीके लिए हरिद्वार से लौटते वक्त मैंने दिल्ली में यह खरीदी थी।"

नंदा का विचार-चक्र घूमने लगा—देवदत्त हरिद्वार गया था ? तीर्थयात्रा करनेवाली अपनी मां से मिलने ? या कि स्वयं के प्राणों का ही कुछ भला-बुरा कर लेने के विचार से ?

: ३४ :

देवदत्त मधुरा के लिए गुड़िया लाया है, इसका बसू को पता नहीं लगना चाहिए, यह नंदा को समझते देर न लगी। उसने वह गुड़िया बिना किसी को दिखाए चुपचाप अपने कमरे में ले जाकर रख दी। आज शाम को ही उसे बापू के घर जाना था। उसने सोचा कि वहां से आकर यह कह देगी कि गुड़िया वह बाजार से मधुरा के लिए खरीदकर लाई है, और यों उसे मधुरा को दे देगी। मन-ही-मन यह निश्चय कर वह निश्चित हो गई।

शाम को बापू के आते ही वह उनके साथ बड़ी उत्सुकता से उनके यहां जाने को निकल पड़ी।

बापू का घर बिलासपुर नगर के मध्य भाग में स्थित विट्ठल मंदिर की दाहिनी ओर एक गली में था। बापू जल्दी-जल्दी आगे चल रहे थे। नंदा इधर-उधर देखती हुई और देखे हुए का मन में संग्रह करती हुई उनके पीछे-पीछे चली जा रही थी। अपने देश की गरीबी के बारे में उसने पुस्तकों में बहुत पढ़ा था। लेकिन आज उसे उसका जो अस्पष्ट-सा दर्शन हो रहा था; वह बड़ा दुखदाई था। अनजाने उसका मन यहां की प्रत्येक बात की उसी प्रकार की बंबई की बातों से तुलना करने लगा। उसके मन पर यह असर हुआ कि बंबई जैसे शहर—हमारे देश के दर्शनीय भाग—जरीदार मखमली परदे के मानिंद हैं। पर यह परदा अगर एक ओर हटा दिया जाय तो उसका फिर जो रूप दीखता है, वह एक सड़े-गले, फटे और गंदे कपड़े की तरह है। दासबाबू ने कहा था, "अपना नीड़ छोड़कर बाहर गये बिना पक्षी आकाश के अर्थ को नहीं समझ सकता।" कितना सच है यह !

बापू के पीछे-पीछे नंदा ने एक पुराने मकान में प्रवेश किया। वह

बाईं तरफ के कमरों की ओर मुड़ी। वही बापू का घर था। घर का दरवाजा खुला ही था। बापू के साथ वह भीतर गई। चप्पलें उतारकर संकरे बरामदे से होते हुए उसने बापू के साथ एक कमरे में प्रवेश किया। वहां दीवार से सटी हुई एक खटिया थी। उस खटिया पर एक वृद्धा लेटी हुई थी। पैरों की आहट सुनते ही पड़े-पड़े उसने टुकर-टुकर देखा। बापू उसके बिलकुल नजदीक गए। नंदा भी उनके पीछे-पीछे गई। बापू ने उस स्त्री से पूछा, "क्या हाल है?" किसी यांत्रिक गुड़िया की तरह एकटक देखती हुई रुग्ण-शैया पर पड़ी उस स्त्री ने, जिसके केश कपास जैसे हो गए थे, उत्तर दिया, "बहुत अच्छा है।" नंदा की ओर अंगुली दिखाकर बापू बोले, "सावित्री, हमारे कोई लड़की नहीं है, इसकी तुम हमेशा शिकायत करती रहती थीं। यह देखो, तुम्हारे लिए एक लड़की ले आया हूं आज। कैसी है? पसंद आई?" उस स्त्री के मुंह से पढ़ाए हुए तोते की तरह शब्द निकले, "बहुत अच्छी।"

लकवा मार जाने के कारण वह वृद्ध स्त्री बिस्तर पर से उठ नहीं सकती होगी। वाचा चली जाने के कारण "बहुत अच्छा" इन शब्दों को छोड़कर दूसरे शब्दों का वह उच्चारण नहीं कर सकती होगी। बापू की गृहस्थी का यह चित्र देखकर नंदा का मन डर गया। किंचित भयभीत दृष्टि से उसने बापू की ओर देखा। अंधेरी रात को प्रकाशमान कर देनेवाले शुक्र के तारे का-सा स्मित उनके चेहरे पर खिल उठा और नंदा ने फिर बापू की पत्नी की ओर देखा। पति की उस मुस्कान का प्रतिबिम्ब ही मानो उस रुग्णा पत्नी के चेहरे पर खिल रहा था। दोनों ही एक-दूसरे की ओर कितनी आत्मीयता से देख रहे थे! जैसे कुछ दिन पहले ही विवाहित जोड़ी हो वह।

बापू सावित्री के बिल्कुल नजदीक गए। उसके बिखरे हुए बालों में उन्होंने प्रेम से अंगुलियां फिराईं। तुरन्त ही वह जोर से हंसते हुए बोले, "अरे हां, भूल ही गया मैं। सुबह खाना पकाने की जल्दी में, तुम्हारी कंघी-चोटी करना रह गया! पर थोड़ा ठहरो, तुम्हारी यह बेटी बहुत दिनों के बाद मायके में रहने को आई है। उसके लिए पहले जरा चाय बना दूं। फिर तुम्हारी इतनी अच्छी केश-भूषा कर दूंगा कि...हां,

अच्छा याने वही हमारी पुराने जमाने की वेणी है। तुम्हारी आजकल की पोनी-टेल या कि क्या—वह कुछ हमारी समझ में नहीं आता, भाई..." और अंतिम वाक्य बोलते-बोलते नंदा की ओर देखकर वह हंस पड़े और बोले, "हम यद्यपि खादीवाले हैं, फिर भी चाय बना सकते हैं, समझीं। सावित्री को चाय के बिना चलता ही नहीं। इसलिए वह सारा पाकशास्त्र मुझे सीखना पड़ा।"

बापू मुड़कर भीतर के कमरे में जाने लगे, पर नंदा ने उन्हें जाने नहीं दिया। सावित्रीबाई की खटिया पर एक ओर वह बैठी हुई थी। वह झट-से उठी और बोली, "बापू, आप मां के पास बैठिए। मैं चाय बनाकर लाती हूं।"

बापू झट-से बीच के दरवाजे तक गए और दोनों हाथों से दरवाजे को रोकने का हावभाव करते हुए बोले, "नहीं-नहीं, इधर स्त्रियों का आना मना है। यह पुरुष राज्य है। कार्तिकेय के मंदिर में जिस तरह स्त्रियों के प्रवेश की मनाही होती है उसी तरह अपनेराम के बावरचीखाने में भी है। इसके सिवा नंदाजो तुमसे एक काम और है। मैं तुम जैसी विदुषी की सम्मति अपनी चाय पर चाहूंगा। साबुन के इश्तहारों पर अभिनेत्रियों की सम्मतियां छपती हैं न, उसी तरह से छपाने के लिए। क्या ठिकाना है? कल अगर जमींदारसाहब के यहां की नौकरी छूट गई, तो चाय का होटल इस देश-भक्त को खोलना पड़ेगा, प्रचार की जरूरत होगी न!"

बापू के इस विनोदी स्वभाव पर नंदा हंस पड़ी। दुख को मधुर कर लेने की अक्लमंदों की यह रीति उसके लिए नई नहीं थी। परन्तु स्वयं पर और स्वयं की परिस्थिति पर चल रहे इस मजाक को सुनते समय उसका सारा ध्यान सावित्रीबाई की ओर लगा था। उनके चेहरे पर मंद मुस्कान के सिवा दूसरा और कोई भाव नजर नहीं आ रहा था। वह जरा ऊपर खिसकी और झुककर सावित्रीबाई से बोली, "मां, पैर दाब दूं क्या आपके?" बोलते-बोलते वह उनके बदन पर हाथ फेरने लगी। उसने उन्हें 'मां' कहा, इस कारण हो, अथवा उसके प्यार-भरे स्पर्श के कारण हो, सावित्रीबाई की आंखें एकदम छलछला उठीं।

नंदा को वे आंसू दीख पड़े। वे आंसू दुःख के नहीं थे, यह उसने समझ लिया। गरमी में तपी हुई धरती को जब पहली वर्षा का स्पर्श होता है तब उसमें से खुशबू महकने लगती है। वे आंसू भी कुछ उसी प्रकार के थे।

रसोईघर से बापू की आवाज सुनाई पड़ने लगी। वह कुछ गुनगुना रहे थे। बीच ही में उस गुनगुनाहट के एक-दो शब्द सुनाई पड़ जाते। नंदा कान लगाकर सुनने लगी "मोगरा...मोगरा..." ये दो शब्द ही उसे सुनाई पड़े। बापू की आवाज भारी थी, पर उसमें मिठास थी। उसकी इच्छा हुई कि वह जाकर दरवाजे के पास खड़ी हो जाय और उनका गाना सुने। "मां, मैं अभी आई।" कहकर वह खटिया से उठी और बीच के दरवाजे के पास जाकर खड़ी हो गई। भीतर का कमरा जरा आड़ा-टेढ़ा था। चूल्हा कहीं ओट में था। वह नंदा को दीख नहीं रहा था। बापू भी नहीं दीख रहे थे। पर अब उनकी आवाज अलबत्ता साफ सुनाई दे रही थी। तालसुर पर वह गा रहे थे :

इवलेसे रोप लावियले द्वारी
तयाचा वेलु गेला गगनावेरी
मोगरा फुलला ऽ ऽ मोगरा फुलला
फुले वेचिता बारू कठीयांसी आला
मनाचिये गुंती गुंफियेला शेला
बाप रखुमादेवीवरु विट्ठली अर्पिला।[1]

बापू जो अभंग गा रहे थे वही दादाजी के मुंह से भी नंदा ने कई बार सुना था। परन्तु उसकी भाव-पूर्णता आज उसे पहली बार ही

---

१. मोगरे का एक छोटा-सा पौधा दरवाजे पर लगा दिया। उसकी लता बढ़ती-बढ़ती आकाश तक पहुंच गई। लता कलियों से भर गई। उन्हें चुनकर उसकी माला बनाई और वह विट्ठल को अर्पित कर दी। उसी तरह मन के भावों (ईश्वर के प्रति) के ताने-बाने से बनाया गया यह मनरूपी महास्थल पिता विट्ठल और माता रखुमाई के चरणों में अर्पित किया।

महसूस हुई। उसके मन में आया कि यह अभंग भक्ति की तरह क्या प्रीति को भी नहीं लागू होता क्या ? बापू के गले में वरमाला डालकर इस घर में सावित्रीबाई ने प्रवेश किया होगा, उस समय उनकी प्रीति की पौध जरा-सी ही होगी। आज उस छोटी-सी बेल की पौध आकाश के मचान पर चढ़ गई है। कितने साल गुजर गए, कौन जाने ! लकवे से बीमार बिस्तर पर पड़ी हुई पत्नी को बापू हथेली के फोड़े की तरह संभाल रहे हैं। गरीबी में, अकेले, हंसते मुंह ! यहां यह सच्चा मोगरा खिला हुआ है। और वसू के बंगले में !

प्यालों और तश्तरियों की खनखनाहट हुई। नंदा झट-से दरवाजे से लौट पड़ी। सावित्रीबाई के पास आकर बैठ गई। उसके पीछे-पीछे बापू चाय के दो प्याले लेकर आए। एक उन्होंने नंदा के हाथ में दिया, दूसरा जमीन पर रखा। फिर सावित्रीबाई को गर्दन के नीचे डालकर बापू ने धीमे से उन्हें उठाया और दीवार से टिकाकर रखे गए तकिए के सहारे ठीक से बिठा दिया। फिर नीचे रखे हुए प्याले को उठाया। तश्तरी में थोड़ी-थोड़ी चाय उंडेलकर वह सावित्रीबाई को आहिस्ते-आहिस्ते पिलाने लगे। चाय की चुस्कियां लेते-लेते नंदा ने पूछा, "आप नहीं लेंगे, बापू ?"

बापू हंसते हुए बोले, "पहले नहीं पीता था, पर इसकी सोहबत से आजकल पीने लगा हूं। इसी प्याले की थोड़ी-सी चाय मैं भी पीऊंगा। इसके साथ मेरा एक करार हो गया है। जो कुछ भगवान दे, उसे हम दोनों आधा-आधा बांट लेंगे। खैर, छोड़ो इसे, यह बताओ नंदा, कि चाय कैसी बनी है ? बैस्ट, फर्स्ट क्लास या ए वन ? देखा, मनुष्य को एकाध हुनर हमेशा अपने पास रखे रहना चाहिए।"

: ३५ :

नंदा जब लौटी तो उस वक्त काफी अंधेरा हो गया था। उसके मन के अंतर में "मोगरा फूला—मोगरा फूला," बापू के अभंग के वे बोल महक रहे थे। आकाश ही जैसे वह अभंग गा रहा था और उसके

हर स्वर के साथ एक-एक तारा खिल रहा था। दासबाबू ने उसे प्रीति का जो अर्थ समझाकर बताया था, उसका साक्षात्कार इस दरिद्र घर के बूढ़े दम्पति की संगति में उसे हुआ था।

मन में न समा पानेवाले आनंद की लहरों पर तैरती हुई वह अपने बंगले पर पहुंची, पर बंगले में कदम रखते ही नौकरों की दौड़धूप जो देखी तो वह स्तंभित रह गई। कुछ समय तक वह समझ ही नहीं पाई कि मामला क्या है! वसु का अपने दिमाग पर बिलकुल अधिकार नहीं था। उसने जो कुछ देखा, उससे वह डरती-डरती ही आगे बढ़ी। वसू के शयनागार में मधुरा पलंग पर पड़ी थी।

शाम को जब नंदा बापू के यहां गई थी, तब मधुरा खेलने गई थी। उसे बीमारी का यह दौरा एकदम कैसे पड़ा, यह वह कुछ समझ ही नहीं पाई। एक डाक्टर मधुरा की नब्ज देख रहा था। नंदा ने उससे पूछा, "क्या हाल है, डाक्टर?"

उसकी आवाज कानों में पड़ते ही वसुधा ने मुड़कर उसकी ओर देखा और तुरंत उसने अपना मुंह फेर लिया। वसू के इस वर्ताव का नंदा को कुछ बोध हो रहा था। जिधर वसू देख रही थी, उस तरफ उसने अपनी गर्दन मोड़ी। देखा कि पलंग के नजदीक देवदत्त द्वारा दी गई गुड़िया छिन्न-भिन्न होकर पड़ी हुई थी और वसू के ये कर्कश शब्द उसके कानों में आए, "तेरे कमरे में यह गुड़िया कैसे आई, नंदा?" उसे लगा कि सारा कमरा घूम रहा है। अपने अंदर का सारा साहस और बल बटोरकर उसने उत्तर दिया :

"वह तो मैं मधुरा के लिए लाई थी?"

"कहां से लाई थी?" वसुंधरा ने पूछा।

नंदा जरा घबड़ाई। पर तुरंत शांतिपूर्वक उसने उत्तर दिया :

"बंबई से। आते समय ले आई थी अपने साथ। अपने जन्म-दिन पर मधुरा को देने के लिए। आज मेरा जन्म-दिन है न? इसलिए उसे बाहर निकालकर..."

"झूठ, बिलकुल झूठ।" वसुंधरा चिल्लाई, देवदत्त लाये हैं इसे। तू रोज उनसे घुलघुलकर बातें करने जाती है न, लायब्रेरी जाने का

बहाना करके। मैं यह सब जानती हूं। उन्होंने ही यह तुझे दी है। मधुरा को फुसलाकर मुझसे दूर ले जाने का षड्यंत्र रच रहे हो तुम दोनों, पर मैं नहीं छोड़ूंगी उसे। बेटी के लिए इतना प्यार झलक रहा था उनमें, तो उन्हें आना था स्वयं यहां गुड़िया देने। ये सारे ढोंग मैं समझती हूं, समझी ? सुन ले नंदा, मेरी सहेली के नाते तू यहां आई थी, पर तुझे हम दोनों के बीच में कूदने के लिए किसने कहा था ?"

क्या हुआ होगा, यह नंदा के ध्यान में आ गया। मधुरा खेलकर वापस आई होगी और उसे नंदा मौसी कहीं दीखी नहीं होगी तो वह मौसी के कमरे में गई होगी और सामने उस सुंदर गुड़िया को देखते ही उसे लेकर नाचती-कूदती वसू के पास गई होगी। यह पता चलते ही कि गुड़िया देवदत्त लाये हैं...

नंदा के मन ने झट-से सारी शृंखलाएं जोड़ लीं। गंगाराम यह जानता ही होगा कि देवदत्त ने यह गुड़िया दिल्ली में खरीदी है। उसने सहज बातचीत में यह बात पार्वती से कही होगी और जब मधुरा गुड़िया लेकर वसुंधरा के पास गई होगी, उस समय पार्वती ही वहां रही होगी।

नंदा बार-बार अपने को कोसने लगी कि इस जरा-सी बात के लिए उसे वसू से झूठ नहीं बोलना चाहिए था।

: ३६ :

सुबह ठंडी हवा चल रही थी, फिर भी नंदा की आंख नहीं लगी थी। वह बार-बार करवटें बदलती रही और रात को उसने जो कुछ सुना था, उसका अर्थ लगाने की वह कोशिश कर रही थी, जैसे फटे पत्र के टुकड़े जोड़कर उसे पढ़ने का कोई प्रयत्न करे।

रात को मधुरा को होश में आने में जरा समय लग गया। नंदा का कलेजा धड़कता रहा तबतक। पर डाक्टर ने उसे धीरज देते हुए कहा था, "यह मिर्गी नहीं है। डर के कारण आई हुई मूर्छा है।" और यह सच ही था। होश में आने के बाद मधुरा किसी भी तरह मां के पास जाने को तैयार नहीं हो रही थी। उसे थोड़ी कॉफी पिलाकर नंदा

ने गोद में ले लिया और एक कहानी सुनाने लगी। कहानी सुनते-सुनते मधुरा सो गई। खाना लग गया, पर वसुन्धरा खाना खाने नहीं उठी। नंदा भी भूखी रही। रेलगाड़ी में बैठे दो अपरिचित मुसाफिरों की तरह वे दोनों सहेलियां अपने-अपने पलंग पर बैठी रहीं। अंत में नंदा उठी और वसुन्धरा के पास जा बैठी। उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरती हुई वह बोली :

"वसू, माफ कर दे मुझे। कुछ समय पहले मैं तुझसे झूठ बोली। यह मुझे नहीं करना चाहिए था। वह गुड़िया देवदत्त ही लाये थे और उन्होंने मधुरा को देने के लिए मुझे दी थी। मैं तेरी सहेली होकर ही यहां आई हूं। मुझे तुझको धोखा नहीं देना चाहिए था। पर सौगंध है तुझे, तू मन-ही-मन इतना कुढ़ मत। यदि तू इसी तरह कुढ़ती रहेगी तो दूसरा आदमी क्या करे? जबतक मुझे यह नहीं मालूम हो जाता कि देवदत्त के विषय का तेरा दुख क्या है, तबतक वह मैं कैसे दूर कर सकूंगी? और अगर मुझसे दुख हलका करते न बना, तो मैं यहां रहूं भी क्यों? लौट जाऊं क्या?" वसू को थपथपाती हुई और धीरज बंधाती हुई नंदा काफी देर तक बातें करती रही, तब कहीं उसके मन का भार हल्का हुआ। वसू के मौन का बांध टूट गया और नंदा की गोद में सिर रखकर कितनी ही देर वह अपनी बातें उसे सुनाती रही। फिर नींद की गोलियां खाकर वह सो गई। पर नंदा जागती ही रही—भुतहा होने की अफवाहों से वीरान हुए किसी मकान में—अमावस की रात बिताने के लिए बाध्य होनेवाली प्रवासिनी की तरह।

वसू ने उसे अपनी जो कहानी बताई वह चित्रपट की तरह उसकी आंखों के सामने तैरने लगी। बचपन में ही माता-पिता के प्रेम से वंचित होकर मामा के घर में अविकसित मन से वह छोटी से बड़ी हुई। अपने सुंदर रूप और मधुर कंठ के नशे में मस्त रहनेवाली वसू—वसू का देवदत्त से विवाह हुआ। प्रीति की पहली रात का एक अत्यंत मोहक चित्र स्वप्निल वसू ने मन में रंगा था—चित्रपट के भावुक मिलन के समान—देवदत्त धीरे-से नजदीक आकर उसकी ठोड़ी पकड़कर तनिक उठायेगा, रूप की प्रशंसा करेगा, शरमीले स्वभाव का कुछ मजाक उड़ायेगा और

फिर धीरे-से उसका हाथ अपने हाथ में लेकर...। पर प्रत्यक्ष में तो उसके इस स्वप्न के टुकड़े-टुकड़े ही हो गये। उस पहली रात को देवदत्त शराबी मित्रों की बैठक में मशगूल हो जाता है। वह शयनागार में देर से आता है—रात दो बजे के बाद। आते ही उजड्डता से वह वसू को अपने नजदीक खींचता है। फिर घिनौने बदबू भरे मुंह से वह उसके चुंबन के बाद चुंबन लेता है। मछुवे के जाल में फंसी हुई मछली की तरह उसके आलिंगन में वसू की स्थिति हो जाती है। प्रीति के इस पाशविक दर्शन से वसू के मन में जो दरार पड़ी वह हमेशा के लिए स्थायी हो गई। उसे जोड़ने के लिए आगे कुछ भी नहीं होता। मामा-मामी अत्यंत लोभी थे। इसलिए उनका सहारा वसू को नहीं रहा। उसका यह मायका नाममात्र का ही था और विवाह के बाद तो वह उससे पूर्ण रूप से वंचित हो जाती है। पति पत्थर-सा हो, फिर भी पत्नी को उसे देव ही मानना चाहिए, इस सूखे उपदेश के सिवा सास के पास से भी उसे और कोई आश्वासन नहीं मिलता। देवदत्त के किसी भी उन्माद में—शराब, शिकार, पढ़ने या नाच-गाने के वसू भाग नहीं ले सकती। मधुरा के जन्म के बाद भी दोनों के मन कभी भी पास नहीं आए। धीरे-धीरे देवदत्त के पिता की पागलपन में आत्महत्या की कथा भी वसू को मालूम होती है। वही पागलपन देवदत्त को विरासत में मिला है, यह शक उसके मन में जड़ पकड़ लेता है। दोनों में दो ध्रुवों का अंतर पैदा हो जाता है। यह सब चरम सीमा पर पहुंचता है तब, जब देवदत्त अपनी मां का खून करने जाता है। "मेरे पिता का खून तूने किया।" यह चिल्लाता हुआ वह बन्दूक लेकर अपनी मां की तरफ दौड़ पड़ता है। अब उसके पागलपन की हद हो गई, ऐसा वसू को यकीन हो जाता है। इसी भयानक प्रसंग को देखकर मधुरा को दौरे पड़ने लगते हैं। अपने और मधुरा के प्राणों के विषय में भी वसू को चिंता होने लगती है। देवदत्त का बंगला छोड़कर वह सास के बंगले में आकर रहने लगती है और "अगर यहां कदम रखोगे तो मैं प्राण दे दूंगी।" देवदत्त को यह चेतावनी देती है।

कल्पना के चित्रपट पर यह चित्र देखते-देखते नंदा के रोंगटे खड़े हो

गए। सुन्दर हरियाली के नीचे मानो भयंकर ज्वालामुखी धधक रहा हो। बाहर से सुख के शिखर पर मालूम होनेवाली वसू की गृहस्थी में कितना दारुण दुख छिपा हुआ था। उसे लगा, इसी समय वह उठे और देवदत्त के बंगले पर जाकर उससे जवाब तलब करे कि वसू जैसी भोली-भाली लड़की की जिंदगी के साथ इस तरह का क्रूर खेल क्यों खेल रहा है? परन्तु वसू की कहानी से देवदत्त का उसे जो दर्शन हुआ था, उसे ध्यान में रखते हुए ऐसा लगा कि यह खेल की बन्दूक से शेर का शिकार करने जैसा होगा।

वसू के प्रति उसकी सहानुभूति में जैसे-जैसे ज्वार आता गया, वैसे-वैसे उसे स्वयं अपने पर अधिकाधिक क्रोध आने लगा। देवदत्त ने सज्जनता का स्वांग भरकर उसे धोखा दिया और एक भोली व अल्हड़ लड़की की तरह उसकी सराहना करती हुई वह उससे एकरूप हो गई। उसकी बुद्धि और व्यक्तित्व के प्रति वह आकर्षित होने लगी, पर उसकी वह सज्जनता निरा दिखावा ही था—रावण द्वारा पहना गया राम का नकली चेहरा!

पर इस मनस्थिति में भी उसे एक शंका बराबर बेचैन करती कि इतना निष्ठुर और व्यसनी मनुष्य सज्जनता का स्वांग सहज ही भर सकता है क्या? विवेकानंद की पूजा करनेवाला मनुष्य अपनी जीवन-संगिनी का अपमान करने का साहस कैसे करता है? अश्वत्थामा के एकाकीपन की वेदना जिसके हृदय को विदीर्ण करती हो, वह अपनी पत्नी के, जिससे स्वयं का भाग्य बंधा हुआ है, दुख की तिलमात्र भी परवा न करे, इसका अर्थ क्या? चंचल जैसे मूक प्राणी से भी जिसे प्यार हो जाता है वह...

इन प्रश्नों से वह बिलकुल बेचैन हो उठी। फिर इन सब विचारों को एकदम मन से हटा दिया और वह चुपचाप आंख बन्द किये पड़ी रही। पर नींद उसे किसी भी तरह नहीं आई। उसके नजदीक सोई हुई मधुरा अचानक चिल्ला पड़ी, "मां!" नंदा ने धीमे से उसे अपने पास खींच लिया। मधुरा ने कसकर उसे अपनी नन्हीं बांहों में समेट लिया। उस अत्यंत निर्भीक बाल-स्पर्श से नंदा को बड़ा सुख मिला। इस

आलिंगन में दुनिया का कोई भी दुख प्रवेश नहीं कर सकता, इस कल्पना-तरंग पर तैरते हुए ही उसने न जाने कब निद्रा के राज्य में प्रवेश किया।

: ३७ :

दिन निकलते थे और रेंगते-अलसाते डूब जाते थे। नंदा बीच-बीच में लायब्रेरी जाती, पर वहां देवदत्त उसे एक बार भी नहीं मिला। रात में लायब्रेरी में जलनेवाली रोशनी भी उसने कभी नहीं देखी। पार्वती से मिलने आनेवाला गंगाराम भी डेढ़-दो महीने से उसे नजर नहीं आया। देवदत्त कहीं दूर सफर को गए होंगे, ऐसा उसने मन में पक्की तरह मान लिया।

दो महीने हो रहे थे। पर अभी तक नंदा का मन यह निश्चित नहीं कर पा रहा था कि देवदत्त से भेंट होते ही उससे वसू की चर्चा किस तरह करे और देवदत्त के सारे अपराधों को प्रमाणित करके कैसे उसे अपराधी घोषित करके दंड का पात्र ठहराये।

अब सारा दिन वह मधुरा के साथ खेलने और वसू के साथ खूब बातें करने में बिताने लगी। शाम को बापू के साथ वह उनके घर भी जाती। वहां से लौटने पर रात को वसू के साथ बैठकर उससे गप्पें लगाती। उन गप्पों के दौरान बापू के कुटुम्ब के बारे में उसे जो जानकारी मिली, उसके कारण बापू के प्रति उसका आदर कहीं अधिक हो गया। बापू का एक ही लड़का है, ऐसा वह अभी तक समझती थी। पर यह सुनकर कि उनके देवदत्त की उम्र का एक दूसरा लड़का भी था, उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उस लड़के के बारे में बापू ने उसे कभी भी नहीं बताया था। वह बड़ा होशियार था। यदि जीवित रहता तो मां-बाप के सारे मनोरथ पूरे करता, पर दस वर्ष पहले देवदत्त को बचाने की कोशिश में वह दुर्घटना में अपनी जान से हाथ धो बैठा। उस धक्के से बापू की पत्नी ने जो एक बार बिस्तर पकड़ा सो आजतक पकड़े हुए हैं। इस अपाहिज सास की सेवा करना प्रेम-विवाह करके घर में

आई हुई बहूरानी को पसंद नहीं है, यह देखकर बापू ने ही बड़े लड़के को बंबई भेज दिया। पुराने नौकर-चाकरों से सुनी हुई ये बातें जब नंदा को मालूम हुईं, तब उसके सामने एक ही प्रश्न खड़ा हुआ——बापू जैसे फरिश्ते के इतने नजदीक होते हुए भी अपना दुख उन्हें सुनाकर अपना दिल हलका करने की इच्छा वसू को क्यों नहीं हुई? इस प्रश्न से वह बेचैन हो जाती। किसी भी तरह इसका उत्तर उसे मिलता नहीं था।

पर बापू और सावित्रीबाई के साथ बीतनेवाले उसके शाम के ये चार घंटे उसे बड़ी सांत्वना देते। धूप में चलकर आनेवाले मुसाफिर को गंगा-स्नान जैसा शीतल और निर्मल लगता है, उसी तरह बापू के यहां जाने से लगता। मां से बिदा लेकर जब बापू के घर से वह लौटती तो अनजाने "मोगरा फूला—मोगरा फूला" यह चरण वह गुनगुनाने लगती।

पर एक बात उसके ध्यान में जरूर आ गई थी। वह यह कि जब बापू से जमींदार के विषय में कोई चर्चा होती तो उनकी जबान पर जैसे ताला पड़ जाता। वह एकदम चुप हो जाते और उस बार के प्रश्नों के उत्तर केवल 'हां', में ही देकर विषय समाप्त कर देते। जिस तरह अंधेरे कमरे में धूप की एकाध किरण आ जाने से वह छोटी-सी प्रकाश-रेखा सुंदर तो दीखती है, परंतु अंधेरे कमरे को प्रकाशित करने की उसमें शक्ति नहीं होती, उसी तरह उसे बापू के उत्तर के वे संक्षिप्त वाक्य लगते।

तीन-चार दिनों में बापू से थोड़ा-थोड़ा उसे जो मालूम हो सका वह इतना ही कि देवदत्त के पिता बापू के गहरे मित्र थे। वे दत्तक थे। वह कोई पागल नहीं थे। पर बचपन अत्यंत गरीबी में बीतने के कारण उनका स्वभाव कुछ सनकी हो गया था। इस कारण युवावस्था में ही उन्हें साधु-संतों की संगत का चसका लग गया था। आत्महत्या की सनक भी उनके दिमाग में घुस गई थी। परंतु आश्चर्य की बात यह कि आत्महत्या के बाद उनकी लाश चंदनगढ़ के आसपास कहीं भी नहीं मिली। आत्महत्या के पत्र के साथ उन्होंने देवदत्त के नाम का एक पत्र भी बापू के पास भेज दिया था। उस लिफाफे पर उन्होंने लिखा था कि "मेरी मृत्यु के बीस वर्ष बाद यह चि० देवदत्त को देना।" बापू ने वह

लिफाफा अपने पास बीस वर्षों तक जान से भी अधिक हिफाजत से रखा और कोई तीन-चार महीने पहले ही देवदत्त को उसे बीस वर्ष हो जाने पर दिया था।

देवदत्त के पिता के बारे में कम-से-कम इतना पता तो नंदा को लग ही गया, परंतु उसकी मां के बारे में जब वह कुछ पूछती तो बापू तुरंत विषय बदल देते। और देवदत्त के विषय में नंदा ने जब खूब ही खोद-खोदकर पूछा तब बापू ने इतना ही कहा, "चपल घोड़े को काबू में रखने के लिए उस पर जमकर बैठनेवाला सवार चाहिए। अगर ऐसा-वैसा सवार हुआ तो घोड़ा इधर-उधर दौड़ने लग जाता है और भटक भी जाता है।"

शनिवार की शाम को बापू के इस अर्थ-भरे कथन का विचार करती हुई नंदा सावित्रीबाई से बोली, "मैं अब चलती हूं।" और वह उनके चरण छूने उठी। इसी समय बापू बोले, "सावित्री, मैं तो सचमुच ही बूढ़ा हो गया हूं। किसी बात को याद ही नहीं रहती अब मुझे।" और तुरंत उठकर खूंटी पर टंगे कोट की जेब से एक पत्र निकालकर नंदा को दे दिया। बोले, "देखो, भूल ही गया था न यह देना।" नंदा ने अक्षर पहचान लिये। पत्र देवदत्त का था।

: ३८ :

घर आते ही नंदा सीधी अपने कमरे में गई और बत्ती जलाकर पत्र पढ़ने लगी।

पत्र के आरंभ में जल्दी-जल्दी में "प्रिय नंदा" जैसा कुछ लिखा दीख रहा था। बाद में वह काट दिया था। फिर लिखा था :

"मैं कल रात लौटा हूं। बड़ी आशा से लायब्रेरी में गया, पर आप लायब्रेरी में नहीं आईं। कितनी अधीरता से मैंने आपकी बाट जोही। मैंने ही नहीं, चंचल ने भी। आप मुझ पर नाराज हो गईं क्या? या वसू ने राक्षस की गुफा से आपको भी डरा दिया? मैं मन की बात समझने वाला व्यक्ति तो नहीं, पर आप भीरु नहीं हैं, ऐसा मेरा मन कह रहा है।

"आप जानती हैं कि चंचल मेरी सच्ची सहेली है, पर वह सिर्फ आंखों से ही बोलती है। आपसे संघर्ष हुआ--एक बोलनेवाला मित्र मिला, इससे मैं हर्ष-विभोर भी हो गया। आपसे बातें करते समय मुझे लगने लगा था कि ऐसा मनुष्य दुनिया में है, जिसके सामने मैं अपना हृदय खोलकर रख सकता हूं। पर वह क्या केवल भ्रम ही था ?

"दो-चार दिनों में मैं फिर बाहर जा रहा हूं। कब लौटूंगा, कह नहीं सकता। मेरे आने तक आप यहीं रहेंगी, ऐसा थोड़े ही है ? जाने से पहले आपसे दिल खोलकर कुछ बातें करूं, ऐसा मुझे बराबर लग रहा है।

"कल मिल सकेंगी ? दोपहर तीन बजे चंदनगढ़ चलेंगे। शाम को लौट आयंगे। पर अगर मेरे भीतर के राक्षस का आपको डर लगता हो तो यह साहस आप न कीजिए। अंत में तो दुनिया में मनुष्य अकेला—बिलकुल अकेला है—यही सच है। अश्वत्थामा के लिए हैमिग्वे की राह खुली नहीं है। पर मेरे लिए वह खुली हुई है--यह मेरा कितना बड़ा भाग्य है !"

आपका
देवदत्त

: ३९ :

पत्र ने नंदा के मन में विचारों ने कुहराम मचा दिया। देवदत्त के साथ चंदनगढ़ जाय या न जाय ? वसू से कह कर जाना तो बिलकुल ही असंभव था ! यह बात उससे कहने पर तो वह आपे से बाहर ही हो जायगी, परंतु देवदत्त से जबतक दिल खोलकर बातें नहीं हो लेतीं तबतक वसू की गृहस्थी का कीचड़ में फंसा हुआ पहिया कैसे निकले ? अनायास ही यह मौका आ गया है, इससे लाभ उठा लेना चाहिए। यह सोचकर उसने अंत में चंदनगढ़ जाने का निश्चय किया।

पर दूसरे दिन जैसे ही वह चन्दनगढ़ जाने के लिए गाड़ी में बैठी कि उसके मन में फिर उथल-पुथल शुरू हो गई। देवदत्त के स्वच्छंद

बर्ताव और बेकाबू मनोवृत्ति का वर्णन वसू के मुंह से उसने सुना ही था। सांप सुंदर दीखता है, पर इसलिए क्या उसे कोई गले लगा लेता है ? देवदत्त के साथ उसे अकेली जाना सुरक्षा की दृष्टि से उचित होगा क्या ?

अनेक विचार उसके मन में मंथन करते रहे। "लिव डेन्जरसली," उसकी आटोग्राफ बुक में लिखा नेहरूजी का यह संदेश उसे याद हो आया, पर तभी उसके मन में आया कि पर्वत की तरह संदेश भी तो दूर से ही अच्छे दीखते हैं।

उसे मौन बैठे देखकर, देवदत्त ने प्रश्न किया, "क्या आपका आज मौन है ?" नंदा ने नकारसूचक गर्दन हिलाई। देवदत्त जोर-से हंसता हुआ बोला, "पर आपने उत्तर भी मौन में ही दिया !" इस पर नंदा अपनी हंसी नहीं रोक पाई। वह बोली, "सुनने को आई हूं मैं आज, बोलने के लिए नहीं।" देवदत्त क्षण-भर के लिए रुककर बोला, "सुनने-वालों के दो वर्ग होते हैं—कानों से सुननेवालों का और हृदय से सुनने वालों का। आप किस वर्ग की हैं ?" नंदा झट-से बोली, "यह तो आप पहले से ही जानते हैं। यह जाने बिना क्या आप मुझे इतने आग्रह से बुलाते ?"

चंदनगढ़ पहुंचने पर देवदत्त नंदा को अपने बंगले पर ले गया। बंगला अच्छी हालत में रखा था। उसकी देखभाल करनेवाले नौकर-चाकर भी वहां थे। अक्सर देवदत्त बीच-बीच में एक-दो दिन इस बंगले में रहा करता है, यह उससे ही नंदा को मालूम हुआ। चाय लेकर दोनों ही गढ़ देखने बाहर निकल पड़े। अनेक पुराने अवशेषों को देखते-देखते दोनों पूरब की तरफ के दरवाजे के पास आए। वहां से नीचे हरे रंग की विविध छटाओं से सजा वृक्ष-लताओं का सागर-सा फैला हुआ था। उस सागर में दीप-स्तंभ की तरह ऊपर निकला हुए एक कलश दीख रहा था। "वह क्या है ?" नंदा ने पूछा। देवदत्त ने बताया कि वह व्याघ्रेश्वर देव का मंदिर है। शेरों का उपद्रव न हो, इसलिए आसपास के गांव के लोग यहां आकर इस देव की मनौती मनाते हैं।

घूमते-घूमते देवदत्त पश्चिम तरफ की पहाड़ की नुकीली चोटी की ओर आया जो 'धारकडा' के नाम से मशहूर थी। सूर्यास्त होने में अभी

काफी समय था, परंतु हवा ठंडी होने के कारण धूप बिलकुल ही महसूस नहीं हो रही थी। धारकडा उस गढ़ का सबसे ऊँचा कगार था। वह लंबा-चौड़ा, काला-स्याह कगार हाथी के दांतों की तरह पर्वत से बाहर निकला हुआ-सा दीख रहा था। उस कगार पर खड़ी होकर नंदा दोनों तरफ देखने लगी। किसी निद्रित राक्षस की तरह मुंह बाये पड़े हुए सामने के उस गहरे भयानक दर्रे को देखकर उसका बदन सिहर उठा। देवदत्त के पिता के इसी दर्रे में कूदकर आत्म-हत्या करने की कथा उसे याद हो आई। उसने देवदत्त की ओर देखा। उसके चेहरे पर किसी भी प्रकार की हलचल नहीं दीख पड़ी। सामने फैले हुए प्राकृतिक सौन्दर्य के सागर की भीषणता से वह बिलकुल अपरिचित थी।

दोनों वापस लौटे और एक शिला पर बैठ गए। कुछ क्षण के लिए दोनों ही चुप थे—अपने-अपने अंतरंग में डूबे हुए। आधी रात के शांत वातावरण को भंग करनेवाले पक्षी के चीत्कार की तरह देवदत्त ने एकदम उससे प्रश्न किया, "क्या आप मुझसे नाराज हैं?" नंदा ने नकारसूचक गर्दन हिलाई। देवदत्त हंस पड़ा, सूई से गुब्बारा फोड़कर खुश होनेवाले बालक की तरह! फिर वह बोला, "वसू ने आपसे जो कुछ कहा, वह सब सच है। मैं मां का खून करने दौड़ पड़ा था, यह सच है। शराब का प्याला मेरा जिगरी दोस्त है, यह भी सच है। अभी कुछ दिनों पहले तक तो कम-से-कम वह वैसा ही था! पर वसू ने क्या कभी मुझसे यह पूछा कि यों पागल की तरह मैं बर्ताव क्यों कर रहा हूं? सुख-दुख की भागीदार के नाते वह मेरे जीवन में आई, पर उसे तो दुनिया के बाजार में मोल बिकनेवाले सारे सुखों की चाह थी! पर जिसके कारण वे उसे प्राप्त हुए हों, उसकी...। देवदत्त तो एक बहुत ही गहरे गर्त में गाड़ दिया गया था। उसे उस गर्त से ऊपर निकालने के लिए वह सिर्फ थोड़ा झुक जाती, अपना हाथ जरा आगे बढ़ा देती, कम-से-कम उस नरक में उसके चार आंसू उस पर गिर पड़ते, तो..." एक लंबी सांस लेकर वह आगे बोला, "मैंने किसीसे जन्म नहीं मांगा था, पर वह मुझे मिल गया। मैं व्यसनी नहीं होना चाहता था, पर मैं एक बार बहा तो बहता ही चला गया! वसू के साथ सुख की गृहस्थी चलाना चाहता था मैं।

पर..." चारों ओर दूर तक फैले हुए निर्विकार आकाश की ओर एक-टक देखता हुआ वह बोला, "यदि ऐसा हुआ होता, तो! ये 'यदि' और 'तो' भाग्य-रथ के दो पहिए हैं। मुझ जैसे मनुष्य उन पहियों से बंधे होते हैं। धूल में और गढ़ों में से घिसटते हुए जाना ही हमारे भाग्य में लिखा होता है।"

वह एकदम रुक गया, पुरवा बारिश की तरह। वह बराबर बोलता रहे और उसकी सारी कहानी सुन लेने के बाद फिर वह बोले, इस विचार से नंदा चुप रही। जिस तरह पृष्ठभाग पर आया हुआ तिमिंगल पुन: समुद्र में गोता लगा ले उसी तरह वह फिर किसी पुरानी याद म डूब गया---मानो नंदा, वसू, घारकडा, चंदनगढ़—यह सब एक स्वप्न हो...और उस स्वप्न से वह जागना चाह रहा हो।

यह देखकर कि वह कुछ भी नहीं बोल रहा है, नंदा ने आत्मीयता से भरे स्वर में प्रश्न किया, आप जैसे पुरुष ने शराब का व्यसन अपने आपको कैसे लग जाने दिया ?

देवदत्त के चेहरे पर मुरझानेवाले फूल की तरह उदास मुस्कान उदित हुई और अस्त हो गई। वह ठंडेपन से बोला, "वसू ने यदि मुझसे यह प्रश्न पूछा होता तो ?—" जोर-से हंसकर वह बोला, "फिर वही 'यदि' और 'तो'। यह सिद्ध करने के परे कि मनुष्य कितना लालची प्राणी है, इन दो शब्दों का दूसरा कोई उपयोग नहीं। खैर, छोड़िए। शराब की लत मुझे कैसे लगी, यह मैं आपसे यदि कहूं तो मेरी बात पर आप विश्वास नहीं करेंगी। शराब का पहला प्याला मेरे हाथ में किसने दिया होगा ? आप विदुषी हैं। गडकरी[1] का 'एकच प्याला' नाटक पढ़ा है न आपने ?"

"किसी व्यसनी मित्र ने ?"

देवदत्त विकट हास्य करता हुआ बोला, "गलत, बिलकुल गलत। अरे, प्रत्यक्ष जन्म देनेवाली मां ने।"

"मां ने ?" ऊंचे कगार से नीचे धकेल दिए जानेवाले मनुष्य की

---

१. मराठी भाषा के सुप्रसिद्ध नाटककार स्व० रामगणेश गडकरी।

तरह नंदा के मुंह से शब्द निकल पड़े—"सगी मां ने ?" अनजाने उसके मुंह से फिर शब्द निकले।

स्वीकृति-सूचक गर्दन हिलाता हुआ देवदत्त बोला, "हां-हां, सगी मां ने, और जिसके हाथ में शराब का वह प्याला दिया, वह बालक सिर्फ दस वर्ष का था।"

जिस तरह हरिनी घायल हुए अपने छौने की तरफ ही देखती है, वैसे ही नंदा देवदत्त की ओर देखती रही। फिर तुरंत उसने अपना मुंह ढांक लिया। उसे लगा, जैसे किसी ने उसे बोरे में भरकर और उसका मुंह सीकर समुद्र में छोड़ दिया है और वह बोरा धीरे-धीरे नीचे जा रहा है। सत्य का यह दर्शन कितना अमंगल और कितना भयप्रद था ! अनजाने उसके कंठ से एक सिसकी निकल पड़ी।

: ४० :

वह जैसी बैठी थी वैसी ही बैठी रह गई। गर्दन उठाकर देवदत्त की ओर देखने का साहस किसी भी तरह उससे नहीं हो रहा था। जैसे उसीसे वह घोर अपराध हुआ था। वह लगातार मनाये जा रही थी कि देवदत्त के मुंह से उसने जो सुना था, वह भयानक स्वप्न सिद्ध हो जाय तो कितना अच्छा हो। पर वह स्वप्न नहीं है, यह हर क्षण उसे महसूस हो रहा था। घारकड़े की तरफ से आनेवाली हवा अब अधिक शीतल लगने लगी थी। धूप निस्तेज-सी प्रतीत हो रही थी, मानो नंदा के दुखी मन का, प्रकृति के दर्पण में पड़ा हुआ, वह प्रतिबिम्ब हो।

अपनी ही कोख से पैदा हुए दस वर्ष के बालक को उसकी सगी मां शराब का व्यसन लगा देती है। क्या यह संभव है ? छि: ! नंदा को अपनी मां की याद हो आई। बचपन में मां ने क्रोध के आवेश में उसके शरीर को जरा-सा हाथ ही लगाया था, फिर सारे दिन वह बड़-बड़ाती रही कि "मुझ मरी का गुस्सा बड़ा खराब है।" शेखर की मृत्यु के बाद से वह जिंदा पागल जैसा ही बर्ताव करने लगी थी, पर मां को तो एक ही चिंता सता रही थी—नंदा पहले-जैसी कब हंसने-

खेलने लगेगी ? मां का मन अमृत में नहाया हुआ होता है, पर देवदत्त का यह अनुभव कहीं झूठी कहानी गढ़कर अपने दुराचरण का दोष अपनी मां पर तो नहीं लाद रहा है ?

आंधी-बवंडर में फंसा हुआ सूखा पत्ता गोल-गोल घूमता हुआ इधर-उधर उड़ता चला आता है। नंदा के मन की हालत भी ऐसी ही हो गई। यह देखकर कि वह कुछ भी नहीं बोल रही है, देवदत्त ने आवेश में आकर पूछा, "क्या मेरी यह रामकहानी आपको सच नहीं लग रही है ?"

नंदा फिर भी चुप ही रही। देवदत्त एक झटके से उठा और बोला, "इस दुनिया में कम-से-कम एक मनुष्य का विश्वास तो मैं चाहता ही हूं। इसके सिवा जिंदा रहना मेरे लिए...बोलिए, यों चुप न रहिए।" उसकी आवाज कुछ अधिक ही भर्रायी हुई होती जा रही है, ऐसा नंदा के कानों को लगा, पर नंदा के मुंह से बोल निकल ही नहीं पा रहा था।

सामने खड़े हुए देवद के पैर उसे दीख नहीं रहे थे। तभी भयभीत दृष्टि से उसने ऊपर देखा। वह कगार के छोर की तरफ चला जा रहा था—धीमे पर दृढ़ कदमों से—सिंहासन पर आरूढ़ होने जा रहे किसी राजकुमार की तरह। सारा बल समेटकर वह उसकी ओर दौड़ पड़ी और उसका हाथ मजबूती से पकड़कर बोली, "यह क्या कर रहे हैं आप ?"

उसने शांतिपूर्वक उत्तर दिया, तुम्हें यह सिद्ध करके दिखा देना चाहता हूं कि सत्य भीरु नहीं होता।" ऐसी व्यग्र और व्याकुल मन-स्थिति में भी उसने प्रथम बार उसे 'तुम्हें' शब्द से संबोधित किया, यह नंदा के ध्यान में आए बिना न रहा। अंधेरे में पैर में गड़े कांटे के कारण विह्वल होने पर भी आकाश में चमकनेवाले तारों से जिस तरह सांत्वना मिल जाती है, उसी तरह देवदत्त के उस आत्मीयता-बोधक शब्द से नंदा के मन पर प्रभाव पड़ा। देवदत्त का हाथ मजबूती से पकड़कर वह बोली, "क्या करने जा रहे हैं आप ?"

उसके हाथ को झिड़कने की कोशिश करता हुआ वह बोला, "सीधा

नीचे कूद पड़ूंगा। फिर तो हो जायगा विश्वास तुम्हें मेरी बात पर न ?"

दोनों हाथों से उसके हाथ को कसकर पकड़ती हुई नंदा कड़ाई से बोली, "इस तरह की ऊंटपटांग बातें मत कीजिए।" उसने उसकी ओर देखा। उसका चेहरा उग्र बन गया था नजर कहीं शून्य में टिकी हुई थी।

पागल की तरह वह चिल्लाया, "छोड़ दो चुपचाप मेरा हाथ, वरना मेरे साथ इस गहरे दर्रे में तुम्हारी भी हड्डियों का पता नहीं चलेगा।" बोलते-बोलते वह नंदा की ओर घूरकर देखने लगा। उसकी आंखों से चिनगारियां छूट रही थीं।

नंदा का हाथ कांपने लगा। हथेलियां पसीने से तर हो गईं, पर उसने होठों को कसकर दाब लिया और राख में दबी हुई चिनगारी जैसे जल उठती है, उसी तरह नंदा के चेहरे पर दृढ़ता दीखने लगी। उसके हाथों को जोर का झटका देता हुआ देवदत्त बोला, "क्या मुझे नहीं छोड़ोगी तुम ?"

वह दृढ़ स्वर में बोली, "नहीं, बिलकुल नहीं।" फिर थूक निगलकर मृदु स्वर में वह बोली, "मैं भी चलूंगी आपके साथ।"

"कहां ?"

"उसी दर्रे में। चाहोगे तो स्वर्ग में भी।"

"स्वर्ग में देवदत्त को स्थान नहीं। उसके साथ जो आना चाहता है, उसे नरक में ही..."

नंदा ने उत्तर दिया, "वहां भी मैं चलूंगी। पर आपका हाथ नहीं छोडूंगी।"

: ४१ :

देवदत्त नीचे देखने लगा। नंदा ने उसकी इस तरह नीचे झुकी हुई दृष्टि कभी नहीं देखी थी। बंदूक के निशाने की तरह वह दूसरे पर हमेशा तनी हुई-सी रहा करती थी।

मंदा को लगा कि उसके हाथ में रखा देवदत्त का हाथ थर-थर कांप रहा है। उसके निरंकुश मन की जहरीली लहरों पर नंदा ने कम-से-कम इस क्षण के लिए तो विजय प्राप्त कर ली है, यह उसके ध्यान में आया। उसका हाथ पकड़े हुए ही वह वापस मुड़ी और उसके पीछे-पीछे देवदत्त भी मुड़ा। इसी समय उसने देखा कि कोई धारकड़े की तरफ जल्दी-जल्दी चला आ रहा है। उसने झट-से देवदत्त का हाथ छोड़ दिया। वे थोड़ी ही दूर आगे गये थे कि गंगाराम उनके पास आ पहुंचा। अभिवादन करके उसने एक पत्र देवदत्त के हाथ में दिया। देवदत्त ने वह पढ़ा और तुरन्त ही टुकड़े-टुकड़े करके हवा में उड़ा दिया। दूर उड़ते जा रहे उन टुकड़ों की ओर देखता हुआ वह बोला, "उनसे जाकर कह दे कि मुझे अभी फुरसत नहीं!"

गंगाराम ने अभिवादन किया और चला गया। उसके जाते ही नंदा बोली, "कोई जल्दी का काम हो तो..."

पास की शिला पर बैठता हुआ देवदत्त बोला, "मेरे दोस्त आये हैं गढ़ पर। लेकिन मेरे कोश के शब्दों के अर्थ तो अब बदलने लगे हैं, इसके लिए मैं क्या करूं? दोस्त याने दुश्मन! गुलछर्रे उड़ाने को आये हैं ये लोग! मुझे अफसोस होता है सिर्फ एक बात का। ये सारे दो-मुंहे हैं। उनमें फन पर १० की संख्या की आकृतिवाला नाग एक भी नहीं।" किंचित रुककर वह विषण्ण स्वर में बोला, "उनके ही गलों में बाहें डालकर परसों तक मैं जी रहा था।"

इस अप्रिय विषय को अब बदलना चाहिए, नंदा ने सोचा। वह, सहज ही जैसे कुछ सूझ पड़ा हो, ऐसा भाव दिखाती हुई बोली, "देवदत्तजी, आपने अश्वत्थामा की जो कहानी लिखी है वह मेरे दिमाग में लगातार चक्कर काट रही है! इस दुनिया में मनुष्य बिलकुल अकेला होता है—यह सच है क्या? उसे अत्यंत प्यारा ऐसा कोई मनुष्य क्या कभी मिलता ही नहीं? मां, बाप, बहन, भाई, पत्नी..."

देवदत्त ने उत्तर दिया, 'पिता के प्यार की एक भी याद मेरे पास नहीं है। अस्पष्ट-सी जो बातें याद आती हैं वे उनके साथ रहनेवाले

कृष्ण और भद्दे साधु और बैरागियों की ! मुझे जो मित्र मिले, वे...गुड़ में चिपके हुए चींटों की तरह। हां, उनमें एक...केवल एक अपवाद था। बापू का छोटा लड़का मोहन। ऐसा बढ़िया सितार बजाता था कि पूछो मत ! वह गया और मेरा सितार मूक हो गया। उसके प्रेम की याद आती है, तो आज भी कलेजा मुंह को आ जाता है। मेरे सारे दुर्गुणों को वह जानता था, फिर भी उसने मुझसे प्रेम किया। नशे में चूर देवदत्त मोटर के नीचे आ गया था। उसे बचाने वह गया..." बोलते-बोलते देवदत्त का कंठ भर आया। उसने अपनी निगाह दूसरी तरफ फेर ली। आंखों में आया हुआ पानी कहीं नंदा देख न ले, ऐसी उसकी इच्छा होगी। वह नंदा से छिपा न रहा।

नंदा मन में सोच रही थी कि अब बिलासपुर लौट चलने की बात करनी चाहिए। इसी समय 'सरकार', 'भाईसाहब', 'देवदत्त', इस तरह की पुकारें पीछे से कानों में पड़ने लगीं। दोनों ही जल्दी-जल्दी उठे। मुड़कर देखता हुआ देवदत्त बोला, "ये मेरे दोस्त आ रहे हैं—वकील, डाक्टर, कान्ट्रैक्टर, देशभक्त ! इन दोस्तों से अब कहे देता हूं कि मुझे यह नया मित्र मिल गया है। इसलिए अब मैं आप लोगों का मुंह नहीं देखना चाहता ! आप सब चले जाइए !"

देवदत्त के इस कथन से नंदा मन में डर गई। समाज की काक-दृष्टि का ध्यान रखनेवाली उसके भीतर की स्त्री जाग उठी। उससे दूर होती हुई वह बोली, "मेरी कसम है आपको, ऐसी कोई बात इनसे न कहियेगा इस समय। कुछ देर के लिए आप इनके साथ चले जाइए। यदि उनके साथ आप इस वक्त न गये तो वे लोग कल मेरे बारे में मनमानी अफवाहें फैलायंगे और मेरा बिलासपुर में रहना मुश्किल कर देंगे !"

: ४२ :

देवदत्त और उसके दोस्तों के आंख से ओझल होने तक नंदा उनकी ओर देखती हुई खड़ी रही। फिर वह बड़े संतोष से उसी शिला पर बैठ गई। आसपास उगी हुई घास के कोमल हरे पत्तों को सहलाने लगी।

जिस समय उसने देवदत्त के साथ चंदनगढ़ जाने का तय किया उसी समय से उसके मन पर एक बड़ा अनजाना बोझ-सा आ पड़ा था। उसे बराबर यह लग रहा था कि वह उससे न जाने कैसे पेश आयगा? उसके प्रश्नों का ठीक से, सरलता से, जवाब भी देगा या नहीं! पर उसके मन का वह बोझ न जाने कहां उड़ गया! परीक्षा का आखिरी पर्चा देकर परीक्षा हाल से लौटनेवाले विद्यार्थी की तरह उसे हलका-हलका-सा लगने लगा।

देवदत्त से उसे कितनी ही बातें मालूम हो गईं। उसके अजीब बर्ताव का थोड़ा-बहुत स्पष्टीकरण भी हो गया। उन सब कड़ियों को जोड़कर उनकी श्रृंखला बनाने में वह खो गई। जब सिर्फ दस वर्ष की ही उम्र में उसकी सगी मां उसे शराब की लत लगा देती है, तब दुनिया पर से उसका विश्वास अगर उड़ जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या? जिसे पिता का प्यार न मिला हो, मां ने जिसे एक भयानक व्यसन का गुलाम बना दिया हो, उस मनुष्य का मन प्रेम की आर्द्रता के लिए—निरपेक्ष प्रेम का साक्षात्कार करने के लिए कितना लालायित होता होगा! समुद्र के ज्वारभाटे की तरह सबकुछ अपने उदर में समा लेनेवाला प्रेम, वसू उसे न दे सकी! चिलचिलाती धूप के कारण प्यासी जमीन किसी लालची की तरह आस्मान की ओर देखे और ऊपर भरे हुए बादल सिर्फ चार बूंद डाल दें, कुछ उसी तरह की देवदत्त के मन की स्थिति हो गई है। अब नंदा यह जान गई। वसू उसकी जिन्दगी में आई, किंतु एक सुन्दर यंत्रसंचालित गुड़िया बनकर! पर देवदत्त को गुड़िया नहीं चाहिए थी। उसके हृदय के कांटों को कोमल हाथ से दूर करनेवाली, अपने प्रेम के स्पर्श से व्यसन के चंगुल से उसे मुक्त कर देनेवाली, "तुम कैसे भी रहो, फिर भी मेरे हो," इन शब्दों से उसके मृतप्राय मन को संजीवनी देनेवाली सखी वह चाहता था। मां के जिस प्यार से वह वंचित हो गया था, वह प्यार वसू से चाहता था। पर वह तो स्वयं ही संगमरमर की पुतली बनकर बैठी हुई थी। ऐसी वसू उसे वह प्रेम देने में असमर्थ सिद्ध हुई।

और नंदा देवदत्त से वसू के साथ के उसके बर्ताव के बारे में उससे जवाब-तलब करने आई थी—मन में लगातार वसू की वकालत की

योजना बनाती हुई ! परन्तु देवदत्त के मुंह से जो विलक्षण रहस्य बाहर आया उसके कारण उसका वह सब बिलकुल बदल गया। अब तो सहानुभूति की अधिक आवश्यकता यदि किसी को है तो वह देवदत्त को है, नंदा के ध्यान में यह आ गया। पहले दिन अजीब-सी लगनेवाली उसकी बातें, अंधेरे में बिजली की चमक जैसे लगनेवाले उसके लेखों के वे अंश, मस्तक के घाव से बेचैन होकर भटकता रहनेवाला वह एकाकी अश्वत्थामा, उसके बैठकखाने में रखा वह सितार, वह बंदूक, हैमिंग्वे और विवेकानंद के चित्र, चंचल-से हृदय की बातें कहते-कहते उसका सहज यह कहना कि 'तेरे सिवा मेरा सिर्फ एक ही मित्र है और वह है मृत्यु—इन सब बातों का मेल नंदा को लगने लगा।

पश्चिम दिशा में छोटे-बड़े बादल इकट्ठे होने लगे। दिन-भर चलकर थका हुआ सूरज मंद चाल से क्षितिज का उतार उतर रहा था। कोई चित्रकार जिस तरह एक बड़े भारी फलक पर तूलिका से भिन्न-भिन्न रंगों के हाथ मारना शुरू कर दे और उस समय जो दृश्य दीखता है, उसी तरह पश्चिम दिशा दीखने लगी थी। बादलों पर केसरिया, गुलाबी और सुनहरी रंग चढ़ने लगे।

सामने के उन सुन्दर रंगों को देखते-देखते उसे कुछ समय पहले का देवदत्त का स्पर्श याद हो आया। उस क्षण उसका मन भी इसी तरह रंग गया था, ऐसा नंदा को लगा। वह चित्र उसकी आंखों के सामने मूर्त्त हो उठा। देवदत्त जब कगार के सिरे पर गया, उस समय उसका मन धक-से रह गया। वह एकदम दौड़कर उसे पकड़ने गई। देवदत्त का हाथ उसने कसकर पकड़ लिया। यह सब सहज हो गया, क्षणार्ध में। पर दूसरे ही क्षण उसके मजबूत हाथों की गरमाहट उसे महसूस हुई। उसका वह स्पर्श कितना सुखद था ! किसी भी प्रकार का उन्माद नहीं था, उसमें। पर आत्मीयता ? वह किसी फव्वारे की तरह उमड़ रही थी। उस आत्मीयता के कारण ही अबतक उसे 'आप' कहकर सम्बोधित करनेवाले देवदत्त के मुंह से 'तुम' यह प्यार-भरा संबोधन आ गया। आगे वह जो बोलता रहा सब उसी भाव से, मानो वह नंदा को बचपन से पहचानता हो, वे दोनों साथ-साथ खेले हों, साथ-साथ शाला

में पड़े हों, कपड़े में लपेटकर मीठे, सुगन्धित अमरूदों को दांतों से काटकर उसके टुकड़े एक-दूसरे को दे रहे हों। उस अकेले स्पर्श से दोनों के बीच की परायेपन की दीवार एक क्षण में लड़खड़ा कर गिर पड़ी थी। देवदत्त एकाकी नहीं रहा था।

सामने के सारे बादल होली खेलने लगे। कगार के उस फैले हुए वृक्ष-वेलियों के हरे समुद्र पर काली लहरें उठने लगीं। रात जल्दी-जल्दी धरती पर उतर रही है, यह महसूस करते ही नंदा चौंक उठी। जिस तरह कोई लड़की घर में किसी को न बताकर सहेली के साथ नाटक देखने चली जाती है और वहां रंगमंच के अद्‌भुत-रम्य जगत में रमते समय मर्यादाओं को भूल जाती है, परन्तु नाटक समाप्त होने पर घर आते समय उस लड़की के पैर थरथर कांपने लगते हैं, नंदा की भी उसी प्रकार की स्थिति हो गई। उसका सारा उत्साह खत्म हो गया। प्रकृति की तरह उसके मन पर भी काली छाया फैलने लगी।

वसू को बिना बताये वह आ गई है। अबतक तो उसे बिलासपुर लौट आना चाहिए था। देवदत्त का अभी तक पता नहीं। यह अब स्पष्ट है कि उसे लौटने में देरी होगी ही। "कहां गई थी ?" यह प्रश्न वसू उससे चिड़चिड़े स्वर में पूछेगी। देवदत्त से जो सुना है, उसे ध्यान में रखकर यदि वह उसे कुछ बताने लगेगी तो वह आपे से बाहर होकर सारा बंगला सिर पर उठा लेगी और उस पर मनमाने आरोप लगायगी।

बाहर के अंधेरे की अपेक्षा इस बात का उसे अधिक डर लगने लगा। छि: ! देवदत्त की राह देखते यहां बैठे रहने में कोई अर्थ नहीं। उसने आंखें भरकर उस भीषण दर्रे पर फैली और अस्ताचल की ओर जा रही संध्या के सौन्दर्य से बिदा ली और उठी और बंगले पर पहुंचने के लिए जल्दी-जल्दी चलने लगी। रास्ते में ही गंगाराम उसे मिल गया। यह सोचकर कि लौट चलने के लिए देवदत्त ने उसे बुलाया होगा उसका मन जरा शांत हुआ।

"क्यों रे, अब लौट चलना है न हमें ?"

गंगाराम ने अदब से जवाब दिया, "अभी नहीं, बाई साहब !"

उसने आश्चर्य से पूछा, "क्या मतलब ?"

"सरकार अभी तक लौटकर नहीं आये ।"

"कहां गए हैं वह ?"

"व्याघ्रेश्वर के मंदिर की तरफ। वकील साहब, डाक्टर साहब—सभी गए हैं ।"

रुका हुआ दर्द जैसे फिर शुरू हो गया हो कुछ उसी तरह नंदा की हालत हो गई। कुछ न कहकर उसने गंगाराम की ओर देखा। उसे ऐसा लगा जैसे वह गालों में हँस रहा है और उसके इस आभास से वह और भी अधिक बेचैन हो गई।

: ४३ :

नंदा ने कलाई की घड़ी की ओर देखा। नौ बज गए होंगे, उसका ऐसा ख्याल था। पर घड़ी में साढ़े सात ही हुए थे। बंगले पर आने के बाद देवदत्त की राह देखती हुई कितनी ही देर वह सीढ़ियों पर खड़ी रही। अंधेरा कभी का चारों ओर छा चुका था, पर देवदत्त के लौटने के कोई आसार ही नजर नहीं आ रहे थे। वह उस पर नाराज़ होने लगी। उसने वचन दिया था कि वह शाम तक उसे बिलासपुर पहुंचा देगा। अपने वचन की उसे याद भी न रहे, इसका उसे बड़ा दुःख हुआ।

वह उद्वेग से भीतर गई। गंगाराम ने देवदत्त का कमरा उसके लिए खोल दिया। वह भीतर जाकर बैठ गई। रंगमंच पर कोई भयंकर नाटक हो रहा हो, और किसी दर्शक को क्षणार्ध में उस नाटक में भाग लेने की नौबत आ जाय तो उस समय उसे जैसा लगता है, उसी तरह नंदा को लगने लगा। तीन-चार महीने पहले उसे चंदनगढ़ का नाम भी नहीं मालूम था। देवदत्त नाम के किसी अभागे तरुण के अस्तित्व का भी उसे पता न था और आज वह चंदनगढ़ के बंगले में देवदत्त की अधीरता से बाट जोह रही थी ! बीच में ही उसके मन में आया कि गंगाराम से कहे कि वह पहले उसे बिलासपुर पहुंचा दे और बाद में अपने मालिक को लेने फिर यहां आ जाय, पर अब इसका क्या उपयोग था

यह देखकर कि नंदा वहां नहीं है, वसू ने तो कोहराम मचा दिया होगा। उसकी खोज में किसी को बापू के घर भेजा होगा। शायद देवदत्त के नौकरों-चाकरों से भी पूछताछ कराई होगी और उसे यह भी पता चल गया होगा कि वह देवदत्त के साथ चन्दनगढ़ गई है। इस मामूली बात पर उसने कई तर्क-कुतर्क रचे होंगे। कई झूठे आरोप लगा रखे होंगे। इसलिए अब गई तो क्या, और देवदत्त के आने के बाद गई तो क्या—दोनों बराबर हैं। पर देवदत्त और उसके दोस्त व्याघ्रेश्वर के मंदिर में इतनी देर आखिर कर क्या रहे हैं?

इस प्रश्न का उत्तर भूत की तरह उसे डराने लगा। उसके मन में अनेक बुरे विचार आने लगे। मिनट का कांटा घंटे की तरह आराम से चल रहा है, ऐसा उसे लगने लगा।

उसने कमरे में चारों तरफ निगाह डाली। कमरे की सभी चीजें बड़ी सुन्दर और साफ-सुथरी थीं। पलंग के निकट सूली पर चढ़े हुए प्रभु ईसा मसीह का पूरा चित्र था। चित्र भव्य और सुन्दर था। पर नंदा से उसकी तरफ अधिक देर देखा नहीं जा रहा था। उसने दूसरी ओर निगाह डाली। उस कोने में एक बन्दूक शान से खड़ी थी। बन्दूक की ओर निगाह जाते ही लगातार मृत्यु का विचार करनेवाला देवदत्त उसकी आंखों के सामने साकार हो उठा। कुछ समय पहले कितनी निर्भयता से वह कगार के छोर तक चला गया था।

इस अप्रिय विषय को भुला देने के उद्देश्य से वह पलंग पर पड़ी पुस्तकों को देखने लगी। उनमें से एक पुस्तक का नाम था 'ज्वाला और फूल।' नंदा उसे खोलकर देखना चाहती थी, पर इसी समय उस पुस्तक के नीचे दबे कुछ कागजों पर उसकी निगाह पड़ी। अपने मन के विचारों को मुखर करने के लिए देवदत्त लिखता रहता है, यह उसे अब अच्छी तरह मालूम हो चुका था। उन कागजों को देखकर उसका कुतूहल जाग उठा। उन कागजों को उठाकर वह पढ़ने लगी :

"बलसाड में सुबह का वह पूर्णिमा का चन्द्रमा। सारी अमराई रेशमी शाल ओढ़कर सोयी हुई थी—मासूम नन्हें बच्चे की तरह—इच्छा-रहित साधु की तरह! दुनिया जब बनी तो क्या आरम्भ में वह इसी

प्रकार की थी? शांत, सुन्दर और निष्पाप! तो उस शांति को भंग किसने किया? दुनिया को बदसूरत किसने बनाया? उसे पाप के गर्त में किसने धकेला? मनुष्य ने?...पर इस मनुष्य ने ही महाभारत जैसे ग्रंथ लिखे हैं। वेरूल की गुफाओं की तरह अद्भुत-रम्य स्वप्नों को साकार किया है। कैलास गुफा के ललाट पर वह शुक्लपक्ष का चन्द्रमा—मानो साक्षात भगवान शंकर ही उस गुफा के रूप में समाधि लगाए बैठे हुए थे। जबतक पढ़ने को महाभारत और देखने को कैलास गुफा है, तबतक जीने लायक कुछ-न-कुछ निश्चित ही है।

"···ताजमहल के सामने मैं खड़ा था। काफी पढ़ा था उसके बारे में। मन का पंछी पिंजड़े से उड़कर पेड़ पर बैठ गया। पर नीले आकाश में वह उड़ नहीं रहा था। मन में निराली ही कल्पनाओं ने तांडव शुरू कर दिया। मुमताज पर शाहजहां का अत्यंत प्रेम था। इसलिए उसने यह अमर कबर बनाई। पर शाहजहां की और भी बहुत-सी बेगमें थीं। उनमें से किसी पर भी क्या उसका प्रेम नहीं था? तो फिर अपने जनानखाने में उसने उन गूंगी गायों को आखिर बांधकर क्यों रखा? प्रेम क्या है? प्रेम का अर्थ क्या? यौवन और सौन्दर्य के संगम पर महसूस होनेवाला क्षणभंगुर दिव्य आभास—यही प्रेम है क्या? अथवा जिसकी पंखुड़ियों में संध्या के रंग हैं और जिसके अंतरंग में कस्तूरी की सुगंध है, ऐसा अमरफूल है प्रेम? पर इस प्रश्न का उत्तर शाहजहां से बातें किये बिना भला कैसे मिल सकेगा? पर यह संभव भी कैसे है? मनुष्य भूतकाल में अगर जा सकता होता तो मार्कोपोलो से भी अधिक साहसी प्रवासी वह हो जाता। जीवन का अर्थ मालूम करने के लिए बुद्ध, ईसा, व्यास, चार्वाक, शेक्सपियर, तुकाराम और इन जैसे अनेक महाशयों से जा मिलता और प्रश्नों की झड़ी लगाकर उन्हें परेशान कर डालता!

"हरिद्वार में गंगा के अजस्र प्रवाह में न जाने कितनी देर पैर डाले मैं बैठा रहा। प्रकृति ने मनुष्य को गंगा जैसा विशाल हृदय क्यों नहीं दिया? गंगा मैया की ओर देखते समय उसे ऐसा लगता जैसे सारी सृष्टि की करुणा—पाप, ताप और अन्याय को दूर कर देनेवाली करुणा—मूर्तिमान

हो आगे बह रही है ! हेमिंग्वे ने व्यर्थ ही बन्दूक से आत्म-हत्या की। उसने मां गंगा को नहीं देखा था। इस दुनिया से अलविदा होने के लिए इतना शोरगुल करने की क्या जरूरत ? जिस प्रकार मां की गोद में बच्चा सो जाता है, उसी प्रकार मृत्यु की गोद में मस्तक रखकर जो चिर-निद्रा लेना चाहता है, उसे गंगामाई के पास चले जाना चाहिए ! मुझे भी वह मोह हुआ ! मैं कुछ सीढ़ियां उतरा भी। पर...पर क्या मैं भीरु हूं ? शिकार करते समय जिसने मुझे देखा है, ऐसा मेरा शत्रु भी यह शक नहीं करेगा। फिर मैं क्यों लौट पड़ा ? क्या मुझमें मोह हुआ ? किसका ? अपने इस साढ़े तीन हाथ की देह का ? उपभोग से बेमजा हुए उन्हीं-उन्हीं क्षुद्र और क्षणिक शरीर के सुखों का ? छि ! मैं प्यासा हूं, पर एक और ही चीज का। निरपेक्ष प्रेम का। पर क्या ऐसा प्रेम इस दुनिया में है ? या कि वह केवल मृगजल ही है ?

"लक्ष्मण झूले के इस ओर कोढ़ी-भिखारियों की वह लम्बी कतार ! जब वह आंखों के सामने मूर्त होती है, तो आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं ! उन कोढ़ियों की थालियों में मैंने पैसे डाले। पर उनकी ओर एकटक कर देखने की हिम्मत मुझमें नहीं हुई। ऐसी व्यर्थ की करुणा किस काम की ? उनमें से कोई मुझसे गले मिलने के लिए दौड़ पड़ता तो...? तो मैं दूर भाग जाता। उसपर बिगड़ पड़ता। उसे डांटता, गालियां देता। उन कोढ़ियों के सामने से होकर मैं लक्ष्मण झूले की ओर गया, किसी गुनहगार की तरह ! परन्तु कलेजे के भीतर से कोई लगातार आक्रोश कर रहा था :

"देवदत्त, ईश्वर की दया से तू जमींदार का लड़का है। नीरोग शरीर तुझे मिला, वरना तू भी यहीं कहीं, इस कतार में ही, हाथ फैलाकर आने-जानेवालों से भीख मांगता बैठा होता !' दुनिया में कितने कोढ़ी हैं, कितने दीन-दुखी और दलित हैं ! उनसे मेरा क्या कोई भी नाता नहीं है ? उनके लिए मैंने क्या किया ? लगता है कि कुछ करूं। परन्तु दसवें वर्ष में मां द्वारा दिया गया वह शराब का प्याला...! पिताजी की मृत्यु के बीस वर्ष बाद बापू द्वारा दिया गया उनका वह भयंकर पत्र...! यह सारा-का-सारा मेरे मस्तिष्क की धज्जियां उड़ा

दे रहा है ! मेरे कलेजे को जमा दे रहा है। भूतकाल के ये भूत मेरी गर्दन पर सवार हैं ! उन्हें गाड़ देनेवाला तांत्रिक...

"मैं छमछम झूले के पास पहुंचा। नंदा की एकदम याद आई। एक ही बार मिली थी वह। पर एक बार ही चमकी बिजली को आषाढ़ की अमावस्या का अंधेरा किसी भी तरह भूल नहीं सकता ! मैं लौटकर आऊंगा उस समय क्या वह बिलासपुर में ही होगी ? वसू के मेरे जीवन में आने से पहले नंदा क्यों नहीं आई ? किससे पूछूं यह प्रश्न ? कौन देगा इसका उत्तर ? चन्द्रमा, कब्र, गंगा और कोढ़ी, इनका रिश्ता जो बता सकेगा, वही इस प्रश्न का उत्तर देगा !"

: ४४ :

"वसू से पहले नंदा मेरे जीवन में क्यों नहीं आई ?" कितना कठिन था देवदत्त का यह प्रश्न ! ऐसे प्रश्न के उत्तर परमेश्वर भी कहां जानता है ?

देवदत्त के पत्र के शब्दों की उसे याद आई, "मेरे भीतर के राक्षस का यदि आपको डर लगता हो तो...!" इस दुनिया में कोई देव नहीं, कोई राक्षस नहीं ! हरेक के हृदय में देव और दानव का युद्ध बेशक चलता है। देवदत्त को आत्म-हत्या करने की सनक उस समय आती है जब उसके भीतर का राक्षस प्रबल हो जाता है ! जब वह लिखता है, उस समय उसके भीतर का देव प्रखर होता है !

आत्महत्या की सनक ? सिर्फ देवदत्त पर ही क्यों हंसना चाहिए ? शेखर की मृत्यु के बाद उसका मन भी तो इसी तरह बेकाबू हो गया था ! पर उसे पीछे खींचनेवाले प्रेम के पाश थे। दादाजी का वात्सल्य, मां की ममता, मिलिंद का प्यार ! देवदत्त अभागा है—तूफान में फंसी हुई फटे पालवाली नौका की तरह !

: ४५ :

नंदा आगे का कागज़ पढ़ने लगी। आरम्भ में ही कविता की कुछ पंक्तियां उसे दीख पड़ीं :

"मज अधिक रहाया नको
तू आग्रह आता करू
कारण या जगतातला
मी केवल यात्रेकरू !"[1]

ये पंक्तियां किसकी हैं? देवदत्त को ये इतनी पसंद क्यों हैं? क्या इसलिए कि अपने प्राणों का भला-बुरा कर लेने के विचार उसके मन में सदा चक्कर काटते रहते हैं?

तो फिर अपने विचार को कार्य रूप में परिणत करने का साहस उसे क्यों नहीं होता? निपुण शिकारी के लिए तो आत्म-हत्या बाएं हाथ का खेल होता है! बंदूक का निशाना किसी जानवर पर न लगाकर स्वयं के सीने पर, माथे पर अथवा मुंह में लगा दिया कि...

नहीं! मनुष्य पेड़ की तरह है। वह यूं ही नहीं सूख जाता। वह नमी तलाशता रहता है। जीवन पर उसका सच्चा प्रेम होता है—फिर वह जीवन कितना ही भद्दा और भयंकर क्यों न हो! मरण के बाद अंधेरे में कोई तारा नहीं चमकता, यह वह मन-ही-मन जानता है, समझता है। देवदत्त के मन की जड़ें भी अभी तक प्रेम की नमी खोज रही हैं, यह सत्य है। वह आर्द्रता उसे मिल जाय तो?

: ४६ :

कविता के नीचे का मजमून नंदा पढ़ने लगी :

"मनुष्य का मन एक अजीब सरकस है। बंदरपन करके हँसानेवाला

---

१ मुझसे अधिक दिन रहने का आग्रह मत करो, क्योंकि मैं इस संसार में केवल एक यात्री हूं।

विदूषक, संतुलन संभालकर तार पर चलनेवाली लड़की, मौत के कुएं में वेग से मोटर साईकिल चलानेवाला युवक और शेर तथा चीते जैसे हिंसक जानवर—इन सबका वह सम्मेलन है। शेर और चीते के बिना सरकस नहीं—उद्दाम वासनाओं के बिना मनुष्य नहीं। कभी पुचकार कर, कभी पेट-भर खिलाकर और कभी हंटर के बल पर सरकसवाला शेरों और चीतों पर हुक्म चलाता है। पर ये प्राणी यद्यपि ऐसे लगते हैं कि वे हिल गए हैं, पर उनके भीतर का खूंखार जानवर कब जाग उठेगा, इसका कोई ठिकाना नहीं!

"छ: महीने गुजर गए। मैं अपने भीतर के शेर और चीतों से लड़ रहा हूं। इसके लिए बिलासपुर बार-बार छोड़ा। दोस्तों से दोस्ती छोड़ दी। हरिद्वार गया। दीन और दुखी दुनिया को देखा। पर...मनुष्य स्वयं अपना ही कितना बड़ा शत्रु है!

"मैं यदि बापू का लड़का होता, तो इन शेर और सिंहों को सहज पालतू बना सकता क्या? मोहन को देवदत्त का और देवदत्त को मोहन का जन्म मिला होता, तो क्या होता? मैं मोटर के नीचे दबकर मर जाता, या मोहन के प्रिय स्वप्न की तरह विवेकानंद जैसा संन्यासी हो जाता? कल्पना का नशा शराब से भी जल्द चढ़ता है। 'यदि' और 'तो' शब्दों की सुन्दर लाशें। इन शब्दों को कोश से निकाल क्यों नहीं दिया जाता?"

: ४७ :

देवदत्त की ऊपर लिखी बातों में बापू का जिक्र आया, इसलिए नंदा का कुतूहल चरम सीमा को पहुंच गया। वह जल्दी-जल्दी अगला पन्ना पढ़ने लगी:

"मेरा झगड़ा ईश्वर से नहीं। वह बेचारा कभी मुझे मिला ही नहीं। फिर हम लड़ेंगे भी कैसे?

"प्रकृति से भी मेरी कोई तक रार नहीं। सूरज और चांद से लड़कर क्या फायदा है? जिस समय वे उदित होते हैं उस समय ही वे उदित

होंगे और जिस समय अस्त होते हैं उस समय ही अस्त होंगे।

"मेरी लड़ाई है मनुष्यों से। पिता, मां, पत्नी से...। देवदत्त के अधःपतन को रोकने की उन्होंने क्या कोशिश की ?

"मेरा झगड़ा है बापू जैसे सज्जनों से। आत्महत्या करने से पहले पिताजी ने मेरे नाम जो पत्र लिखा था, बापू ने वह बीस वर्षों तक अपने पास बड़े जतन से रखने के बाद मुझे दिया--इस कान की उस कान तक को खबर न होने दी। पर उन्होंने क्या कभी यह भी सोचा कि उस पत्र में क्या होगा और देवदत्त पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा ? मेरे निरंकुश बर्ताव को रोकने का उन्होंने क्या कोई प्रयत्न किया ? बुजुर्ग होने के नाते मुझे कम-से-कम एक बार वह डांट तो सकते ही थे। कौन कह सकता है, वह एक क्षण ही मेरा सारा जीवन बदल देता। बिजली के एक बार चमक जाने से ही प्रवासी को पता लग जाता है कि मैं राह भूल गया हूं। मेरा भी शायद यही हो जाता।

"बापू सज्जन हैं, इसमें जरा भी संदेह नहीं। पर वह दुर्बल सज्जन हैं। दुर्बल सज्जन और समर्थ दुर्जन--इस प्रकार मनुष्य के दो ही वर्ग इस दुनिया में क्यों होने चाहिए ? सज्जन की साधुता और दुर्जन की सामर्थ्य—इनका संगम इस दुनिया में असंभव है क्या ?

"पर मैंने गलती की। बापू को दोष देने का मुझे क्या अधिकार है। उनका मोहन मेरे कारण प्राणों से हाथ धो बैठा। उस धक्के से उसकी मां ने हमेशा के लिए बिस्तर पकड़ लिया, पर उसकी कुशल पूछने भी मैं कभी नहीं गया। मैं क्या इसलिए नहीं गया कि दुःख का दर्शन मनुष्य को दुःसह होता है ? या इसलिए कि मोहन की मृत्यु की चुभन मन में लगी हुई थी, और इसलिए वहां जाने की हिम्मत मुझसे नहीं हुई ? या कि मैं अपनी ही मस्ती में डूबा हुआ था। दूसरों की आंखों की गंगा-यमुना की अपेक्षा स्वयं के हाथ के शराब के प्याले को मैं अधिक मूल्यवान मानता था। सारे दुखों को भुला देनेवाली मस्ती मैं हर क्षण खोज रहा था।

"बापू, तुम इतने सज्जन न हुए होते तो बड़ा अच्छा होता। बीस वर्ष पहले का पिता का पत्र लड़के को देते समय उसे चोरी-चोरी ही

पहले पढ़ लेने का मोह तुम्हें होना चाहिए था। यदि ऐसा हो जाता, तो देवदत्त के हाथ में वह जहर से भरी कुप्पी तुम न देते।"

: ४८ :

देवदत्त का लेख यहीं समाप्त हो गया था। जड़ मन से उन कागजों को पलंग पर रखने के लिए नंदा आगे बढ़ी, पर उन कागजों के नीचे आलपीन से लगा कुछ मोटा-मोटा और रखा है, यह उसके ध्यान में आया। उसने कागजों को पलटकर देखा। एक बड़ा-सा लिफाफा था वह। "मेरी मृत्यु के बीस वर्ष बाद यह चि० देवदत्त को देना"—लिफाफे पर के इन बीज अक्षरों को पढ़ते ही नंदा चौंक पड़ी। जमीन में गड़ा हुआ अशर्फियों का घड़ा मिल जाने से जिस तरह मन को एक आनन्द होता है, पर उस घड़े के चारों ओर कुंडली मारकर बैठे हुए सर्प के फुफकारों से दूसरा मन भयभीत हो जाता है, उसी तरह उसकी भी स्थिति हो गई।

कांपते हाथों उसने उस लिफाफे से पत्र बाहर निकाला। उस पत्र पर की बीस वर्ष पहले की तारीख पढ़ते ही उसे ऐसा आभास हुआ जैसे कालपुरुष आत्मकथा कहने के लिए उसके सामने खड़ा है। अधीरता से उस कथा को वह सुनने लगी :

"चि० देवदत्त को प्रेमपूर्वक आशीष।"

"मेरी मृत्यु के बीस साल बाद तुम्हें यह पत्र मिलेगा। आज तुम बहुत छोटे हो। सिर्फ नौ साल के। मनुष्य का यथार्थ स्वरूप बड़ा घिनौना होता है। उसे देखकर तुम्हें घृणा होगी। तुम्हारा बाल-मन डर जायगा। तुम जिंदगी से ऊब उठोगे। इसलिए यह पत्र तुम्हें उचित समय पर मिले, ऐसी व्यवस्था मैं कर रहा हूं।

"जिस समय तुम यह पत्र पढ़ोगे उस समय तुम तीस वर्ष के नवयुवक होओगे। दुनिया की क्षुद्रता और दुष्टता से तुम्हारा काफी परिचय हो गया होगा। मनुष्य का मन थोड़ा खुरचा गया कि उसके भीतर छिपा बैठा पशु बाहर निकल पड़ता है, यह अनुभव तुम्हें भी हुआ होगा।

इस कारण मैं जो लिख रहा हूं, उसे पढ़कर तुम्हें धक्का नहीं लगेगा।

"मेरी मृत्यु के बारे में अनेक बातें तुमने सुनी होंगी। परमार्थ के पीछे पागल होकर मैंने आत्मार्पण किया, ऐसी तुम्हारी धारणा हो गई होगी। सामने फैले हुए नीले-सांवले समुद्र को देखकर चैतन्य प्रभु को लगा जैसे वह घनश्याम कृष्ण ही है और उसे अपने आलिंगन में कसने के लिए वह आगे बढ़े। पर फिर लौटकर कभी नहीं आये! इसी तरह की कोई कहानी मेरे विषय में भी बिलासपुर में प्रचलित हो गई होगी।

"पर यह सब झूठ है, इसका इस पत्र को पढ़कर तुम्हें विश्वास हो जायगा।

"बचपन से ही मैं साधु-महात्माओं के पीछे भले ही पड़ गया होऊं, फिर भी आत्महत्या करके इस दुनिया से बिदा लेने का विचार मेरे मन में कभी स्वप्न में भी नहीं आया। गोद लिये जाने के कारण मैं बिलासपुर का जमींदार हुआ। थोड़ा धनी हो गया। फिर भी मेरी अपेक्षा मेरे लड़के का ऐश्वर्य और बढ़े और उसे मैं अपनी आंखों से देखूं यही मेरी इच्छा थी। पर मनुष्य की कौन-सी इच्छा इस दरिद्री दुनिया में पूरी हुई है? कुबेर की संपत्ति प्राप्त करने की कोशिश मैं कर रहा था। पर तुम्हारी मां ने...

"इज्जत से रहना बिलकुल असंभव हो जाने के कारण मैं आज आत्महत्या का रास्ता अपना रहा हूं।

"देवदत्त, दुनिया की नजरों में यह आत्महत्या होगी। पर सच पूछा जाय तो यह खून ही है। तुम्हारी मां द्वारा किया हुआ यह मेरा खून है! जहर पिलाकर अथवा गला दबाकर किया गया खून इससे लाख गुना अच्छा! पत्नी के अन्य अपराधों को पति माफ कर सकता है—परन्तु उसका व्यभिचार—खुल्लमखुल्ला व्यभिचार...

"तीर की जहरीली नोंक की तरह तुम्हारी मां का दुराचरण मेरे कलेजे में धंसकर बैठा है। मेरी आंखों में नींद कहां? मुझे अन्न मीठा नहीं लग रहा है। बिलासपुर के घर-घर में लोग तुम्हारी मां के दुराचरण के बारे में बातें कर रहे हैं, परन्तु तुम्हारी मां को इसकी परवा नहीं।

"अपनी वासना की तृप्ति के लिए उसने बलि भी किसकी ली ? मुझे कुबेर का धन प्राप्त करा देने के लिए मेरे यहां आकर रहनेवाले एक अलौकिक योगिराज की। उसने उन्हें तपोभ्रष्ट कर दिया। मेरे सारे सपने मिट्टी में मिल गये। उन दोनों को एकांत में देखने के बाद से मेरा मन लाक्षागृह की तरह जलने लगा है !

"आगे की सारी कड़वी कहानी तुमसे क्यों कहूं ? शत्रु को भी भगवान यह दुःख न दे !

"मेरी आखिरी इच्छा एक ही है। यह पत्र जब तुम्हें मिले और उस समय तुम्हारी मां यदि जीवित हो तो तुम जैसा उचित समझो उस तरह उसे सजा दो। पाप का प्रायश्चित्त कभी-न-कभी करना पड़ता है, यह कामवासना से बौराई हुई उस कुलटा को, बीस वर्ष के बाद ही क्यों न हो, अच्छी तरह मालूम हो जाने दो !

"मृत्यु के द्वार पर भी प्रेम मनुष्य को नहीं छोड़ता। इसलिए हित की दो बातें तुम्हें बताता हूं। पहली यह कि पृथ्वीतल पर पैसा ही परमेश्वर है, यह कभी मत भूलना। दूसरा यह कि किसी भी स्त्री पर कभी भी विश्वास मत करना।"

: ४६ :

"बाईसाहब !" दरवाजे से नौकर की पुकार आई। नंदा चौंक पड़ी। उसने हाथ में रखे हुए उन कागजों को पलंग पर रख दिया। वह कब खाना खायगी, यह पूछने वह आया था। देवदत्त का अभी तक कोई पता नहीं था। नौकर को क्या बताये, इस विचार में वह पड़ गई। इसी समय देवदत्त की आवाज उसे सुनाई पड़ी। बेईमान ! कुत्ते, इधर आओ, फिर दिखाता हूं एक-एक को !" नंदा जल्दी-जल्दी दरवाजे की तरह बढ़ रही थी कि देवदत्त दरवाजे में आकर खड़ा हो गया। उसकी सूरत देखकर नंदा का कलेजा धक्-से रह गया। उसके बाल बिखरे हुए थे। आंखों की स्निग्धता अस्त हो गई थी। इस भय से कि कहीं अपना संतुलन वह न खो दे, वह दरवाजे का सहारा खोज रहा था, शायद !

दोस्तों की महफिल में शराब पीकर आया है वह, यह बिलकुल स्पष्ट था।

: ५० :

नंदा पर निगाह पड़ते ही देवदत्त की नजर नीचे झुक गई। "माफ कर दो मुझे। तुमने मुझे...उन...उन सा... के साथ..." मुंह से एक अप्रस्तुत शब्द निकल पड़ा, यह महसूस करके, भय से जीभ चबाकर, वह स्तब्ध खड़ा रहा। बाहर की आवाजें सुनाई पड़ने लगीं—"सरकार! भाईसाहब! देवदत्त!" उसके दोस्त उसे वापस ले जाने के लिए आये होंगे, यह नंदा जान गई। अब क्या होगा, यह समझ नहीं पा रही थी। वह भौचक्की खड़ी रह गई।

बाहर की पुकारों की ओर कोई ध्यान न देकर देवदत्त भीतर आया। दरवाजे की ओर पीठ फेरकर खड़ा रहा। उसके दोस्त दरवाजे के पास आकर हल्ला मचाते हुए कहने लगे, "यह क्या सरकार! लड़ाई को यूं अधूरी छोड़कर..." अपने वाक्य को बीच ही में छोड़कर वह बोलनेवाला खिलखिलाकर हंसने लगा। दूसरे दोस्त आगे बढ़े। नंदा और देवदत्त की ओर बारी-बारी से देखते हुए उनमें से एक बोला, "चिड़िया तो खूब फंसाई है, सरकार ने!" और तुरंत ताली देने के लिए दोस्त के सामने उसने अपना हाथ बढ़ाया। देवदत्त बिजली की तरह कोने में गया और वहां रखी बंदूक उठाकर एकदम मुड़ा और बन्दूक की नली दोस्त के सीने से लगाकर बोला, "चलो, भागो यहां से सब! तीन बार फांसी पर चढ़ना पड़े तब भी हर्ज नहीं, पर तीनों को यहीं-का-यहीं मौत के घाट उतार दूंगा, यह मत भूलना! चलो, रास्ता नापो यहां से!"

देवदत्त के इन शब्दों को सुनते ही तीनों दोस्त एकदम पीछे हटे और दरवाजे से बाहर निकलकर गायब हो गये। उनके बाहर जाते ही देवदत्त ने दरवाजा धड़ाम से बन्द कर लिया।

यह सबकुछ चित्रपट के किसी दृश्य की तरह कुछ ही क्षणों में हो गया। क्या हो रहा है, इसे सोचने का भी नंदा को समय न मिला। वे

शराबी दोस्त फिर अपने मुंह न दिखावें, इसलिए देवदत्त ने दरवाजा बंद कर लिया सही, पर नौकर-चाकर इसका उलटा ही अर्थ लगायेंगे, यह नंदा को तुरंत महसूस हो गया। वह दरवाजा खोलने जा ही रही थी कि उसने देखा कि देवदत्त कोने में वापस रखी बंदूक की ओर एकटक देखता खड़ा है। घर के बिल में छिपकर बैठे हुए सर्प की तरह देवदत्त के मन में सदा चक्कर काटनेवाले आत्महत्या के विचार का नंदा को आभास हो आया। उसका मन कांप उठा और पैर जहां-के-तहां ठिठक गये!

हैमिग्वे की आत्महत्या का चित्र उसकी आंखों के सामने मूर्त्त हो उठा। किसी बड़े मेहमान का स्वागत करने के लिए जिस तरह मेजबान आगे बढ़ता है, उसी तरह वह मृत्यु के सामने गया था। अनजाने उसके मुंह से अस्फुट-सी पुकार निकल पड़ी—"देवदत्त!"

वह बोला नहीं। उसने उसकी ओर देखा भी नहीं। दोनों हाथों से अपना मुंह ढांककर वह उसी तरह वहां खड़ा रहा। नजदीक जाकर नंदा ने फिर पुकारा, "देवदत्त!" फिर भी वह नहीं बोला। पर उसका शरीर कांप उठा। अपनी सिसकी बाहर न फूट पड़े, इसके लिए वह प्राणपण से प्रयत्न कर रहा है, यह नंदा को अब अनुभव हुआ। उसके कन्धे पर अपना कांपता हुआ हाथ रखती हुई वह बोली, "यों पागल की तरह आप क्यों कर रहे हैं, देवदत्तजी!"

मुंह से हाथ हटाकर वह धीरे-धीरे नंदा की ओर मुड़ा। उसकी आंखें भर आईं। धीरे-धीरे वह पलंग की ओर गया और उसपर बैठकर नीचे देखता हुआ बोला, "इस दुनिया में कम-से-कम एक मनुष्य तो मुझपर विश्वास रखे, इसके लिए मैं जी-जान से कोशिश कर रहा था। तुमने वह विश्वास रखा। कोई भी शक मन में न लाकर तुम मेरे साथ अकेली यहां आईं। मैंने अपना घायल मन तुम्हारे सामने खोल दिया। तुमने कोमलता से उसपर फूंक लगाई। मुझे तुम्हें धोखा नहीं देना चाहिए था। पांच-छः महीने मैंने शराब की एक बूंद का भी स्पर्श नहीं किया था, पर आज इन दगाबाज दोस्तों के..." आवेग से अपना मुंह ढांककर किसी अपराधी बालक की तरह वह सिसकने लगा।

नंदा उसके पास गई। उसके दोनों हाथ उसने अपने हाथों में ले लिये और मृदु स्वर में बोली, "मेरी ओर तो देखिए जरा।" गर्दन न उठाकर वह बोला, "फिर अकेला रह गया मैं। नंदा, मैंने तुम्हें धोखा दिया।"

गद्‌गद् स्वर में वह बोली, "गलती तो पहले मुझसे ही हो गई थी। मुझे आपसे उन लोगों के साथ आने का आग्रह नहीं करना चाहिए था। पर मैं घबड़ा गई थी। मैंने सिर्फ अपने-आप तक ही देखा। आपकी रक्षा करने की जिम्मेदारी भी मुझपर है, यह मैं भूल गई थी। क्षमा कर दीजिए मुझे, देवदत्तजी।" बोलते-बोलते वह रुकी। उसकी आंखों से आंसू टपकने लगे। देवदत्त के हाथ पर उन बूंदों के पड़ते ही उसने अपनी गर्दन उठाई।

विस्मय, करुणा और आनन्द के मिले-जुले स्वर में वह बोला, "मेरे लिए रो रही हो तुम? इस अभागे के लिए?"

नंदा कुछ न बोलकर आंखें पोंछने लगी। आंसुओं से गीले हुए उसके हाथ को अपने हाथ में लेकर देवदत्त बोला, "मैं वचन देता हूं कि तुम्हें अपने लिए आंसू बहाने की नौबत फिर नहीं आने दूंगा।"

बाहर कुछ समय पहले जैसा शोर सुनाई पड़ने लगा। देवदत्त को लगा कि शराब के नशे में चिल्लाते हुए उसके दोस्त फिर लौट आये हैं। इसलिए उसने फिर कोने में रखी बन्दूक उठाई और दरवाजे के पास जाता हुआ वह बोला, "ये बदमाश लोग फिर आ गये, परेशान करने। ठहरो। उनकी बदमाशी अब हमेशा के लिए ही खत्म कर देता हूं।" यह कहते-कहते ही नंदा के चिंतातुर चेहरे की ओर उसकी निगाह पड़ी। वह हँसता हुआ बोला, "अरे, यों घबराओ नहीं। गोली मैं किसी पर भी नहीं चलाऊंगा, पर इन बेशरमों को भगाने के लिए और कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं है।"

बोलते-बोलते उसने जोर से दरवाजा खोला। पर दरवाजे के बाहर उसके दोस्त नहीं थे। गंगाराम और उसके साथ दो-तीन ग्रामीण दीख रहे थे। गढ़ के नीचेवाले गांव में एक शेरनी ने कल से तहलका मचा रखा था और एक गाय और उसके बछड़े को मारकर वह उनकी लाशों के

आसपास चक्कर काट रही थी। यह मालूम होने पर कि देवदत्त गढ़ पर आया है, वे उसे उस शेरनी का शिकार करने को बुलाने आये थे।

देवदत्त मुड़कर नंदा से बोला, "मारे हुए शिकार के आसपास चक्कर काटनेवाला जानवर जल्दी-से मारा जा सकता है। तुम खाना खाकर आराम से सो जाना। हम बिलासपुर अब कल सुबह ही चल सकेंगे। इस शेरनी का चमड़ा मैं तुम्हें भेंट करूंगा।"

नंदा कुछ कहे, इससे पहले ही देवदत्त तीर की तरह कमरे से बाहर निकल गया।

: ५१ :

रात के दो बज गए थे। फिर भी नंदा जाग ही रही थी। स्वच्छंद विचारों की लहरों पर वह लगातार इधर-से-उधर फेंकी जा रही थी।

"पहले देवदत्त की चिंता से उसका मन व्यग्र हुआ। आज वह मोह का शिकार हो जरूर गया, पर उसकी याद आते ही वह दोस्तों की बैठक से उठकर चला आया। पर इस आधी रात को खूंखार शेर का शिकार करने के लिए जिस सावधानी की जरूरत होती है, उसमें होगी क्या? मुझे उसे नहीं जाने देना चाहिए था।"

वह मन में सोच-विचार कर रही थी—"इन पिछले दस-बारह घंटों में मैंने जो देखा, जो सुना, जो पढ़ा और जो अनुभव किया वह सब भले ही भयंकर हो, फिर भी सत्य है।" फिर थोड़ा सोचने पर उसे लगता, जैसे किसीने उसे बहुत दूर के द्वीप पर ले जाकर छोड़ दिया है, और वहां के जंगली मनुष्यों की भयानक बातें वह सुन रही है, पर तुरन्त ही वह स्वस्थ हो जाती और आंखें खोलकर चारों ओर देखने लगती। सूली पर चढ़े हुए ईसा का चित्र उसे सामने दीख पड़ता। वह चंदनगढ़ पर, देवदत्त के बंगले में है, ऐसा उसे यकीन हो जाता, पर उसका मन फिर से विचारों के भंवर में फंस जाता। कोई अनजान बालक रेडियो लगाने की कोशिश करे और उससे निकलनेवाली भिन्न-भिन्न आवाजें एक-दूसरे से मिलकर सुनाई पड़ने पर उस लड़के को जैसा महसूस हो,

कुछ वैसी ही हालत उसकी हो रही थी ।

देवदत्त द्वारा कहा गया अपना दुःख, उसकी मां द्वारा दस वर्ष के अपने बालक के हाथ में दिया गया शराब का प्याला, पिता का वह भयानक पत्र, इन सबका स्पष्टीकरण उस पत्र से हो रहा था। पर...

क्या ऐसी बातें इस दुनिया में हो सकती हैं ? क्या मनुष्य सचमुच इतना निर्दयी हो सकता है ? स्त्री अधःपतन के दर्रे में अपने-आप इस तरह कूद पड़ती है ? जिसकी कोमलता के आगे फूलों की मृदुता भी लज्जित हो जाती है, ऐसी मां का हृदय क्या पाषाण से भी कठोर हो सकता है ?

नंदा के मस्तिष्क में ये सारे प्रश्न हथौड़े-से प्रहार कर रहे थे। कुछ समझ में नहीं आ रहा था उसे। अंत में बेचैन होकर वह उठी और कमरे में चहलकदमी करने लगी। जैसे कहानी का राक्षस देखते-देखते सामने खड़ा हो जाय और उसका भयानक रूप देखकर बालक मन उससे भय-त्रस्त हो जाय, उसी तरह का उसे लगने लगा। देवदत्त की कहानी उसे अनुभव के अंतरंग में जीवन की तली में गहराई तक ले जा रही थी। वहां कोई भी प्रकाश नहीं था। हवा की झकोर भी नहीं थी। हर क्षण ऐसा लग रहा था जैसे दम घुट रहा हो।

वह अपने से ही कह रही थी, "मध्यम श्रेणी के एक सुरक्षित घर में मैं छोटी से बड़ी हुई। जीवन-सागर के बालू के मैदान में खेली। वहां की सीपियां और शंख बीने। वहीं किले बनाए। वहां से लहरों का आंखमिचौनी का खेल आंखें भर कर देखा। पर पर्वत जैसी लहरों की लपेट में फंसे हुए जहाज में बैठे मनुष्य किस तरह घबड़ा जाते हैं, यह मैंने कभी नहीं जाना। जहाज को जल-समाधि देनेवाले शिलाखंडों की और मनुष्यों को निगल जानेवाली मछलियों की मुझे कोई जानकारी नहीं थी।'

चूहेदानी में फंसे चूहे की तरह वह कमरे में इधर-से-उधर घूमने लगी, पर उसके मन की व्याकुलता कम नहीं हो रही थी। बीच ही में उसे लगता, इस आधी रात को इस अपरिचित जगह में भूत की तरह वह क्यों घूम रही है ? स्वयं के दुःख को भुला देने के लिए वह बिलासपुर

आई। वसू के दु:ख के कारण देवदत्त के पास गई और उसके दु:ख से एकरूप हो गई। क्यों किया यह सब उसने ? इस सबसे वह अलिप्त रही होती तो ? अभी भी वह इस चक्रव्यूह से छुटकारा पा सकती है। कल ही वसू से कह देगी कि उसे यहां अच्छा नहीं लगता और सीधी बंबई की राह पकड़ लेगी।

इस विचार से उसे थोड़ा हलका लगा। यह सोचकर कि अब आंख लग जायगी, वह बिस्तर पर जाकर लेट गई।

पर उसकी बंद आंखों के सामने देवदत्त के पिता के पत्र के अक्षर नाचने लगे, पहले चिनगारियों की तरह, फिर भड़कनेवाले शोलों की तरह। धीरे-धीरे वे शोले अधिक बड़े होने लगे और अन्त में उसे लगा कि आकाश की पट्टी पर बिजली की लेखनी से कोई उन्हें लिख रहा है। उसके मन में आया कि मनुष्य कितना दीर्घद्वेषी होता है। मृत्यु के बाद भी उसकी बदला लेने की इच्छा जीवित रहती है।

उसका मन देवदत्त की मां के बारे में विचार करने लगा। जिस के कारण पति ने आत्महत्या की, वह औरत अब महीने-महीने तीर्थयात्रा कर रही है। पाप की चुभन असहनीय हो जाने के कारण क्या वह इसी प्रकार घूम रही होगी ? हेम्लेट की मां अगर जीवित रहती, तो वह आगे क्या-क्या करती ? वह किस मन:स्थिति में दुनिया से बिदा लेती ?

और अन्त में मानसिक थकावट के कारण उसकी आंख लग गई, पर उस ऊंघ में भी उसका विचार-चक्र तो घूमता ही रहा ...

हेम्लेट की मां और महाभारत की सावित्री, इन दोनों के प्रेम के विषय में दासबाबू ने क्या कहा था भला ? सावित्री सत्यवान की ही पत्नी क्यों हुई ? उसका विवाह अश्वत्थामा से क्यों नहीं हुआ ? वह हुआ होता तो ? महाभारत फिर से एक बार पढ़ना चाहिए। उसका प्रत्येक व्यक्ति मानव के सनातन दु:ख का भार सिर पर वहनकर अनंत काल के प्रवास के लिए मानो निकल पड़ा है, ऐसा लगता है।

परन्तु देवदत्त के दु:ख से मुझे क्या वास्ता ? पर, कितना पागलपन भरा प्रश्न है यह ? क्या मनुष्य केवल रूखी अलिप्तता से इस दुनिया में सुख से जी सकता है ? जन्म लेते ही मनुष्य अनेक अटूट धागों से

दुनिया के साथ बांध दिया जाता है। आगे की यात्रा में पुराने धागे टूटते जाते हैं और नए पैदा होते जाते हैं। पर इन नए-पुराने की गोप[1] उसे हमेशा गूंथते ही रहना पड़ता है। गूंथने की कला के कारण और गोप में के नाना रंगों के धागों के कारण ही जीवन को अर्थ मिलता है।

उसे दादाजी का स्मरण हो आया। बयालीस के आंदोलन से वह सहज ही अलिप्त रह सकते थे। बापू जैसे कार्यकर्ताओं को आश्रय देने की और अपनी सुख की नौकरी पर पानी फेर देने की उनपर किसीने कोई सख्ती नहीं की थी, पर वह उस अपरिचित कार्यकर्ताओं से देशभक्ति के धागे से बांध दिये गए थे। मिलिंद की सौतेली मां को उसे संभालने की इच्छा नहीं थी। यह मालूम होते ही मां उसे अपने पास ले आई। वैसे देखा जाय तो आक्का (मिलिंद की मां) की मृत्यु के कारण वह पस्त ही हो गई थी, परन्तु वात्सल्य के धागे से वह मिलिंद से बांध दी गई। उस धागे को तोड़ना उसके लिए संभव नहीं था। दासबाबू ने लड़की के विवाह के लिए जमा करके रखे हुए पैसे अपने बालमित्र के लड़के को दे दिये, सो क्या ब्याज के लालच से? नहीं। मित्रता के धागे से वह बंधे हुए थे। मनुष्य इसी तरह नाजुक धागों से एक-दूसरे से बांध दिये जाते हैं और फिर अपने प्राणों की बाजी लगाकर वे उन धागों की हिफाजत करते रहते हैं। इस हिफाजत में ही सारी मनुष्यता भरी हुई है।

बाहर कहीं मुरगे ने बांग दी। वह चौंककर उठ बैठी। सचित मन से उसने दरवाजा खोला। बंगले की सीढ़ियां उतरकर वह बाहर आई। सुबह की चुभती हुई हवा का स्पर्श होते ही उसकी देह सिहर उठी।

: ५२ :

धूप चढ़ आई, फिर भी देवदत्त का पता नहीं था। गंगाराम जो खबर लाया उससे ऐसा लगता था कि वह जल्दी नहीं आ पायगा।

---

१. बंटा हुआ मोटा डोरा

"वसू, ज़रा समझ से..."

"फिज़ूल चिल्ला मत इस तरह। गढ़ पर तुम दोनों ने क्या-क्या खेल खेले, इसकी अक्षर-अक्षर जानकारी है मुझे, समझी!"

नंदा की आंखों के सामने गंगाराम मूर्त हो उठा। आते ही वह पार्वती के कान से लगा होगा। पार्वती ने वे सारी बातें नमक-मिर्च लगा-कर वसू से कही होंगी, पर...गंगाराम ने ऐसा कुछ ऊटपटांग...वह चौंक उठी। कल को सारी बातों का अर्थ नौकर-चाकर क्या लगायेंगे, इसका विचार उसने अभी तक नहीं किया था। अब वह विचार उसे डराने लगा। किसी भी कारण से नजदीक आनेवाले पुरुष और स्त्री की ओर देखने की पढ़े-लिखे लोगों की दृष्टि भी परिष्कृत नहीं होती, तो फिर गंगाराम जैसे अनपढ़ लोगों को दोष देने से क्या फायदा?

वसू नंदा की ओर क्रूर दृष्टि से देख रही थी। नौकर-चाकर दरवाज में कान लगाकर सारा किस्सा सुन रहे होंगे, यह ध्यान में आते ही नंदा लज्जा से गड़ गई। इस भय से कि यदि वह चुप रही तो लोगों का शक और बढ़ेगा, वह जोर से बोली, "किसीसे भी पूछ ले, वसू, देवदत्त अचानक गढ़ पर चले गए शेरनी का शिकार करने।"

विकट हास्य करके और पागल की तरह हाथ मटकाती हुई वसू बोली, "देवदत्त शेरनी का शिकार करने गए, या कि शेरनी ने ही उनका शिकार कर दिया?"

वह और भी कुछ बोलना चाहती है, ऐसा उसके अधखुले होंठों पर से लग रहा था, पर उसके मुंह से एक भी शब्द बाहर नहीं निकला। उसके हाथों की हलचल अलबत्ता जारी रही।

नंदा गर्दन झुकाए चुपचाप हाथ में कौर लिये बैठी रही। इसी समय पसीने से तरबतर पार्वती छटपटाती हुई भीतर आई, घबराई हुई आवाज में उसने पुकारा, "भाभीसाहब ..."

"क्या है री?" चिड़चिड़े स्वर में वसू ने पूछा।

"सरकार को..." उसके मुंह से शब्द बाहर नहीं निकल पा रहा था।

वसू क्रोध से चिल्लाई, "चुड़ैल, ठीक से बोल, क्या कहती है?"

"शेरनी ने सरकार को...डाक्टर गए हैं उन्हें लाने के लिए।"

नंदा के हाथ का कौर हाथ ही में रह गया।

: ५३ :

नंदा अपने कमरे में तिलमिलाती हुई पड़ी थी। रात-भर के जागरण से उसका सिर दुःख रहा था, आंखें जल रही थीं, पर किसी भी तरह उसे नींद नहीं आ रही थी।

पार्वती के शब्द उसके अन्तर में बार-बार प्रतिध्वनित हो रहे थे—"शेरनी ने सरकार को...डाक्टर गए हैं उन्हें लाने के लिए..."

शेरनी से हुई भिड़न्त में देवदत्त कितने जख्मी हुए होंगे, यह प्रश्न वह स्वयं से बार-बार पूछ रही थी। प्रत्येक बार उसकी कल्पना उसे बेतुका उत्तर दे रही थी।

उसकी इस तापदायक तंद्रा को भंग किया पार्वती ने। तीसरे पहर की चाय के साथ उसने वसू का एक पत्र लाकर उसे दिया। पत्र में इतना ही मजमून था, "रात की गाड़ी से तेरा टिकट मंगाने को बापू से कह दिया है। तेरा पूरा वेतन वह दे देंगे। कृपाकर अपना मुंह मुझे फिर न दिखाना।"

पत्र के टुकड़े-टुकड़े करके वसू के मुंह पर फेंक दे और यहां से चल दे, ऐसा उसके मन में आया, पर इसी समय बापू, जो अस्पताल जाने की जल्दी में थे, भीतर आये। डाक्टर देवदत्त को लेकर आ गये थे। उसके सिर, कन्धे और बगल में जख्म हुए थे। शेरनी को देखते ही देवदत्त ने गोली चला दी, पर दुर्भाग्य से निशाना चूक गया, लेकिन शेरनी जख्मी हो गई थी और जंगल में भाग गई थी। उसके जख्म से टपकते खून का सुराग लेता हुआ देवदत्त घने जंगल में घुस गया। कुछ देर बाद उसके ध्यान में आया कि शेरनी की गति मंद पड़ गई है। जंगल में विलक्षण शांति फैली हुई थी। पैरों से दबनेवाले सूखे पत्तों की आवाज भी तेज लग रही थी। देवदत्त हर कदम सावधानी से रखता हुआ आगे बढ़ने लगा। बन्दूक के घोड़े पर उसकी अंगुली थी। अचानक

उसके कानों में आवाज आई। उसका सारा बदन सिहर उठा। वह एकदम मुड़ा। करौंदे की झाड़ी से कूद पड़ने के पैंतरे में बैठी हुई शेरनी का उग्र दर्शन उसे हुआ। उसके कूदते ही गोली दाग दी गई और उसे लड़खड़ाकर गिरते हुए देवदत्त ने देखा। जमीन पर गिरते-गिरते होनेवाली वेदना उसे तीव्रता से महसूस हुई। शेरनी की गर्जना उसके कानों में पड़ी। आगे क्या हुआ, इसका होश उसे नहीं रहा।

देवदत्त के साथ आये गांववालों के मुंह से बापू ने कुछ समय पहले यह सारा हाल सुना था। वह ज्यों-का-त्यों उन्होंने नंदा को कह-सुनाया। उसे सुनते समय देवदत्त के साहसी स्वभाव के प्रति अभिमान से उसका मन फूल गया, पर तुरन्त ही चिंता के कांटों ने हलचल मचा दी। कितने जख्मी हुए होंगे। उन्हें अच्छा होने में कितने दिन लगेंगे? उनकी जान को कोई खतरा तो नहीं?

नंदा के मन में तीव्र इच्छा हुई कि बापू के साथ अस्पताल जाकर देवदत्त को देख आये। कहने के लिए उसके होंठ थरथराए, पर इसी समय बापू उससे बोले, "अस्पताल से लौटने पर मैं तुम्हारे टिकट की व्यवस्था दूंगा। भाभीसाहब ने कुछ समय पहले ही मुझे यह हुक्म दिया है।"

नंदा ने यह सुन लिया। वह कुछ भी न बोल सकी।

: ५४ :

रात का जागरण और लगातार मन पर पड़े तनाव के कारण नंदा थक गई थी। अन्त में इसी ग्लानि में ही उसकी आंख लग गई, पर इस बेचैनी की नींद में उसका मन नाना प्रकार के दृश्यों की गूदड़ी सीं रहा था। सीता की अग्नि-परीक्षा, उस अग्नि को बुझानेवाला तूफानी सागर, उस सागर के मगर द्वारा पकड़ा हुआ किसीका पैर, उस पैर से टपकनेवाले खून की बूंदों के बननेवाले सफेद मोती, उन मोतियों को खाकर सरोवर में गाते-गाते तैरने वाला राजहंस और उस राजहंस पर झपट्टा मारने के लिए किनारे पर जीभ चाटती बैठी हुई शेरनी...

शेरनी को देखते ही वह भयभीत हो गई। वह एकाएक उठ बैठी। यह ध्यान में आते ही कि वह जो देख रही थी, वह सारी स्वप्न की दुनिया थी, उसकी जान में जान आई। उसने घड़ी की ओर देखा। साढ़े पांच बज रहे थे। उसके कलेजे में बेचैनी हुई। बापू को अस्पताल से कभी का लौट आना चाहिए था। अभी तक वह क्यों नहीं आये! कहीं देवदत्त की हालत खराब तो नहीं है?

कुल्ला करके वह धीमे-से बरामदे में आई। वसू मोटर से उतरती हुई उसे दीख पड़ी। वह अस्पताल गई होगी। देवदत्त के स्वास्थ्य के बारे में उससे पूछे क्या? नंदा चार कदम आगे बढ़ी। पर और आगे बढ़ने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। वसू ने उसकी ओर एक बार तुच्छता से देखा और पीठ फेरकर वह जल्दी से भीतर चली गई।

: ५५ :

बाग में पीपल के चबूतरे पर बैठकर नंदा अस्ताचल पर का लाल रंग का धुंधला छिड़काव देख रही थी। तुरन्त उसकी आंखें नीची हो गईं। उस रंग को देखकर उसे देवदत्त के जख्म याद हो आये। अन्य मनस्कता से वह पीछे सरकी। पीपल के तने से टिककर उसने अपनी आंखें बन्द कर लीं, श्रांत, क्लांत बटोही की तरह।

"नंदाजी", बापू की आवाज को सुनकर उसने आंखें खोलीं। उस समय धूप बिलकुल मुरझा गई थी। बापू के चबूतरे पर बैठने पर नंदा ने डरते-डरते उनसे पूछा, "क्या हाल है देवदत्तजी का?"

"वैसे डरने की कोई बात नहीं। सारे जख्मों पर डाक्टर ने मरहम-पट्टी कर दी है। कुछ समय पहले ही वह होश में आ गये हैं।"

नंदा ने उखड़ी जबान से पूछा, "मैं देख आऊं जाकर उन्हें?"

वह कुछ न बोले। उनका मौन नकार से भी अधिक दुखदायक लगा उसे। मंद स्वर में उसने पूछा, "आप बोलते क्यों नहीं, बापू?"

फिर भी बापू चुप रहे। बदली आ जाने से जैसा आकाश दीखता है, उसी तरह का उनका चेहरा दीख रहा था। उसे ऐसा लगा जैसे

एक दिन में ही वह अधिक बूढ़े हो गये हैं।

एक-एक शब्द को धीमे-धीमे कहते हुए बापू बोले, "भाभी साहब उनके नजदीक खड़ी थीं। उसी समय देवदत्त होश में आये। आंखें खोल-कर देखने लगे। उनके मुंह से दो शब्द स्पष्ट रूप से बाहर निकले।"

"वसू को पुकारा उन्होंने ? तब तो कहना चाहिए कि मेरा काम बन गया।"

"अरे नहीं, 'नंदा, नंदा' ये दो शब्द उनके मुंह से निकले और तुरन्त उन्होंने अपनी आंखें बन्द कर लीं।"

छोटे बच्चे की-सी आवाज में बापू ने यह कहा, परन्तु उनके स्वर में संगीत भरा हुआ है, ऐसा नंदा को क्षण-भर के लिए आभास हुआ। यह महसूस करके कि देवदत्त के भावजीवन में उसका स्थान है, नंदा को आनन्द हुआ। परन्तु सायंकाल के सुन्दर रंग बात-की-बात में विलुप्त हो जायं और अन्धकार छा जाय, उसी तरह की स्थिति नंदा की हो गई। चार लोगों के सामने, स्वयं वसू के सामने, होश में आने पर देवदत्त ने सहज ही 'नंदा, नंदा' कहकर पुकारा ! पर उन पुकारों को सुननेवाले लोगों ने उनसे क्या अर्थ निकाला होगा ?

बापू कुछ देर ऊपर आकाश की ओर देखते हुए चुपचाप बैठे रहे। अंत में जैसे भारी बोझ उठाने के लिए कोई अपनी सारी ताकत समेटता हो, उस तरह नंदा की ओर मुड़कर बोले, "कल तू देवदत्त के साथ गढ़ पर गई। रात वहीं रही। यह बहुत बड़ी गलती की तूने, बेटी।"

नंदा के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। बापू के मन पर भी शक का काजल जमेगा, ऐसा उसने नहीं सोचा था। अपने मन को खोलकर दिखाए बिना बापू के मन का शक दूर नहीं होगा, यह उसके ध्यान में आया। स्वयं अपनेको संभालकर उसने शांतिपूर्वक प्रश्न किया, "आपके सामने यदि कोई पानी में डूबने लगे, तो आप क्या करेंगे, बापू ?"

"उसे बचाने के लिए पानी में कूद पड़ूंगा मैं।"

"आगे-पीछे का कोई विचार न करके ?"

"हां ऐसे समय विचार करते बैठे रहना बड़ा भारी गुनाह है।"

"यह सच है न ? तो मैंने आखिर और क्या किया ? मैं यहां आई

अपना दुःख भूल जाने के लिए। उस दुःख के कारण अपनी जान देने समुद्र के किनारे गई थी मैं।"

"तू ?"—बापू के स्वर का आश्चर्य उनके चेहरे से बह रहा था। वे बुदबुदाए—"तुम जैसी अक्लमंद लड़की..."

फीकी हँसी हँसती हुई नंदा बोली, "अक्लमंद मनुष्य भी मनुष्य ही होते हैं, बापू। अक्लमंद मनुष्य के जीवन में भी कभी-न-कभी भूकंप होता है। एक क्षण में ही उसकी सारी आशाएं मिट्टी में मिल जाती हैं। जिंदगी से वह ऊब जाता है।" यह देखकर कि बापू एकाग्रता से उसकी बात सुन रहे हैं, वह धीरे-से बोली, "एक प्रश्न पूछूं आपसे ?" बापू ने गर्दन के इशारे से 'हां' कहा। नंदा ने डरते-डरते पूछा, "जीवन में आत्महत्या करने का विचार क्या आपके मन में कभी नहीं आया ?"

बापू ने झट-से मुंह फेर लिया। यह सोचकर कि उन्हें शायद क्रोध आ गया होगा, नंदा बोली, "क्षमा करना, बापू, अपनी इस गुस्ताख बेटी को। आप बुजुर्ग लोग प्रेम के कारण जीवन के भद्दे सत्य हम लोगों से छिपाकर रखते हैं। पर अंत में हम उन्हें देख ही लेते हैं। अचानक होनेवाले उस भद्दे दर्शन से हम डर जाते हैं। आजकल मुझे लगातार यह लगता है कि किसी भी प्रकार का परदा न रखकर हमारे जेठे-बड़े अपने कड़वे-मीठे अनुभव हमें बचपन में ही यदि बता दिया करें, तो..."

वात्सल्यपूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए बापू बोले, "लगता है कि झूठ बोल दूं, पर हिम्मत नहीं होती। इसलिए सच कहता हूं। आत्महत्या के भूत ने कुछ दिन मुझे भी पछाड़ा था। मोहन चल बसा उस समय। उस धक्के से सावित्री ने बिस्तर पकड़ लिया। बड़े लड़के ने प्रेम-विवाह किया था। बहूरानी को मेरी इस टूटी गृहस्थी में जोड़ लगाते बैठने की इच्छा नहीं हुई। उसने अपनी स्वतंत्र राह निकाल ली। मेरा सारा जीवन स्वतंत्रता-आंदोलन में बीता था। पास में जहर खाने को भी पैसा नहीं था। मैं घबड़ा गया। मन में आता कि कहीं से एक मजबूत रस्सी पैदा करूं और सोई हुई सावित्री के चरणों पर सिर रखकर आधी रात को..."

पहाड़ी चढ़ते हुए दम भर जाने से मनुष्य जैसे क्षण-भर को रुक जाता है, उसी तरह बापू बीच में ही चुप हो गए। भावना के आवेश में वह यह सब कह गए थे सही, पर उन दुखद दिनों की याद के कारण वह अत्यन्त बेचैन हो उठे थे।

पर नंदा का कुतूहल उसे चुप नहीं बैठने दे रहा था। उसने मृदु स्वर में पूछा, "उस भूत ने आपकी गर्दन फिर कब छोड़ी ?"

सावित्री ने सारे संकटों में मेरा साथ दिया था। उसे अनाथ छोड़कर चले आना मेरे मन को बड़ा पाप लगा, पर वही अक्लमंद मन किसी भी तरह दो जून के भोजन की समस्या को हल नहीं कर पा रहा था। अंत में मां साहब को दया आई। उन्होंने अपनी सेवा में मुझे यहां नौकरी दे दी।"

"मां साहब ने ? याने देवदत्तजी की मां ने ?" नंदा ने विस्मय-भरे स्वर में प्रश्न किया। उसका मन असमंजस में पड़ गया और वह स्वयं अपने-आपसे ही कह रही थी—'एक कुलटा इस गरीब मनुष्य को सहायता देने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाती है और पाप से लथपथ हुए उसके हाथ का सहारा यह पुण्यशील मनुष्य लेता है। कितनी अजीब है यह दुनिया ? कितने चक्रव्यूहों से भरा हुआ है मनुष्य का यह मन और जीवन !'

बेचैनी से हाथों को हिलाते-डुलाते हुए थोड़ा देर बापू चुप रहे। फिर वह बोले, "रात की गाड़ी का तेरा टिकट ले आया हूं मैं।"

"पर...पर बापू...देवदत्तजी के अच्छे होने तक मैं यहां. "

"कहां रहेगी तू यहां ?"

"आपके घर।"

थूक निगलकर बापू बोले, "यों तो बड़ी खुशी से मैं तुझे अपने घर बुला लेता। पर..."

"मतलब ? क्या आपका भी यही ख्याल है कि देवदत्त के साथ गुलछर्रे उड़ाने के लिए मैं गढ़ पर गई थी ?" बोलते-बोलते नंदा के होंठ थरथराने लगे।

तनिक आगे खिसककर प्रेम से भरे हुए स्वर में बापू बोले, "शांत

हो बेटी, शांत हो। मैं क्या सोचता हूं, इसका यहां रत्ती-भर भी मूल्य नहीं। भाभीसाहब हैं बड़ी हेकड़ और क्रोधी। वह ऐसी न होतीं, तो देवदत्त भी इतने आपे से बाहर न होते।"

"मुझे आश्चर्य होता है, बापू, एक बात का। बुजुर्ग के नाते देवदत्त को सुधारने की कोशिश आपने क्यों नहीं की?"

आसपास फैलनेवाली काली-सी परछाइयों की ओर देखते हुए और लंबी आह भरते हुए बापू बोले, "गरीबी के कारण मनुष्य दुर्बल बन जाता है, बेटी। यह दुर्बलपन उसकी जीभ को काट देता है। उसे पाप में समझौता करने के लिए मजबूर कर देता है।"

बापू के शब्द नंदा के कलेजे को चीरते चले गए। वह गद्गद् होकर बोली, "क्षमा कर दीजिए मुझे, बापू। आपसे मुझे यह प्रश्न नहीं पूछना चाहिए था।"

बापू ने उत्तर दिया, "नहीं बेटी, तुझसे कोई गलती नहीं हुई। सच्ची गलती है परमेश्वर की। दीपक पर झपट्टा मारने की वह जिन्हें प्रेरणा देता है, उन्हें जल जाने का भाग्य वह देता ही है, यह बात नहीं। पर मुझ-जैसे अधजले परवाने की व्याकुलता देखने में उसे बड़ा मजा आता होगा। कभी-कभी मेरे मन में आता है कि परमेश्वर भी एक बड़ा दुष्ट और अधर्मी बालक है।" इन अंतिम शब्दों पर वह स्वयं ही हँस पड़े। फिर नंदा की ओर मुड़कर वह बोले, "नाराज मत होना। एक सवाल पूछता हूं तुझसे। क्या देवदत्त पर तेरा प्रेम है?"

बापू से ऐसे दो टूक प्रश्न की अपेक्षा नंदा ने नहीं की थी। कुछ क्षण के लिए वह असमंजस में पड़ गई। फिर शांतिपूर्वक उसने उत्तर दिया, "हां, है।"

अब चकित होने की बारी बापू की थी। क्या बोलें, यह उन्हें सूझ नहीं पा रहा था। "पर-पर" इस तरह कहते हुए वह लाचारी से उसकी ओर देखने लगे। नंदा ने उनसे पूछा, "बापू, आप गांधीजी के आन्दोलन में क्यों शामिल हुए थे? इस देश के लोगों पर आपका प्रेम था, इसीलिए न?"

"हां।"

"क्या वे लोग आपकी जान-पहचान के थे ? क्या उनके दुःखों को आपने अपनी आंखों से देखा था ? इसके बावजूद आपने उनपर प्रेम किया। उनके लिए तकलीफें उठाईं। मैं तो देवदत्तजी को अच्छी तरह जानती-पहचानती हूं। उनके दुःख का मुझे पूरा पता है। फिर..." किंचित रुककर वह आगे बोली, "यहां आने पर पहले ही दिन मैंने देवदत्तजी को देखा। उन्हें देखने से पहले ही हृदय को कचोटनेवाले उनके उद्गार मैंने सुने। वह चंचल से बातें कर रहे थे। उनका ख्याल था कि लायब्रेरी में वह अकेले ही हैं। वह चंचल से बोले, "इस दुनिया में तेरे सिवा मेरा सिर्फ एक ही मित्र है—वह है मृत्यु।"

बापू चौंककर बोले, "क्या देवदत्त के मन में आत्महत्या के विचार चक्कर काट रहे हैं ?"

"वे विचार उनके बिलकुल पीछे पड़ गए हैं। यह भूत जब पछाड़ता है तब मन की कैसी घुटन होती है, इसका अनुभव मुझे हाल ही में हुआ था। मेरा विवाह शेखर से तय हो गया था। जाग्रत अवस्था में भी सुनहरी गृहस्थी के सपने देख रही थी मैं। पर एक दिन शेखर का हवाई जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो गया...उस हवाईजहाज के साथ मेरा स्वप्न भी चूर-चूर हो गया। मैं दुःख से पागल हो गई। तरुण मन के दुःख बड़े विचित्र होते हैं, बापू। वे जिनके हों, उन्हें ही भोगने पड़ते हैं। रात-रात-भर उस दुःख को कागज पर शब्दों का रूप देकर हलका किया करती थी मैं। देवदत्तजी को भी अपना दुःख इसी तरह हलका करने की आदत है। पहले दिन ही उनके कुछ ऐसे ही कागज मुझे देखने को मिले। हम दोनों सम-दुःखी हैं, यह मैंने तीव्रता से महसूस किया। उनके विषय की कुछ भयंकर बातें वसू से मुझे मालूम हुईं। परंतु मुझे दीखने-वाले देवदत्त उसके देवदत्त की अपेक्षा बिलकुल निराले थे।"

"सच है, बेटी। मोहन हमेशा कहता था कि देवदत्त निर्मल मन का है।" बापू बीच ही में बोल उठे, पर तुरंत ही वह रुक गये।

"देवदत्त बिजली है, ऐसा आपने अपनी पहली मुलाकात में मुझसे कहा था। वे शब्द मेरे मन पर अंकित हो गये। यह बिजली कहीं भी गिरकर कोई विध्वंस न करे, और आकाश में ही चमकती रहे, ऐसा प्रयत्न करने

का मैंने मन में निश्चय किया। उनकी विचित्र मन:स्थिति के कारणों को मैं खोजने लगी। एक-एक धागा मेरे हाथ लगता गया। कल रात को मुझे यकीन हो गया कि देवदत्तजी अत्यन्त अभागे हैं। भूतकाल के वे भयंकर भूत उनकी गर्दन पर सवार हैं। उन्हें एक ऐसे व्यक्ति की जरूरत है, जो उन्हें बिलकुल आंखों में पालकर संभाले। उनके अच्छे होने तक यदि मैं यहीं रहूं तो ?"

बापू आंखों का पानी पोंछते हुए बोले, "नंदा, मैं तुझसे प्रार्थना करता हूं कि तू यह साहस मत कर। देवदत्त के प्रति तेरा प्रेम करुणा से उत्पन्न हुआ है, यह मैं जानता हूं, पर इस गांव के लोगों के गले यह कौन उतारेगा ? हमारा सामाजिक मन अभी तक उस तालाब की तरह है, जिसका पानी सूख गया है। उसमें का कीचड़ अपने बदन पर व्यर्थ मत लगवा। वैसे यदि कभी कोई जरूरत आ ही पड़ी तो मैं तुझे बुला लूंगा, पर इस समय तू यहां मत रह।"

नंदा कुछ भी न बोली। उसने आंखें बंद लर लीं, पर बापू सें अपना आवेग रोका नहीं जा रहा था। वह बोलते ही रहे, "तू यदि यह रह गई तो कल ही भाभीसाहब आत्महत्या करने के लिए निकल पड़ेंगी ! गढ़ पर जो नहीं हुआ, उसकी चर्चा गांव-भर में शुरू हो जायगी। दादासाहब के नाम को अकारण कलंक लगेगा। यदि सावित्री से बोलते बनता, तो वह तुझे यह सब बड़ी अच्छी तरह से समझाकर बताती। पर क्या करूं ? इस विषय में भी मैं अभागा हूं।"

नंदा ने आंखें खोलीं। वे डबडबाई हुई थीं। शांतिपूर्वक वह बोली, रात की ही गाड़ी से मैं चली जाऊंगी, बापू। जाने से पहले मुझे आप आशीर्वाद दीजिए।"

"मैं क्या आशीर्वाद दूंगा तुझे ? मैं एक गरीब ..."

"नहीं बापू, आप गरीब नहीं, आप सच्चे अमीर है। आपके हृदय में अमृत का अक्षय स्रोत है। बेटी की तरह प्यार लुटाया है आपने मुझ पर। मुझे एक ही आशीर्वाद दीजिए...आपकी लड़की को शोभा न देनेवाला मोह मुझे कभी भी न हो।"

बापू ने अपना कांपता हुआ दायां हाथ उसके मस्तक पर रखा।

गद्गद् स्वर में बोले, "तथास्तु।"

बापू के चरणों पर मस्तक रखकर नंदा उठी। आसपास गहराने वाले अंधकार का उसे बोध हुआ। उसने ऊपर देखा। तारे कभी के चमकने लगे थे। पश्चिम की ओर शुक्र चमचमा रहा था—रत्नदीप जैसा!

: ५६ :

बंबई आये एक महीना हो गया था, फिर भी नंदा का मन बिलासपुर में ही विचरण कर रहा था। वहां जो कुछ हुआ, वह सब दादाजी को बता दे, ऐसा उसे बराबर लग रहा था। पर न जाने क्यों, उसे यह साहस नहीं होता था। उसके मन में आता कि देवदत्त की यह अनोखी कहानी दादाजी को सच लगेगी भी? निर्जीव शब्दों के माध्यम से देवदत्त के दुःख को मैं मूर्त रूप से खड़ा कर सकूंगी? कल्पित कथा की अपेक्षा सत्य भयंकर होता है, यह सच है। पर वह किसकी दृष्टि से? सप्त-पाताल में छिपकर बैठे हुए भद्दे सत्य तक जो पहुंच सकता है, उसे ही वह जंचता है। देवदत्त के दुःख को यदि दादाजी ने महसूस न किया, तो उसके बारे में उनकी क्या राय बनेगी? वह एक विवाहित पुरुष की ओर आकर्षित हो गई और अपने आवारा मन का समर्थन करने के लिए उसने यह कहानी गढ़ी है, यह शंका कहीं उनके मन को स्पर्श कर गई तो?

रोज सुबह जागने पर वह अपने मन का पृथक्करण करके देखती। किसी मशीन के छोटे-छोटे पुर्जों को खोलकर जैसे उनकी जांच करें, उसी तरह! इस चिन्तन में उसे एक नई बात मालूम हुई। अनेक नाले मिलकर नदी बनती है। मनुष्य की प्रत्येक भावना भी इसी तरह होती है—मिलीजुली, अनेक किनारोंवाली, आत्मप्रीति से लेकर आत्म-लोप तक की सारी छटाओं से रंगी हुई। देवदत्त के प्रति उसे लगनेवाली आत्मीयता इसी तरह की थी। उस भावना में असाधारण व्यक्तित्व का आकर्षण था, निडर वृत्ति के लिए सराहना थी, मर्मस्पर्शी बुद्धिमत्ता के प्रति आदर-भाव था। परंतु ईश्वर ने उसे जिनमें बांधकर इस दुनिया

में भेजा था, उनकी हृदयहीनता के कारण नष्ट-भ्रष्ट हुए उसके जीवन के प्रति करुणा भी उसे थी !

पर इस भावना में क्या इतना ही था ? या और भी कुछ था ? इस प्रश्न का उत्तर जब वह खोजने लगी तब गहरी खाई में आनेवाले मनुष्य की तरह उसके मन की स्थिति हो जाती। हर भावना में, बिल्कुल नाजुक ही क्यों न हो, वासना की एक कोर होती है, ऐसा उसे महसूस होता। उस कोर का स्वरूप उम्र, प्रसंग, स्वभाव और परिस्थिति पर अवलंबित होता है। यदा-कदा अन्य किसीको भी उसके अस्तित्व का आभास भी न होता होगा ! पर, इस विचार के पास जब वह पहुंचती तो कमरे में अकेली होते हुए भी भौचक्की हो जाती। मनुष्य करोड़ों मील दूर के तारों को दूरबीन की मदद से देख सकता है। परंतु स्वयं के बित्ते-भर हृदय का तल दिखानेवाली दूरबीन कोई खोज निकाले, फिर भी उसका उपयोग करने की हिम्मत उसे नहीं होगी, ऐसा ही उसे लगता। वह बिस्तर पर उठकर बैठ जाती, हाथ जोड़कर खिड़की से आनेवाले प्रकाश की प्रार्थना करती—"तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय।"

: ५७ :

इस महीने में एक बात अलबत्ता स्पष्ट हो गई थी। बंबई में घूमते-फिरते समय शेखर की याद से उसके मन को जो व्याकुलता हुआ करती, वह अब नहीं होती थी। उसकी यादों ने शिकारी कुत्तों की तरह उसके जख्मी मन का पीछा करना छोड़ दिया था। उल्टे वे यादें उसे अब बचपन में हिफाजत से रखे हुए मोरपंखों की तरह सुन्दर लगने लगीं। "ओ सजना"—अपना यह प्रिय रिकार्ड वह रोज लगाती। पर उसे सुनते समय रिमझिम वर्षा में शेखर से मिलने जानेवाली सुधा ने उसकी आंखों के सामने मूर्त होना छोड़ दिया। दो-तीन बार वह समुद्र पर घूमने गई। हर बार उसके मन में आया, यह बड़ा अच्छा है कि समुद्र बोल नहीं सकता, वरना हजारों लोगों के सामने वह गरजकर

कहता, "इस पगली लड़की को देखा ! एक रात यह अपने प्राण देने यहां आई थी !"

मिलिंद को रंगबिरंगे कागजों के हवाई जहाज बनाकर वह देने लगी। स्वयं अपने लिए नई साड़ियां लाते समय मां के 'ना-ना' करते भी एक सुन्दर साड़ी वह उनके लिए ले आई और उसे उसी दिन पहनने के लिए उसने उन्हें मजबूर कर दिया। रोज रात को सोते समय मिलिंद को वह नई-नई कहानियां सुनाने लगी, पर एक दिन उसने हठ पकड़ ली हैम्लेट की ही कहानी सुनाने की। तब वह बोली, "छोटे बच्चों को ऐसी कहानियां नहीं सुननी चाहिए।" उसका यह उपदेश सुनकर मिलिंद आश्चर्य से उसकी ओर देखता ही रहा। उसकी आंखें कह रही थीं—तीन-चार महीने पहले उस कहानी को सुनने लायक बड़ा था वह और अब छोटा हो गया। यह कैसा क्या हो गया ?

: ५८ :

देवदत्त के स्वास्थ्य के बारे में हर दो-तीन दिन बाद उसके पास बापू का पत्र आता है। यह पढ़कर कि उसके ज़ख्म धीरे-धीरे अच्छे हो रहे हैं, उसे खुशी होती। पर वसुन्धरा और मधुरा के बारे में उस पत्र में एक अक्षर भी न होता। इस आशा से कि देवदत्त उसे याद कर रहा है, ये शब्द उसे पत्र में कहीं पढ़ने को मिलेंगे, वह उसे खोलती। पर व्यर्थ ! हां, प्रत्येक पत्र के अंत में "मेरे और सौ० सावित्री के तुझे अनेक आशीर्वाद," यह लिखना वह न भूलते।

देवदत्त अच्छे होकर जब बंगले में रहने चले जायंगे तब बापू के पत्र आने बंद हो जायंगे, यह विचार उसे बेचैन करने लगा। मन को कहीं और उलझा देने के लिए पी० एच-डी० की थीसिस का वह फिर विचार करने लगी।

इसी थीसिस के सिलसिले में एक दिन शाम को वह दासबाबू से मिलने गई। वह किसी सभा में गए हुए थे। उनके अध्ययन-कक्ष में बैठकर वह उनकी प्रतीक्षा करने लगी। बैठे-बैठे वह ऊब उठी। तब

वह मेज पर रखी पुस्तकों को देखने लगी। उन्हें देखते-देखते उसकी नजर सामने लगे चित्र पर पड़ी। पिछली बार दासबाबू ने यह चित्र उसे दिखाया था। उस समय जल्दी-जल्दी में उसने वह देखा था। अब वह एकाग्र मन से उसके सौन्दर्य का रस लेने लगी।

उस चित्र की लता बड़ी विचित्र थी। एक काले-से दह के किनारे फूली हुई थी वह! उस दह की नमी उसकी जड़ों को मिल रही होगी। उस लता की छोटी-छोटी टहनियां आकाश की ओर झपट्टा मार रही थीं, जैसे दूर खड़ी हुई मां को बाहों में भरने के लिए नन्हें-नन्हें हाथ फैलानेवाली बालिकाएं ही हों! आकाश उनसे बहुत दूर था। उसका स्पर्श उन्हें कभी हो, यह संभव ही नहीं था, पर उसके प्यार-भरे स्मित में वे नहा रही थीं। प्रत्येक टहनी पर के उत्फुल्ल फूलों के रंग भिन्न थे। कुछ फूल मिश्रित रंगों के थे, पर ये सारे रंग कितने कोमल और मनोहारी दीख रहे थे।

पर उस लता की कुछ बड़ी-बड़ी टहनियां आड़े-टेढ़े रूप में उलटी मुड़ पड़ी थीं। उस काले-से दह में पड़े हुए अपने धुंधले प्रतिबिम्बों को देखने में वे मग्न हो गई थीं। उन प्रतिबिम्बों को देखकर ऐसा लगता था, मानो पाताल लोक से नागिनें ही ऊपर आ रही हों। उनपर खिले हुए चित्र-विचित्र फूलों के रंग कितने भड़कीले थे!

चित्र का शीर्षक कोई नहीं था, चित्रकार का नाम भी कहीं नहीं था, पर इस चित्र को दिखाते समय दासबाबू ने कहा था, "प्रीति इस लता की तरह ही होती है।" नंदा के मन में आया, इस चित्र का शीर्षक 'प्रीति' ठीक रहेगा, अथवा 'मनुष्य' शीर्षक उचित रहेगा?

चित्र पर से उसने अपनी नजर दूसरी ओर मोड़ी। कोने में शतरंज की बिसात लगी हुई थी। उसे दासबाबू के उस दिन के शब्द याद आने लगे—"ठीक से देखो इस बिसात की ओर। यहां एक तरफ बैठी हुई है सती सावित्री। दूसरी ओर बैठी हुई है हैम्लेट की मां। सावित्री ने सत्यवान पर प्रेम किया, अपने-आपको संपूर्ण रूप से भूलकर, आत्म-प्रेम की शृंखला को तोड़कर! हैम्लेट की मां से यह जमा नहीं। अनादि काल से यह खेल चला आ रहा है—अनन्त काल तक वह चलता

रहेगा।"

फोन की घंटी ने उसकी तंद्रा से उसे जगा दिया। "उन्हें लौटने में देर होगी," ऐसा दामबाबू फोन से घरवाले को बता रहे थे। जब उन्हें यह पता चला कि नंदा उनसे मिलने आई है तब उन्होंने उसे फोन पर बुलाया। कल सुबह थीसिस के काम के लिए वह फिर मिलने आयेगी, यों कहकर नंदा ने उनसे बिदा ली। पर घर पहुंचने तक उसका मन ठिकाने पर नहीं था। दामबाबू के अध्ययन-कक्ष का वह चित्र उसकी नजरों के सामने झूल रहा था।

वह घर पहुंची तो बापू का तार उसकी बाट जोह रहा था। तार में इतना ही मजमून था—"भाभीसाहब सख्त बीमार। जल्दी आ।"

: ५९ :

रात को गाड़ी में अनेक अमंगल विचार नंदा के पीछे पड़ गए। रह-रहकर उसे लगता, बापू ने यह यों ही लिख दिया होगा कि वसू सख्त बीमार है। दरअसल सख्त बीमार होंगे देवदत्तजी। छि: ! मैं जन-निंदा से डरकर वहां से चली आई। यह मैंने कुछ ठीक नहीं किया। ऐसे समय देवदत्तजी के पास ऐसे व्यक्ति का होना अत्यन्त आवश्यक था, जो उनके साहस की सराहना करता, उनके साथ काव्य-विनोद में रममाण होता और उनके छटपटानेवाले मन पर कोमलता से फूंक मारता। बिलासपुर में ऐसा कौन है? बापू निःसन्देह अत्यन्त स्नेहशील हैं। देवदत्त के प्रति उन्हें प्रेम भी बहुत है। पर वह ठहरे उनके नौकर, उसमें भी नाक की सीध में चलनेवाले। उनकी पीढ़ी के सारे त्रैराशिक सम थे। इस नई पीढ़ी के व्यस्त प्रश्नों को वह कैसे हल कर पायेंगे?

: ६० :

नंदा को लेने बापू स्टेशन पर आये थे। गाड़ी जब बंगले की ओर जा रही थी उस समय उनके मुंह से उसने जो हाल सुना, वह विलक्षण

था। कोई जहरीली दवा खाकर वसू ने आत्महत्या करने का प्रयत्न किया था। डाक्टर ने बड़े कौशल से उसके प्राण बचाए पर अभी तक वह बेहोशी की-सी ही हालत में है। नींद की गोलियां खाने की उसे बहुत दिनों की आदत थी। उसमें यह जहर और मिल गया। वसू को अस्पताल ले जाने के बाद मधुरा का जी उड़ गया। वह किसीकी कुछ सुनती ही नहीं थी। रो-रोकर उसने कुहराम मचा दिया! उसे फिट आ गया। होश में आते ही "नंदा मौसी, नंदा मौसी" कहकर उसने फिर फूट-फूटकर रोना शुरू कर दिया। उस लड़की का दुःख बापू से देखा नहीं गया। इसलिए अन्त में उन्होंने तार करके उसे बुलाया।

यह सब सुनकर भी उसे यह पता न चला कि ऐसी कौन-सी घटना हो गई थी, जिसके कारण वसू को अपने प्राण देने का प्रयत्न करने की नौबत आ गई। पर गाड़ी बंगले के पास पहुंच चुकी थी। इसलिए अधिक पूछते भी नहीं बनता था।

: ६१ :

बरामदे में मधुरा उसकी राह देखती खड़ी थी। गाड़ी के रुकते ही वह दौड़ पड़ी। नंदा को उसने कसकर बाहों में समेट लिया। पर उसकी एक ही रट शुरू हो गई—"अब तो फिर नहीं जाओगी न तुम, बंबई?" "नहीं-नहीं" कहकर उसे संतोष देते-देते नंदा की नाक में दम आ गया। चाय पीने के बाद बापू को लेकर वह अपने कमरे में गई।

बापू ने जो हाल बताया उसे सुनकर तो वह सन्नाटे में आ गई। आंखों में आए हुये आंसुओं को पोंछती हुई वह मन-ही-मन बुदबुदाई, "मनुष्य का मन क्या इतना दुष्ट हो सकता है? एक मासूम गूंगे जीव की..." चंचल की याद से उनका गला भर आया। पहले दिन गले के घुंघरू बजाती, लायब्रेरी में आनेवाली, शरमीली नजर से मेरी ओर देखनेवाली चंचल, आगे प्यार से मेरा स्वागत करने के लिए बरामदे में आकर खड़ी होनेवाली चंचल, फिर पास आकर अपना सिर घिसती हुई, देवदत्त बिलासपुर में हैं या नहीं, यह आंखों-ही-आंखों में कहनेवाली चंचल!...

चंचल के अनेक रूप उसकी आंखों के सामने मूर्त हो उठे।

बापू चले गये, फिर भी नंदा उसी तरह बैठी रही। उनके द्वारा कही गई सारी बातों का एक चित्रपट उसके मन में तैयार हो गया था। वह अब अपनी आंखों के सामने उन्हें उतारने लगी :

वसू देवदत्त की कुशल पूछने अस्पताल जाती है। वह उससे बात नहीं करता। पर "नंदा का पत्र आया क्या? वह वापस कब आ रही है?"--इस तरह के प्रश्न वह बापू से बराबर पूछता रहता है। इन प्रश्नों को सुनकर वसू उससे झगड़ने लगती है। देवदत्त उत्तर देता है, "भाग्य ने मुझे तेरे साथ बांध दिया है। पर हम दोनों की राहें बिलकुल अलग-अलग हैं। इस दुनिया में मेरे सिर्फ दो ही मित्र हैं—नंदा और चंचल। इनमें नंदा को अपने मन में वाहियात शक को लेकर तूने यहां से भगा दिया! बड़ी दुष्ट है तू!" उसकी इस बात से वसू बिगड़ पड़ती है—बेकाबू हो जाती है। चंदनगढ़ की सुनी हुई बातों का नमक-मिर्च लगाकर वर्णन करती है। देवदत्त आपे से बाहर हो जाता है—"जा, चली जा यहां से! फिर मुंह मत दिखा मुझे!" कहकर वह उसपर चिल्ला पड़ता है। लोगों के सामने हुए अपने इस अपमान से क्रोधित वसू देवदत्त को ऐसा सबक सिखाने का निश्चय करती है, जो उसे जिंदगी-भर याद रहे। वह जिस दिन अस्पताल से बंगले में जाता है, उसी दिन वसू अपने एक नौकर के जरिए चंचल के खाने में जहर मिलवा देती है। देवदत्त की आंखों के सामने उसकी प्यारी चंचल तड़प-तड़पकर मर जाती है। यह सारी करनी वसू की है, इसका देवदत्त को पता चल जाता है। यह देखकर कि वसू ने मुझसे इस प्रकार बदला लिया, उसका गुस्सा बेकाबू हो जाता है। वह वसू के बंगले पर जाता है। उसका गला पकड़कर "चंचल का साथ देने के लिए तुझे भी वहीं भेज देता हूं।" यों कहकर वह उसे मार डालने की धमकी देता है। उसके पीछे-पीछे दौड़ते हुए बापू आते हैं और बीच में पड़कर उसे बचाते हैं। देवदत्त वसू को छोड़ देता है। गर्दन झुकाकर वह कहता है, "मुझसे गलती हो गई, बापू। अभी तक भी काबू में नहीं रहता मेरा मन। ऐसी गलती आगे फिर नहीं करूंगा मैं। कृपाकर नंदा को यह न

बताइए! उसे बहुत दुख होगा यह सुनकर।" देवदत्त चला जाता है। पर भय के कारण अधमरी वसू से अपने मन का संतुलन संभालते नहीं बनता। जरा-सी आवाज से ही वह कांप उठती है। देवदत्त बन्दूक लेकर उसे गोली मारने के लिए आ रहा है, इस विचार से वह सनकी जैसा बर्ताव करने लगती है। नींद की गोलियां खाकर भी उसे नींद नहीं आती। अन्त में भय के आवेश में वह एक जहरीली दवा खा लेती है, जिसे उसने तीन-चार महीने पहले ही कहीं से मंगाकर रख लिया था। दूसरे दिन सुबह सारे गांव में खबर फैल जाती है कि वसू ने आत्म-हत्या करने का प्रयत्न किया। देवदत्त स्वयं अपनेको बंगले में बन्द कर लेता है। वह ठीक से खाता-पीता भी नहीं। 'हां' और 'ना' के सिवा किसीसे कोई दूसरी बात ही नहीं करता। बापू को नंदा से यह ज्ञात हो ही गया था कि देवदत्त के मन में आत्म-हत्या के विचार हमेशा चक्कर काटते रहते हैं। वह कांप उठते हैं। उसीमें मथुरा नंदा के लिए जिद पकड़कर बैठ जाती है और नंदा को बुलाने के सिवा बापू के पास दूसरा उपाय नहीं रहता।

: ६२ :

कल्पना में इन सारे प्रसंगों को आंखों के सामने मूर्त करते समय नंदा मन-ही-मन कह रही थी कि मनुष्य की अपेक्षा उसके मनोविकार कितने बलवान होते हैं। "गांधी की अपेक्षा शेक्सपीयर ने ही मनुष्य को अधिक अच्छी तरह समझा था", दासबाबू की इस प्रिय उक्ति में कितना भयंकर सत्य भरा हुआ है। परन्तु वसू का पागल बदला और देवदत्त का अन्धा क्रोध, यह कोई परीक्षा के लिए नियुक्त किसी दुखांत नाटक के अध्ययन का विषय नहीं था। उसे उनका मुकाबला करना था और वह कैसे किया जाय, इस विचार में वह व्यग्र हो गई।

: ६३ :

स्नान से निपटकर नंदा वसू की तबीयत का हाल पूछने हस्पताल गई। उस समय ग्यारह बज रहे थे।

वसू के बिस्तर के पास खड़ी होकर प्यार-भरे किन्तु कातर स्वर में उसने पुकारा, "वसू।" पर उसे कोई उत्तर न मिला। वसू के हाथ-पैरों की बेचैनी से भरी हलचल अलबत्ता जारी थी। बीच ही में आंखें खोलकर वह क्षण-भर के लिए इधर-उधर देख रही थी, पर आसपास के लोगों को वह शायद पहचान नहीं पाती होगी! वसू की इस स्थिति को देखकर नंदा का हृदय भर आया। डाक्टर से थोड़ी देर बातें कर वह कमरे से बाहर जाने के इरादे में थी। इसी समय वसू के चेहरे पर उसे मंद मुस्कराहट दीखने लगी। वसू शायद होश में आ गई होगी। गहरी आवाज में उसने पुकारा, "नंदा!"

नंदा पुलकित होकर उसके पास गई। उसके बालों में अंगुलियां फेरने लगी। अजान बालक की तरह नंदा की ओर टुकुर-टुकुर देखती हुई वसू बुदबुदायी, "मैं जीना चाहती हूं, नंदा!" उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। उसके मुंह पर अपना प्यार-भरा हाथ फेरती हुई नंदा बोली, "पगली कहीं की! बहुत जल्दी अच्छी हो जायगी तू तो। पीछे की सब बातों को भुला दे, जिससे..."

नंदा के इन शब्दों को सुनते ही वसू का चेहरा एकदम बदल गया। उसके चेहरे की मुस्कराहट गायब हो गई। नज़र के भाले से नंदा को छेदती हुई वह चिल्लाई, "अरी पाखंडनी, ओ चुड़ैल, मेरी गृहस्थी को चौपट करने आई है यहां! चल, चली जा यहां से! चली जा! मैं कहती हूं, चली जा!"

डाक्टर ने नंदा को इशारे से बाहर जाने की सूचना दी।

विषण्ण मनःस्थिति में वह बंगले लौट आई। अब उसे दूसरी अग्निपरीक्षा से गुजरना था—देवदत्त से मिलना था। उससे कब मिलूं, इसका वह विचार करने लगी। इसी समय बापू जल्दी-जल्दी उससे मिलने आये। उसके हाथ में एक लिफाफा देते हुए वह बोले, "मैंने

देवदत्त को खबर दी है कि तू आई है। बहुत देर तक वह कुछ बोले ही नहीं। फिर तुझे देने के लिए उन्होंने यह पत्र मुझे दिया।"

लिफाफे के भीतर का पत्र खासा मोटा था, पर लिफाफे पर किसीका भी नाम नहीं था। उसके मन में यह शंका आई कि कहीं मुझसे मिलना टालने के लिए ही देवदत्तजी ने मुझे यह पत्र भेजा हो! बेचैन मन से उसने लिफाफे का पत्र बाहर निकाला।

पर, वे अक्षर तो देवदत्त के नहीं थे। किसी स्त्री के अक्षर लग रहे थे! घबराई हुई मनःस्थिति में ही वह उस पत्र को पढ़ने लगी:

: ६४ :

"चि० देवदत्त को प्रेमपूर्वक आशीस!

"इस पत्र के अक्षरों को देखते ही तुझे सिर से पैर तक आग लग जायगी। पत्र के टुकड़े-टुकड़े करके तू उन्हें हवा में फेंक देगा। इसलिए पहले ही दामन पसारकर तुझसे एक भीख मांगती हूं। मां के नाते नहीं—वह अधिकार तो मैंने कभीका खो दिया है—परंतु ईश्वर की दुनिया के एक अभागे मनुष्य के नाते। बेटा देवदत्त, मेरी इस कहानी को सुन लेने की कृपा करना। इस भिखारिन के कटोरे में दया का एक छोटा-सा यह टुकड़ा अवश्य डालना।

"'मेरे राजा बेटा', हां—पलने में लेटा हुआ अध-खुली आंखों से जब तू मुझसे बोलता, उस समय यही कहकर मैं तुझे संबोधन किया करती। मेरे राजा, वह दिन मेरे जीवन में उदित न होता तो बड़ा ही अच्छा होता! वह दिन—जिस दिन बंदूक लेकर तू मुझपर दौड़ पड़ा था, उस दिन नन्हीं मधुरा तेरे उस भयानक रूप को देखकर चिल्लाती हुई बेहोश हो गई थी...वह दिन!

"सात-आठ महीने हो रहे हैं। मन में यह निश्चय करके कि अपना यह काला मुंह फिर तुझे नहीं दिखाऊंगी, मैंने बिलासपुर छोड़ा—किसी-को भी साथ न लेकर। मैं कहां हूं, इसका तुझे या बहू को कुछ भी पता नहीं चलने दिया। परंतु प्रत्येक रात को जब सिरहाने पर सिर रखती तो

मन में आता कि उस दिन यदि मैं मर जाती तो इस भयंकर कष्ट से मुझे छुटकारा मिल जाता। मैं यह स्वीकार कर लेती कि देवदत्त की भरी हुई बंदूक मैंने सहज उठाई और वह अचानक चल गई। फिर तेरी गोद में सिर रखकर हमेशा के लिए आंखें बंद कर लेती!

"पर ऐसी मेरी किस्मत कहां? दुनिया की किसी भी मां ने अपने लड़के को जैसा पत्र न लिखा होगा, ऐसा पत्र लिखने को मैं जिन्दा रहूं, ईश्वर की ऐसी ही इच्छा थी। लोग कहते हैं कि मां की अपेक्षा बड़ा पूजनीय दूसरा नहीं। पर क्या मां-बाप और क्या पति-पत्नी, ये सब आखिर मनुष्य ही तो होते हैं! ऊपर के रिश्ते को अगर कुरेद दें तो भीतर बच रहती है सिर्फ मिट्टी—सादी मिट्टी नहीं! धधकनेवाली वासना के तेल से सनी हुई मिट्टी—बात-की-बात में भड़क उठनेवाली मिट्टी!

"बेटा, मेरे कारण तेरी जिंदगी बरबाद हो गई। तेरी दृष्टि से मैं बहुत बड़ी अपराधिनी हूं। पर एक बात मत भूल—लगभग सभी लोग कमोबेश अंश में अपराधी होते हैं। फर्क इतना ही होता है कि किसीके अपराध का ढिंढोरा चार लोगों में पिट जाता है और किसी-के अपराध का पता किसी को कानों कान नहीं हो पाता!

"मेरे जीवन को जो अमंगल पलटा मिला, उसके लिए मेरे ही बराबर तेरे पिता भी जिम्मेदार हैं। तू बन्दूक लेकर मुझपर दौड़ा, तब मुझे इतना ही कहना चाहिए था कि 'तू खुशी से मार दे मुझे।' पर तेरा अभियोग झूठा है। तेरे पिता का किसीने भी खून नहीं किया। वह अभी तक जीवित हैं!" पर उस समय तो मेरे होश-हवास गायब हो गये थे। मधुरा को बेहोश पड़ी हुई देखकर, मेरे मुंह से शब्द बाहर नहीं निकल पा रहा था।

"तेरे पिता अभी कुछ दिन पहले तक जीवित थे। बीस वर्ष पहले यह पत्र लिखकर कि मैं आत्महत्या कर रहा हूं, वह चंदनगढ़ गए होंगे। पर कगार पर खड़े होकर अपनी देह को सामने के दर्रे में फेंक देने का साहस उनसे न हुआ होगा! मैं उनकी भीरुता पर हंसती नहीं। प्राण देने का विचार मेरे मन में भी अनेक बार आया। पर सच बताती हूं तुझे... मनुष्य कितना भी दुखी हो, रोगी हो, दरिद्री हो, अभागा हो, उसका

सच्चा प्रेम होता है, जीवन पर !

"तेरे पिता इस बीच की अवधि में कहां थे, इसकी मुझे कल्पना नहीं। छः-सात वर्ष पहले मुझे वह अचानक दीख पड़े, प्रयाग में। मैं संगम में स्नान करने गई थी, वहां की भीड़ में वह दीखे। शरीर पर फटे वस्त्र पहने हुए यह पागल किसी समय मेरा पति था, यह स्वयं अपने से स्वीकार करना मेरे लिए बड़ा कठिन हो गया, पर मैं कितनी ही दुष्टा क्यों न होऊं, फिर भी पागल नहीं थी। उन्हें वहीं पर छोड़कर चल देना मुझसे नहीं बना। मैंने उन्हें पागलखाने में भरती करा दिया। उनके खर्च का प्रबंध कर दिया। आजकल मैं जो बार-बार तीर्थयात्रा को जाया करती थी, सो इस यात्रा का मेरा मुख्य तीर्थ होता था वह पागलखाना ! एक विश्वसनीय मुंशी और एक विश्वसनीय नौकरानी मेरे साथ रहा करते। उन दोनों ने मेरा दुःख महसूस किया। मेरा रहस्य सुरक्षित रखा।

"डाक्टर ने बहुत उपचार करके देखे, पर उन्हें लाभ नहीं हुआ। अंत में तो वह कुबेर पर आक्रमण करके उसकी सारी सम्पत्ति लूट लाने की बातें डाक्टर से करने लगे ! सम्पत्ति के पीछे उनके अत्यंत पागल हो जाने के कारण ही तो उनका, मेरा, तेरा, सभीका सत्यानाश हो गया !

"आटा है तो नमक नहीं, ऐसे गरीब घर में तेरे पिता का जन्म हुआ। वहीं वह बढ़े। बिलासपुर के जमींदार के कुल में कोई लड़का नहीं था। इसलिए वह वहां गोद लिये गए। आगे इस दत्तक-विधान पर न्यायालय में अनेक बरसों तक झगड़ा चलता रहा। तेरे पिता अत्यंत सीधे-सादे और पूजा-पाठ में सदा निमग्न रहनेवाले व्यक्ति थे। कहते हैं कि बचपन में किसी ज्योतिषी ने उन्हें बड़ा धनयोग बताया था। दत्तक आने पर उन्हें उस ज्योतिषी का भविष्य जंच गया, पर इसके कारण ही मंत्र-तंत्र, जादू-टोना, ज्योतिष-रमल, साधु-बैरागी, इन सबके प्रति उनकी अंधश्रद्धा बढ़ती गई। इस भय से कि दत्तक-विधान का फैसला उनके विरुद्ध हो न जाय और उनके हाथ में फिर भिक्षा की झोली न आ जाय, वह हमेशा उदास रहते। मैं दर-दर जाकर भीख मांग रहा हूं, ऐसे सपने

उन्हें दिखाई देते। आधी रात को पसीने से तरबतर वह जाग उठते, चिन्ता में डूबे बैठे रहते। गांधीजी के स्वतंत्रता-आन्दोलन के कारण तो उनका यह भय चरम सीमा को पहुंच गया। बापू जैसे लोग अपने भाषणों में कहा करते थे कि स्वराज्य आने के बाद सारी रियासतें और जमींदारियां खत्म हो जायंगी। उन भाषणों को पढ़कर तेरे पिता एकदम बौखला उठते।

"किसीसे उन्हें पता चला कि हिमालय में रहनेवाले एक साधु के पास पारस पत्थर है। वह भागते हुए हिमालय गये। वहां खूब मारे-मारे फिरे। जब लौटे तो एक गोरे-चिट्टे जवान पट्ठे साधु को अपने साथ ले आये। अपनी नाभि से उसने उन्हें लक्ष्मी की मूर्ति निकालकर दिखाई थी। उसे देखकर इस आशा से कि साधु महाराज मंत्र-तंत्र द्वारा उनपर रुपयों की वर्षा कर देंगे, वह उसे ले आये। वह साधु आया, और...

"तेरे पिता के इस पागलपन को और उसके कारण उनके द्वारा होनेवाली अपनी उपेक्षा को मैं जैसे-तैसे बरदाश्त कर रही थी। लेकिन कुबेर की संपत्ति को प्राप्त करने के लिए इस साधु ने तेरे पिता को जिन नियमों का पालन करने के लिए मजबूर किया था, उनमें था पहला नियम ब्रह्मचर्य का पालन।

"होश में आने के बाद से अपनी किसी भी इच्छा को रोकना मुझे किसीने भी नहीं सिखाया था और तेरे पिता इन साधु महाराज के कारण मेरी हवा से भी दूर रहने लगे। आज भी मुझे वह दिन याद आता है। विषम-ज्वर से मैं तड़प रही थी। तेरे पिता कमरे में आये, पर मेरे पास नहीं बैठे। मेरे बदन पर उन्होंने हाथ नहीं फेरा। "छां-छूं" कुछ इस तरह बुदबुदाते हुए चुटकी-भर भभूत उन्होंने दूर से मुझपर फेंक दी और "अब इसे कलिकाल का भी डर नहीं," यों कहकर वह बाहर चले गये।

"समागम, यह पति-पत्नी के मनों को जोड़नेवाली एक नाजुक कड़ी होती है। उसीको तेरे पिता ने तोड़ डाला! निष्प्रेम जीवन के कारण मेरी सारी भावनाएं जल गईं। समागम के अलावा पति-पत्नी को

एक-दूसरे के साथ मिलकर रहने के लिए सहानुभूति की सदैव आवश्यकता होती है, पर इस बात की तेरे पिता को कोई परवा नहीं थी। सुख के लिए भूखा शरीर और प्रेम के लिए प्यासा मन, इन्होंने मेरा जीवन दूभर कर दिया। मेरी गृहस्थी में जहर घोलनेवाले उस साधु से बदला लेने का मैंने निश्चय किया। वह मैंने लिया, उसे मोह में फंसाकर! पाप के गहरे दर्रे में उसे धकेलकर उसके पीछे-पीछे मैं भी गड़गड़ाती हुई उसी दर्रे में चली गई।

"इतना तो जैसे-तैसे लिखा। अब अपने अधःपतन की आगे की कहानी किन शब्दों में मैं तुझे बताऊं? जिसको करने की शर्म नहीं आती, उसे कहने के लिए मनुष्य क्यों शर्माता है? क्या पाप उलक की तरह होता है? क्या अंधेरा ही उसे अच्छा लगता है?

"तू मुझे बेशर्म कह, परन्तु इस अंतिम घड़ी में तुझसे मैं कुछ भी छिपाकर नहीं रखना चाहती। उस साधु से बदला ले लेने के संतोष में मेरा दिन गुजर जाता, पर जब रात आती तब सुख के लिए लालायित शरीर उस साधु के गाढ़ आलिंगन की कल्पना से खिल उठता। मांत्रिक की पकड़ से छटकी हुई नागिन की तरह मेरी वासना अनिबंध हो जाती, यहां तक कि कुछ समय के लिए स्वयं मुझे ही उससे डर लगने लगता।

"उस साधु के गेरुए वस्त्र के तले हमारा पाप बहुत दिनों तक छिपा रहा, पर अंत में तेरे भोले पिता को भी उसका शक हो गया। हम दोनों पर उन्होंने छिपी नजर रखी। उस साधु को तुरन्त ही अपना बधना-बोरिया समेटकर भाग जाना पड़ा।

"यह कांड शुरू ही था, तभी से गांव के एक प्रौढ़ और लोकप्रिय डाक्टर से मेरी मित्रता हो गई थी। पाप करनेवालों के लिए होशियार वकील या डाक्टर एक बड़ा सहारा होता है। वह डाक्टर अपने काम का पारिश्रमिक पैसों में नहीं चाहता था। बस, फिर क्या था? मेरा स्वास्थ्य बार-बार बिगड़ने लगा। बंबई और पूना के बड़े-बड़े डाक्टर भी मेरे रोग का निदान न कर पाये। रात-बेरात मुझे डाक्टर की जरूरत पड़ने लगी। इसलिए घर-गृहस्थीवाले ये डाक्टर महाशय हमारे बंगले में ही रहने लगे।

"जंगल में लगी हुई आग क्या कभी जल्दी बुझी है ? मेरी बीमारी का सच्चा स्वरूप शीघ्र ही तेरे पिता के ध्यान में आ गया। बेहद संपत्ति प्राप्त करने के उनके सारे ईश्वरीय प्रयत्न बेकार हो गये थे। वह स्वयं अपने पर और सारी दुनिया पर चिढ़ उठे थे। उस आग में मेरे और डाक्टर के संबंध ने तेल झोंक दिया। "चंदनगढ़ पर जाकर मैं आत्म-हत्या कर रहा हूं।" ऐसा पत्र पीछे छोड़कर वह एक दिन गायब हो गये।

"उस समय तू नौ-दस वर्ष का था। इस भय से कि डाक्टर से मेरे मेलजोल का अर्थ शीघ्र ही तेरी समझ में आने लगेगा, मैं बेचैन हो उठी। मैंने डाक्टर से सलाह पूछी। वह स्वयं खूब शराब पिया करते थे। मुझे भी उससे कोई परहेज नहीं था। तेरे मन को बोथरा बना देने के लिए हमारी बैठक में उन्होंने तुझे शामिल कर लिया। अपने हाथ से शराब का पहला प्याला मैंने तेरे हाथ में दिया। अब मैं हमेशा के लिए निर्भय हो गई, ऐसा मुझे लगा। शराब की तरह ही पाप का भी नशा चढ़ता है, यह सच है। उस नशे में मुझ चांडालिनी ने अपने पेट के बालक को एक भयंकर व्यसन के गर्त में धकेल दिया।

"नरक के राजमार्ग से इस तरह दौड़ रही थी मैं, पर बीच-बीच में पीछे छूटी हुई स्वर्ग की पगडंडी की मुझे याद हो आती। बापू की पत्नी से ईर्ष्या होती। पति का एक पैर हमेशा जेल में, परन्तु सावित्री-बाई धुले हुए चावल की तरह रही। बेचारी को नई साड़ी कभी नसीब होती—बड़े लम्बे अरसे के बाद। फिर भी जब देखो तब वह हँसमुख ही दीखती। उसके तृप्त मन की पहेली मुझसे कभी हल न हो पाई, पर कभी एकाध बार लगता कि इस बाई का मन ईश्वर ने मुझे क्यों नहीं दिया ?

"पैसों के कारण पाप पच जाते हैं, पर मन सड़ जाते हैं।

"तेरे हाथ में शराब का प्याला देते समय मेरा हाथ गल क्यों नहीं गया ? हर बात में दूसरे सिरे पर पहुंचने का तेरा स्वभाव था। तेरे इस अतिरेकी स्वभाव से मैं पूरी तरह परिचित थी। पांचवें वर्ष तुझे तैरना सिखाया और तुरन्त ही तू मोट पर से कुएं में कूदने लगा। शरारती घोड़ा

तुझे अधिक अच्छा लगता। तू उसपर जब जमकर सवार होता तो मेरे मन की एक मां नमक और राई से तेरी नजर उतारती, और दूसरी मां इस भय से व्याकुल हो जाती कि तुझे कहीं कोई दुर्घटना न हो जाय। पर ये दोनों मां उस अमंगल दिन को मर गई थीं। जो बच रही थी, वह थी सिर्फ एक चड़ैल।

"तू जमींदारी का वारिस था। बात-की-बात में अनेक मनमौजी दोस्त तेरे आस-पास इकट्ठा हो गये। किसी भी बात में अंतिम सिरे पर पहुंचने का तेरा स्वभाव तो था ही। केवल पांच-छ: वर्ष में ही तू पूरी तरह से मेरे हाथ से बाहर निकल गया। तेरी चिंता में मेरा हृदय कटा जा रहा था, पर तुझे उपदेश के दो शब्द कहने का मेरा मुंह कहां था ?

"आगे बापू के मोहन से तेरी पहचान हुई। यह देख मेरा जी ज़रा ठंडा हुआ। मोहन की संगति से तू अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ने लगा। वह सितार बहुत अच्छी बजाता था। तू सितार सीखने लगा। तुझे संगीत में रुचि हो गई। इन सारे अच्छे शौकों में तेरा शराब का व्यसन धीरे-धीरे छूट जायगा, ऐसे मन के लड्डू मैं खा रही थी। पर भाग्य ने मुझे धोखा दिया। तुझे बचाने के प्रयत्न में मोहन स्वयं मोटर के नीचे दब गया। उसके चल बसने पर तेरा बर्ताव अनिर्बंध हो गया—उसमें कोई मर्यादा नहीं रह गई।

"मेरे राजा, मैं तेरी बहुत बड़ी अपराधिन हूं। पति के नाते तेरे पिता का मेरे प्रति कुछ कर्तव्य था। वह उन्होंने पूरा नहीं किया। इसलिए मैं उनपर उलट गई। उनसे बदला लेने गई। पर वह बदला मुझीपर उलटा पड़ा, तेरे स्वच्छंद मन और मेरी नष्ट गृहस्थी के रूप में। तेरे पिता से मैं कर्तव्य की अपेक्षा करती थी, पर तेरे प्रति मां के नाते मेरा भी कुछ कर्तव्य है, यह मैं बड़ी सरलता से भूल गई थी। वासना अंधी होती है, उसे कर्तव्य कभी नहीं दीखता, यह एकदम सच है।

"यह मेरा तुझे आखिरी पत्र है। इसलिए इतना लंबा लिखना पड़ा है। यह सब पढ़कर अपनी इस अभागिनी मां के लिए तेरी आंखों से

दो-चार दया की बूंद इस पत्र पर गिर जायं, तो उसके कलेजे में जलनेवाली आग कम-से-कम थोड़ी शांत हो जायेगी।

"मां के नाते नहीं, बल्कि जीवन के कटु अनुभव जिसे मिले हैं, ऐसी एक स्त्री के नाते मैं तुझसे एक भीख मांगती हूं। पिछली सब काली स्याह बातों को तू अपने मन की पट्टी से पोंछ डाल। शिकार करते समय जो साहस तू हमेशा दिखाता आया है, वही साहस हर मोह के क्षण में अपने शरीर में संचरित होने दे। वसू पगली है, वह तेरे मन को नहीं जान पाई। पर उसके प्रति तेरा कुछ कर्तव्य है। उसकी ओर ध्यान दे। कम-से-कम मधु के लिए तो और भी। मेरे, तेरे और वसू के अपराधों के लिए उस मासूम बच्ची को क्यों प्रायश्चित्त भोगना पड़े ?

"देह में बुखार के रहने तक मनुष्य बकता रहता है। बुखार उतरा कि उसे थकावट आ जाती है कि वह चुपचाप पड़ा रहे। मेरी स्थिति अब इसी तरह की हो गई है।

"पिछले सप्ताह तेरे पिताजी का देहान्त हो गया, पागलखाने में। अब सुबह गंगास्नान के लिए जाकर कलेजे की आग को हमेशा के लिए बुझा देने को मैं स्वतंत्र हो गई हूं। एक ही शंका लगातार मन को चुभ रही है। क्या इस पापिन को गंगा मैया भी प्रेम से अपने पेट में समा लेगी ? सच, मरने पर नरक में भी कम-से-कम मुझे स्थान मिलेगा क्या ? वहां सड़ते पड़े हुए अनेक पापी प्राणी मेरी आहट पाते ही तुरन्त दरवाजा बन्द तो नहीं कर लेंगे ? यही डर बना रहता है।

"मेरे राजा बेटा, तेरे मां थी, यह भूल जा, पर एक बात ध्यान में रख—जीवन में फूलना-फलना होता है—जलना होता है, पर मेरी तरह सड़ना नहीं होता।

तेरी

अभागिनी मां"

सफर से मंदा का बदन थक गया था। वसू की हालत देखकर उसके दिल को धक्का लगा था। ऐसी स्थिति में यह पत्र उसके हाथ में पड़ा। उसे पढ़कर वह बिलकुल सन्नाटे में आ गई। रणभूमि में जिस तरह छिन्न-भिन्न लाशों के रक्त-मांस का छिड़काव पड़ा रहता है, उसी तरह जीवन में सर्वत्र नंग-धड़ंग वासनाओं का मिश्रण फैला हुआ है, इस विचार से उसका मस्तिष्क बधिर हो गया। इस घिनौने मिश्रण को रौंदते हुए ही प्रत्येक को यह जीवन-यात्रा करनी पड़ती है. यह महसूस करके उसका सारा शरीर सिहर उठा।

खाने के लिए उसका मन नहीं कर रहा था, पर मधुरा की खातिर वह खाने पर बैठी। जैसे-तैसे चार कौर उसने पेट में डाले। थोड़ा आराम किये बगैर देवदत्त से बातें करने की शक्ति उसमें नहीं आयगी, यह उसके ध्यान में आया। मधुरा के नजदीक आकर वह लेट गई। उससे प्यारी-प्यारी बातें करती हुई मधुरा परियों के राज्य में खेलने चली गई। पर मंदा की पलकें किसी भी तरह बंद नहीं हो रही थीं :

देवदत्त की मां का वह पत्र—जितनी अमंगल, उतनी ही काली उसकी कहानी। यह सब सच होगा क्या ? लेकिन यह सब आखिर झूठ भी क्यों होगा ? स्वयं की वकालत कैसी की जाय, यह प्रत्येक मनुष्य जन्मगत ही जानता है। इसलिए इस पत्र में आत्म-समर्थन होगा—नहीं होगा, यह बात नहीं। वह छोड़ दिया जाय और देवदत्त के पिता का भी कोई पक्ष होगा, यह मान लिया जाय, फिर भी इस पत्र से प्रकट होनेवाले जीवन का स्वरूप कितना बीभत्स और कितना भीषण है ? मनुष्य एक बार मनुष्यता से गिर जाता है, तो वह सिर्फ पशु नहीं होता, वह राक्षस बनता जाता है।

बगल में सोई हुई मधुरा की ओर आंखें भरकर देखते-देखते उसके मन में आया, किसी समय देवदत्त की मां भी इस लड़की जैसी ही मासूम थी, पर मनुष्य हमेशा छोटा नहीं रह सकता। उम्र के साथ उसके शरीर और मन की भूखें बढ़ती जाती हैं। उन्हें तृप्त करने के

लिए किसी-न-किसी मार्ग से उसे आगे जाना ही पड़ता है। इस सफर में हर मोड़ पर नाना प्रकार के मोह छिपकर बैठे होते हैं। उन सबको टालकर जाना यह साधारण मनुष्य की दृष्टि से कोई सरल काम नहीं।

उसका विचार-चक्र एकदम घूम गया। देवदत्त की मां के प्रति उसके मन में जो घृणा पैदा हो गई थी, उसमें करुणा का एक प्रवाह आ मिला। उसका मन कहने लगा, अपने जीवन को अपने मन के माफिक बनाने के लिए इस दुनिया में मनुष्य स्वतंत्र कहां है? वह कभी भाग्य का तो कभी समाज का खिलौना हो जाता है। वह कभी स्वयं अपने तो कभी दूसरों के मनोविकारों का भक्ष्य बन जाता है। उसे कभी पूर्वजों के तो कभी स्वयं अपने पापों का प्रायश्चित्त भोगना पड़ता है। बेचारा जन्म लेता है सो भी बिलकुल वासनाओं के चक्रव्यूह में फंसकर।

चक्रव्यूह?

विचार-चक्र अब उलटी दिशा में घूमने लगा—इस चक्रव्यूह को भेदने की शक्ति परमेश्वर ने पशु-पक्षियों को नहीं दी। वे प्राकृतिक वासनाओं के दास होते हैं, पर मनुष्य बड़ा भाग्यवान प्राणी है। उसकी बुद्धि अच्छा क्या है, बुरा क्या है, इसे परख सकती है। वासना की आंधी से भी उसके हृदय की भावना का अक्षयदीप नहीं बुझता। प्राकृतिक वासनाओं की तरह संस्कृति की प्रेरणाओं की विरासत भी उसे प्राप्त हुई होती है। देवदत्त की मां की कहानी पढ़कर उस पर कितनी ही दया आये, फिर भी जो हुआ, उसके लिए दूसरों की अपेक्षा वही अधिक जिम्मेदार है। शरीर की भूख उसे झट-से महसूस हो गई, पर आत्मा की पुकार उसे कभी सुनाई ही नहीं पड़ी!

ईश्वर की कृपा से सोने जैसा लड़का मिला था, उसे। कल्पवृक्ष की इस कली को विकसित करने के लिए वह खून-पसीना एक कर देती तो? तो वह खून यों बेकाबू होकर क्या व्यभिचार के घूरे में रमता रहता?

एक पाप के पेट से हजार पाप जन्म लेते हैं। अपने मन की कद्र न करनेवाले पति से दूर हो जाने का साहस देवदत्त की मां से न हुआ। सुख और विलास की ओर पीठ फेर लेने के लिए वह तैयार नहीं थी। वसू ने भी वही गलती की। देवदत्त पर प्रेम न कर उसके प्रेम की वह

अपेक्षा करती रही। शहद में गिरी हुई मक्खी की तरह सुरक्षित जीवन से वह चिपककर बैठ गई। इस दुनिया में मनुष्य परतंत्र है, यह पूर्ण सत्य नहीं, अर्ध-सत्य है। वह मन से दुर्बल—बहुत ही दुर्बल—है, यह उस सत्य का दूसरा भाग है।

"मौसी।" नींद में मधुरा चिल्ला पड़ी। नंदा ने कसकर सीने से चिपका लिया और उसकी चुम्मी लेती हुई वह बुदबुदाई, "नहीं, तुझे मैं यों दुर्बल नहीं होने दूंगी।"

: ६६ :

तीसरे पहर मधुरा की अंगुली पकड़कर नंदा देवदत्त के बंगले की ओर जाने लगी। वह कहां जा रही है, इसकी कल्पना आते ही मधुरा एकदम रुक गई। नंदा की ओर सहमी नजर से देखती हुई बोली, "वहां राक्षस रहता है, मौसी। मां ने कहा है कि उधर कभी नहीं आना चाहिए।"

"पगली कहीं की! अरी, राक्षस तो पहाड़ के बराबर बड़ा होता है। उसका सिर आसमान को छूता है। अपने छोटे बंगले में तो उससे घुसा भी नहीं जायगा। उस बंगले में हैं तेरे पिताजी। कितनी बड़ी शेरनी मारी है उन्होंने परसों। वह खूब सारे खिलौने ला देनेवाले हैं तुझे।"

मधुरा नंदा के साथ चलने लगी। चलते-चलते बीच ही में वह नंदा को एक निगाह से देख लेती। उसमें भय की रेखा अनजाने प्रकट हो जाती।

देवदत्त के बैठकखाने में जब नंदा ने प्रवेश किया तब देवदत्त वहां नहीं था। नौकर खबर देने गया। बैठकखाने के मध्य भाग में जाकर नंदा ने चारों तरफ निगाह दौड़ाई। सब चीजें जहां-की-तहां थीं। बुद्ध की प्रतिमा भी। क्षण-भर के लिए उसे लगा कि वह पहले-पहल जब इस बैठकखाने में चाय पीने आई थी, उस क्षण के समीप ही काल-पुरुष आकर रुक गया है।

नहीं, वह रुका नहीं था। दो कोनों में रखे हुए हैमिंग्वे और विवेकानंद के भव्य चित्र आज बिल्कुल नजदीक-नजदीक रखे हुए नजर आ रहे थे, मानो जीवन के दो अलग-अलग मार्गों से गए भाई-भाई ही थे वे। उन चित्रों के सामने बंदूक और सितार एक दूसरे से सटे हुए पड़े थे, मायके से आई हुई और बातें करते-करते सो रही दो बहनों की तरह।

देवदत्त बैठकखाने में आया। उसके सिर पर अभी तक पट्टी बंधी हुई थी। उसके आने पर मधुरा ने उसकी ओर डरते-डरते देखा। तुरंत ही वह नंदा से चिपक गई। नीचे देखने लगी। "आ बेटा, आ, आ", कहते हुए देवदत्त के हाथ में मधुरा का हाथ दे दिया। मधुरा को गोद में उठाकर वह कोच पर बैठ गया। उन दोनों की ओर सराहना-भरी दृष्टि से देखती हुई नंदा सामने के कोच पर बैठ गई।

देवदत्त के सिर पर बंधी हुई पट्टी की ओर देखते हुए मधुरा ने पूछा, "क्या बहुत लगा है आपको, भाईजी ?"

देवदत्त ने हंसते हुए उत्तर दिया, "नहीं तो ! थोड़ी खरोंच लग गई है।"

तालियां बजाती हुई मधुरा चिल्लाई, "झूठ ! बिलकुल झूठ ! आपको कितना लगा है, यह मैं जानती हूं।" फिर अपनी बड़ी-बड़ी आंखों को और अधिक बड़ी करते हुए उसने प्रश्न किया, "आपके बदन पर शेरनी झपट पड़ी थी न ?"

"हां।"

"आपको डर नहीं लगा ?"

"लगा तो था।"

"फिर क्या किया आपने ?"

"गुड मार्निंग, मिसेस टाईगर, यों कहकर..."

रूठने का नाटक करती हुई मधुरा बीच ही में बोली, "ऊं हूं... मैं कोई अब बिलकुल बच्ची नहीं। सच-सच बताइए मुझे, नहीं तो मैं नहीं..."

"अच्छा, भई। सच बताता हूं—मैंने बन्दूक उठाई..."

"मुझे बन्दूक से डर लगता है, भाईजी।"

"डरपोक कहीं की !" ऐसा कहकर देवदत्त ने उसका मुंह सहलाया, पीठ थपथपाई, फिर उसकी अंगुली पकड़कर वह उन दो चित्रों के पास उसे ले गया। झुककर मधुरा का हाथ बन्दूक पर उसने बार-बार फिराया। मधुरा हंस पड़ी। निडर निगाह से देवदत्त की ओर देखते हुए उसने पूछा :

"मुझे बन्दूक चलाना सिखा दोगे ?"

उसका मस्तक थपथपाता हुआ देवदत्त बोला, "जरूर।"

मधुरा खुशी में थी। बन्दूक के नजदीक रखे हुए सितार के तारों पर उसने अपनी नाजुक अंगुलियां फेरीं। छोटे-छोटे पक्षी क्षण भर के लिए चहकें, इस तरह की मधुर झंकार हुई। मधुरा ने गर्दन फेरकर प्रश्न किया :

"सितार बजाना सिखा दोगे मुझे, भाईजी ?"

"मुझे कहां ठीक से बजाना आता है अभी।"

"ऐसा क्यों, भाईजी ? आपने मुझे सितार न सिखाया तो, मैं कुट्टी कर लूंगी आपसे।"

नंदा की ओर हंसकर देखता हुआ देवदत्त बोला, "कुट्टी की धमकी के आगे परमेश्वर को भी शरण चिट्ठी लिख देनी पड़ती है।" मधुरा को नजदीक खींचता हुआ गंभीरता से वह बोला, "सितार सिखा दूंगा मैं तुझे, पर मेरी फीस देनी पड़ेगी।"

"फीस ?"

"हां, वह है दो चुम्मियां। एक इस गाल की और एक इस गाल की।"

मधुरा शरमा गई, पर देवदत्त कभीका झुक चुका था। उसने जल्दी-जल्दी उसके दो चुम्बन लिये। दोनों की ही नजरों से नजर न मिलाकर, मधुरा खरगोश के बच्चे की तरह बैठकखाने से भाग गई।

: ६७ :

मथुरा ने जो विनोदी वातावरण निर्मित किया था, वह उसके जाते ही बैठकखाने से तुरन्त चला गया।

दोनों ही अकड़े हुए मनों से एक-दूसरे के सामने बैठे रहे, मंदिर के प्रांगण की भग्न मूर्तियों की तरह। बातें तो बहुत करनी थीं—पर्वत पार करना था, पर पगडंडी कहीं भी नजर नहीं आ रही थी।

यह विचित्र शांति दोनों को ही असहनीय हो उठी। अंत में हँसने का निष्फल प्रयत्न करते हुए देवदत्त ने पूछा, 'क्या मेरे लिए तुम वापस आई ?" नंदा ने नकार-सूचक गर्दन हिलाई। "तो क्या मधु के लिए, वसू के लिए अथवा बापू के लिए ?"

"अं...हं...! स्वयं अपने लिए।"

यह उत्तर बिलकुल अनपेक्षित था, निरभ्र आकाश में बिजली की चमक की तरह। पाताल से आनेवाली प्रतिध्वनि की तरह देवदत्त के मुंह से अस्पष्ट उद्‌गार निकल पड़ा, "स्वयं अपने लिए ?"

"हां, मेरा मन यहां उलझा हुआ है, इसीलिए।"

"पगली कहीं की ! जैसे आई हो उसी तरह लौट जाओ, नंदा, उलझे हुए मन को छुड़ाकर।"

"उलझा हुआ मन, कंटीले तार में उलझा हुआ आंचल नहीं है, देवदत्तजी। मनुष्य का मन उससे बिना पूछे कहीं भी उलझ जाता है। वहां से वह आसानी से नहीं निकलता। उसे छुड़ा पाना यदि आसान होता, तो अभी तक आप नंदा को भूल गए होते। सच बताइए। ईश्वर की सौगंध खाकर कहिए। इस महीने में कितनी बार मुझे याद किया आपने ? और किसलिए ?"

मुक्त हास्य करता हुआ देवदत्त बोला, "फिजूल एम० ए० पास किया तुमने। एल०-एल० बी० हो जातीं तो वकालत खूब चलती तुम्हारी।"

परन्तु उसका वह हास्य तुरन्त ही विलुप्त हो गया। गंभीर स्वर से वह बोला, 'मैंने तुमसे जाने को कहा, सो तुम्हारे ही भले के लिए।

मनुष्य को अपने मन को कहीं भी उलझने नहीं देना चाहिए, यह आज की दुनिया का तत्वज्ञान है। अलिप्तता सुख का राजमार्ग है, ऐसा आजकल के ऋषि-मुनि कहते हैं।"

"आप जानते हैं, यह राजमार्ग अंत में कहां जाता है ? वह जाता है भावनाओं के श्मशान में, जहां एक भी फूल नहीं खिलता ऐसे रेगिस्तान में। इस अलिप्तता के कारण ही जब मोहन गया तब बापू के घर मामूली मातमपुरसी के लिए भी आप नहीं गए। है न सच ? जाते तो शायद आपका जीवन बिलकुल बदल जाता।"

"मेरा जीवन बदल जाता ?" देवदत्त ने चकित होकर प्रश्न किया।

"हां, मोहन की मां के पास संवेदना प्रकट करने यदि आप जाते तो आपको यह महसूस होता कि मोहनकी कमी को पूरा कर देना आपका कर्तव्य है। यह मानकर कि जो गया वह देवदत्त था और जो बच गया वह मोहन है, बापू को पत्नी उस धक्के से संभल जाती। उन फरिश्तों की संगति में आपके भीतर के राक्षस को बोरिया-बंधना समेट लेना पड़ता। मां-बाप का जो स्नेह आपको नहीं मिल पाया था, वह बापू के घर मिल जाता। आपमें जो-जो अच्छाइयां हैं, वे सब उस स्नेह की नमी से विकसित हो जातीं, उनपर बहार आ जाती।"

पुरवा बरखा की तरह नंदा की बातें देवदत्त को लगीं। अपने मन की मिट्टी की खुशबू से मस्त होकर वह कुछ क्षण के लिए स्तब्ध रहा। फिर अपने-आपसे बुदबुदाया, 'हो जाता' और 'है'। इसमें कितना फर्क है। 'स्वर्ग' और 'नर्क'। तुरन्त ही नंदा की ओर देखते हुए उसने प्रश्न किया, "उन दोनों के दुख में भागीदार होकर क्या मैं सुखी हो जाता ?"

"दूसरों का दुख बांट लेने में कितना आनंद भरा है..."

"यह तोतारटंत मैं अनेक बार सुन चुका है।"

"पिंजड़े के तोते के बोल नहीं हैं ये, देवदत्तजी। घायल हुए पक्षी की वेदना का गीत है यह।"

कातर स्वर से देवदत्त बोला, "क्षमा कर दो मुझे। मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए था।" स्निग्ध दृष्टि से उसको सांत्वना देते हुए देवदत्त

ने मृदु स्वर में पूछा, "क्या तुम भी मेरी तरह ही दुखी हो ?"

"इस समय नहीं, पर यहां आने से पहले थी, इसलिए कि मृत्यु ने मेरे सुन्दर स्वप्न को चकनाचूर कर दिया था। परन्तु यहां आने के बाद में अपना दुःख भूल गई—आपका दुःख देखकर। यहां आई उस समय तक मैं अपने-आपमें ही उलझी हुई थी। देवदत्तजी, मनुष्य का पहला प्रेम स्वयं अपने पर होता है। इसमें अस्वाभाविक कुछ भी नहीं, पर यह प्रेम अंधा होता है, अहंकारी होता है। वह आठों पहर आत्म-पूजा में रत रहता है। इस कारण स्वयं पर प्रेम करते-करते मनुष्य स्वयं के क्षुद्र सुख-दुखों का हमेशा के लिए कैदी बन जाता है। आपके कारण इस आजन्म कारावास से छुटकारा मिल गया मुझे।"

"स्वयं पर प्रेम करते-करते मनुष्य अंत में स्वयं के सुख-दुखों का हमेशा के लिए कैदी बन जाता है।" नंदा के ये शब्द देवदत्त के मन में निनादित होते रहे, गोल गुम्बज के बारंबार प्रतिध्वनित होनेवाली आवाज की तरह।

सारा साहस बटोरकर नंदा बोली, "थोड़ा स्पष्ट कहती हूं, देवदत्तजी। नाराज न होना। आप और वसू इसी तरह स्वयं के कैदी होकर बैठे हैं। स्वयं को भूलकर दूसरे पर प्रेम करने का आनंद आपने कभी नहीं चखा। वसू ने प्रेम किया आपके पैसों पर, आपकी प्रतिष्ठा पर! आपने प्रेम किया उसके रूप पर, उसके गले पर। इतने वर्षों में वसू को सच्चे देवदत्त का दर्शन नहीं हुआ। देवदत्त ने सच्ची वसू को आंखें भरकर नहीं देखा। उसे मिले व्यसनों के शिकार अनिर्बंध देवदत्त। देवदत्त को मिली, एक सुंदर यंत्र-संचालित गुड़िया! दूसरों के दुख का ज्ञान दो हृदयों को जोड़नेवाला सबसे निकट का रास्ता है, यह आप दोनों..." यह सोचकर कि वह बहुत ज्यादा कह गई, वह एकदम रुक गई।

देवदत्त कुछ देर के लिए चितामग्न हो गया। फिर सामने रखे विवेकानंद के चित्र की ओर देखता हुआ वह बोला, "वसू के दुःख को मुझे जान लेना चाहिए था, यही न ?"

"हां, और उसे जानकर उसे हलका करना चाहिए था आपको।"

"मेरे दुःख की उसे तिलमात्र परवा न होते हुए भी ?"

"प्रेम सौदा नहीं है, देवदत्तजी। वह ईश्वरीय वरदान है—प्रकाश की तरह, वर्षा की तरह !"

"तुम्हारी तरह ?" प्रसन्नता से हंसता हुआ देवदत्त बोला।

नंदा के भीतर जिस पंडिता ने अभी तक संचार किया था, वह क्षणार्ध में अदृश्य हो गई। देवदत्त के उस उद्‌गार ने उसके मन पर मोरपंख फेर दिये। पर इसी समय शरमाकर वह कोच की दूसरी ओर खिसक गई। अनजाने उसकी नजर नीचे झुक गई।

देवदत्त हंसता हुआ बोला, "लाजवंती की लता से क्या एक प्रश्न पूछ सकता हूं ?"

उसकी आंखों में आंखें डालकर नंदा ने स्वीकारात्मक गर्दन हिलाई।

"क्या तुम्हारा मुझपर प्रेम है ?"

"है !" उसके स्वर में कंपकंपी नहीं थी। चेहरे पर संकोच नहीं था। उसके इस स्पष्ट उत्तर के आगे क्या बोले, यह देवदत्त को सूझ नहीं पड़ा। मुस्कराती हुई नंदा बोली, "नंदा का आपपर प्रेम है, पर वह आपके प्रेम में पड़ी नहीं है। प्रेम में पड़नेवाला वासना के भंवर में फंस जाता है, अथवा भावना की बाढ़ में बह जाता है। सिर्फ प्रेम करनेवाला किनारे पर सुरक्षित रहता है। मैं आपके प्रेम में पड़ जाती तो अभी बंबई में ही बैठी रहती, यह चिंता करती हुई कि अपनी राह के कांटे वसू को किस तरह निकाल फैकूं ? यह पता चलते ही कि वसू बीमार है, मैं यहां दौड़कर न आती !"

"पर मुझ जैसे व्यसनी मनुष्य पर प्रेम करते समय तुम डरी नहीं ?"

"आपके व्यसन आपकी उत्कटता से पैदा हुए हैं ! इसीलिए हाथ जोड़कर आपसे निवेदन करती हूं कि आप इस उत्कटता में उदारता को जोड़ दीजिए।"

"यह असंभव है। इतने साल से मैं बह रहा हूं। अब—जो गोली बन्दूक से छूट चुकती है, वह अपना निशाना नहीं बदल सकती ! व्यसनी मनुष्य शरीर का दास हो जाता है। नंदा, मेरी यह दासता उस दिन

चन्दनगढ़ में तुमने देखी थी न ?"

"जिस तरह वह देखा था, उसी तरह आपकी निश्चयी आत्मा का दर्शन भी मैं कर चुकी हूं। बीच में, अनेक महीने आपने शराब को स्पर्श तक नहीं किया था। व्यसन से छुटकारा पाने की कोशिश आप अकेले कर रहे थे ! अब आपका एक हाथ बापू के हाथ में है, दूसरा मेरे हाथ में है। जबतक वसू पूरी तरह स्वस्थ नहीं हो जाती, तबतक यहीं रहने का निश्चय किया है मैंने।"

"मेरी बात सुनो, नंदा। इस अभागे के लिए यह साहस मत करो। लोक-गंगा की तुम्हें कल्पना नहीं। उसमें कीचड़ अधिक और पानी कम ! तुम इधर रहोगी तो अकारण बदनाम हो जाओगी !"

नंदा शांत स्वर में बोली, "जो समाज स्त्री-पुरुष की शुद्ध मित्रता की कल्पना नहीं कर सकता, ऐसे समाज के संतोष के लिए क्या मैं आपको छोड़कर चली जाऊं? यह संभव नहीं, देवदत्तजी। इस समाज में प्रतिष्ठित बने अकड़कर कौन घूम रहे हैं ? गढ़ पर मिले आपके दोस्त जैसे लोग। इस समाज को यदि सच्ची नीति की परवा होती तो समय पर ही वह आपकी मां के नाकों दम कर देता ! यह समाज इंसानियत के मूल्य को यदि समझता तो बापू जैसे मनुष्य को वह देवघर में बैठाता। यह समाज रात-दिन किसकी पूजा कर रहा है, यह आप देख रहे हैं न ? पाप के पैसे से धनी हुए लोगों की चरणरज को भभूत की तरह मस्तक पर लगा रहा है यह समाज ! चारित्र्य से जिसका पूरा बैर है, ऐसे दो पैरों के पशु के सत्ताधारी होते ही उसके पैर चाटने को यह समाज दौड़ पड़ता है ! इस समाज से डरूं ? किसलिए ? वह कुछ नहीं। वसू के पूर्ण स्वस्थ होते तक मैं यहीं रहूंगी। इसके लिए जो भी भोगना पड़ेगा, वह मैं खुशी से बरदाश्त करूंगी !

"और वसू के अच्छे हो जाने पर तुम क्या करोगी ?"

"मैं अपने मार्ग से आगे जाऊंगी। उस मार्ग पर जो मिलेंगे, उनके आंसू अगर पोंछ सकी तो अपने आंचल से पोंछूंगी। किसीके प्रेम में पड़ गई, तो उससे विवाह कर लूंगी। धूप-वर्षा, आंधी-तूफान में उसका साथ दूंगी। यदि मुझे लड़की हुई, तो वह क्षण-भर के लिए रुकी,

फिर हंसते हुए बोली, "तो उसका नाम माधुरी रखूंगी। किसी भाईदूज को आपको आग्रह से बुलाऊंगी, और आपसे ऐसी भेंट पाने का हठ करूंगी..."

सुखद झकोरों की तरह लगनेवाली उस स्वर-लहरी से विभोर हुए देवदत्त ने पूछा, "क्या मांगोगी मुझसे तुम !"

"मेरी आरती की थाली में आपके आंसू गिरें, दुखी लोगों के प्रति आपके हृदय में उमड़ी हुई दया से पगे हुए ! मनस्वी मनुष्यों के आंसुओं में दुनिया को बदल देने की शक्ति होती है, देवदत्तजी !"

"यह सब स्वप्न-रंजन हुआ, नंदा ! दुर्भाग्य से बसू अच्छी नहीं हुई और देवदत्त का जीवन नहीं बदला तो..."

सामने के विवेकानंद के चित्र की ओर देखते हुए उसने उत्तर दिया, "हृदय में संजोकर रखे हुए इस स्वप्न के सारे टुकड़ों को बटोर-कर मैं एकत्र करूंगी और उन्हें मन के एक कोने में बड़ी हिफाजत से रखे रहूंगी। और आगे का स्वप्न देखने के लिए फिर जीवन की कोख में घुस जाऊंगी !"

: ६८ :

भरत की कहानी खत्म हुई। अलसाई हुई मधुरा सो गई। पर कहानी सुनते समय उस बालिका ने सहज जो प्रश्न पूछे थे, नंदा के मन में चक्कर काट रहे थे। "चौदह वर्ष तक पादुकाओं की पूजा करते-करते भरतजी ऊबे क्यों नहीं ?" "वह राजा नहीं बने, यह बात उनकी पत्नी को कैसे अच्छी लगी ?" "वापस आने के बाद राम ने भरत को क्या दिया ?" "चौदह वर्ष के बाद मैं कितनी बड़ी हो जाऊंगी, मौसी ? तुम कितनी बड़ी हो जाओगी ?" इस तरह एक नहीं, दो नहीं, बल्कि अनेक मनमाने प्रश्न !

मधू की चहक के बंद होते ही नंदा को खुला-खुला-सा लगा। सुबह से शान्ति से विचार करने के लिए उसे समय ही नहीं मिला था। अब

उसे पहली बार याद आई वह शाम की घटना। वह मधुरा को लेकर बापू के घर गई थी। दोनों ही सावित्रीबाई की खटिया पर बैठ गई थीं। उनके पैरों पर से हाथ फेरते हुए नंदा ने पूछा, "कैसी तबीयत है आपकी?" चेहरे पर मंद मुस्कराहट लाते हुए सावित्रीबाई ने उत्तर दिया, "बहुत अच्छी!" तुरंत मधुरा ने नंदा से प्रश्न किया, "क्या ये तुम्हारी मां हैं?" नंदा ने स्वीकार में गर्दन हिलाई। यह देखकर कि सावित्रीबाई की आंखें मधुरा पर टिकी हुई हैं, नंदा उससे बोली, "नानी के चरण छुओ, बेटा।" मधुरा उठी। उसने झुककर सावित्रीबाई के चरण छुए। सावित्रीबाई की आंखों के कोने नम हो गए। नंदा ने पूछा, "मां, कैसी है आपकी नातिन?" मंद स्मित करती हुई सावित्रीबाई बोली, "बहुत अच्छी!" पर अब उनकी नज़र नंदा के गले की ओर अटकी हुई थी। उनकी यह धारणा हो गई थी कि मधुरा नंदा की लड़की है! लड़की तो सामने दीख रही है, पर मां के गले में मंगलसूत्र नहीं! इन बातों का मेल वह अपने मन में जमा नहीं पा रही थी। वह सिर्फ उसके खाली गले की ओर देखती रही।

इस याद ने नंदा को क्षण-भर के लिए गुदगुदा दिया, पर तुरंत ही उसे ऐसा लगने लगा जैसे उसका दम घुट रहा हो। देवदत्त से दलीलें करनेवाली शाम की पंडिता जैसे परदे की ओट में चल दी। उसका स्थान गुड़िया को बगल में लेकर सोनेवाली नंदा ने ले लिया। बात-की-बात में उस गुड़िया की मधुरा हो गई वह। छोटी नंदा की बड़ी नंदा हो गई! अपने जीवन के विषय में वह विचार करने लगी। अनजानी चिंता से उसका मन भर गया।

वह उठी। बाहर बरामदे में गई। बाहर की ठंडी हवा से उसे बहुत अच्छा लगा। उसने ऊपर देखा। आकाश में तारों के मोती सर्वत्र बिखरे हुए थे। पश्चिम की ओर शुक्र चमक रहा था, जैसे मोतियों से भरी हुई थाली में बीच ही में दीखनेवाला बड़ा-सा हीरा!

वायु की लहरों पर से मधुर स्वर रुनझुन करते आने लगे, देवदत्त के बंगले की तरफ से। वह तनिक आगे बढ़ी। सितार के बोल थे वे! नंदा खुश हो गई। देवदत्त का मन उल्लसित हो गया है। इसका लक्षण

था वह। वह एकाग्र मन से सुनने लगी। उन मधुर जालीदार स्वरों के परदे की ओट में छुपे हुए शब्द भी सुंदर होंगे। धीरे-धीरे फलक पर जिस तरह चित्राकृति बने, उसी तरह उन सुरों ने उसके मन में शब्दों का रूप धारण किया। "मोगरा फूला ऽ ऽ, मोगरा फूला !"

: ६९ :

"दीदीजी, दीदीजी," इन पुकारों से वह जाग उठी। उसने कलाई की घड़ी की ओर देखा। सवा चार बजे थे। फिर बाहर से पुकारें सुनाई पड़ीं, "दीदीजी, दीदीजी !"

वह जल्दी-जल्दी उठी। दरवाजा खोलकर बाहर गई। देवदत्त का नौकर दरवाजे में खड़ा था। "क्या है रे?" नंदा ने सशंक स्वर से पूछा। "सरकार का कहीं पता नहीं, दीदीजी !"

"मतलब ?" इस प्रकार के भयंकर उद्‌गार निकालकर नंदा देवदत्त के बंगले की ओर चल दी।

चलते-चलते नौकर कहने लगा, "सरकार रात ग्यारह बजे तक जाग रहे थे। वह लायब्रेरी में गये। फिर सितार बजाते रहे। ग्यारह बजे मैं सो गया। जागने पर देखा कि बैठकखाने में रोशनी हो रही है। दरवाजे पूरी तरह खुले हुए हैं। भीतर जाकर देखा, पर वहां सरकार नहीं थे! लायब्रेरी में गया। वहां भी वह नहीं थे! सब तरफ खोजा। पर किसीको भी उनका कोई पता नहीं। इसलिए फिर आपके पास दौड़ा आया।"

धड़कते कलेजे से नंदा जैसे-तैसे उसकी बातें सुन रही थी, पर कदमों के बैठकखाने में पड़ने से पहले ही उसका मन नाना प्रकार की कुशंकाओं से भयभीत हो गया था।

बैठकखाने के मध्य भाग में बड़ा लैम्प जल रहा था। उस स्वच्छ प्रकाश में उसने चारों ओर देखा। कमरे में कुछ परिवर्तन हुआ है, ऐसा उसे लगा। तुरंत ही उसके ध्यान में आया कि सामने जो दो चित्र दीखते थे, उनमें केवल एक ही चित्र दीख रहा है, विवेकानंद का! वह आगे

बढ़ी। उस चित्र के सामने सितार रखा हुआ था। पर हेमिग्वे का चित्र और उसके सामने की बंदूक, ये दो चीजें वहां नहीं थीं ! वह बिलकुल नजदीक गई। सितार के तारों में उलझाकर रखा हुआ एक पत्र उसे दिखाई दिया। उसने वह झट-से निकाला। ऊपर किसीका भी नाम नहीं था। अधीरता से वह पत्र पढ़ने लगी :

"प्रिय नंदाजी,

"इस पत्र को देखकर तुम नाराज हो जाओगी। तुमसे विदा लिये बिना मैं जा रहा हूं। क्षमा कर दो मुझे। सच बताऊं? मुझे यह भय लगा कि मेरा निश्चय तुम्हारी आंखों की एक बूंद में घुल जायगा !

"शाम की तुम्हारी बातें मंदिर के भीतर लगे घंटे के नाद की तरह मेरे अन्तर मन में गूंज रही हैं। बार-बार मुझसे कोई कह रहा है, 'देवदत्त उठ।' पिंजड़े का द्वार आधा खुला हुआ है। चल, देर न कर। बाहर उड़ जा। नीला आकाश तुझे बुला रहा है। तेरी मुक्ति का यह मंगल क्षण है।

"'दूसरों के दुःख का ज्ञान दो हृदयों को जोड़नेवाला सबमें निकट का रास्ता है !' ये तुम्हारे शब्द मेरे मन पर जमे हुए बीस वर्ष के काजल को झाड़कर दूर कर रहे हैं। तुम्हारे हर शब्द की कली मेरे मन में खिल रही है। उसकी खुशबू से मन बेहद मस्त हो रहा है।

"इस विलक्षण मस्ती में एक विलक्षण आभास हो रहा है मुझे-- एक भव्य मंदिर में मैं अकेला ही घूम रहा हूं, दीवार पर के नदी-निर्झरों के साथ गीत गाता हुआ, फलों और फूलों के रंग में रंगकर, छत की नक्काशी में तारों से सजे हुए आकाश को देखता हुआ—देखते-देखते एक बात अलबत्ता बीच ही में मन को खटक जाती। किसी भूताविष्ट कोठी की तरह यह मंदिर खाली-खाली-सा क्यों लगता है ? यहां भक्तों का आना-जाना क्यों नहीं दिखाई देता ?—मंदिर का सौंदर्य देखकर आंखें थक गईं। घूम-घूमकर पैर थक गए। आराम करने के लिए मैं एक सीढ़ी पर बैठने ही वाला था कि आंतों को मरोड़ देनेवाली एक सिसकी मेरे कानों में पड़ती है। मुझसे रहा नहीं जाता। उस दुःख की दिशा में मैं आगे बढ़ता हूं। एक अंधेरे कोने में, निर्माल्य के एक

बड़े-से ढेर की आड़ में, एक वृद्ध घुटनों में गर्दन डालकर सिसकता हुआ मुझे दीखता है। मुझे उसपर दया हो आती है। मैं उसके पास जाकर बैठ जाता हूं। उसकी पीठ पर हाथ फेरता हुआ मैं उससे पूछता हूं—'दादाजी, आपका नाम क्या है?' गर्दन न उठाकर, कांपते स्वर में वह उत्तर देता है, 'परमेश्वर।' —मैं मन में स्तंभित हो जाता हूं। लगता है, यह वृद्ध शायद पागल होगा। मैं डरते-डरते पूछता हूं, 'इतना काहे का दु:ख हुआ है आपको?' गर्दन उठाकर आंसू पोंछता हुआ वृद्ध कहता है, 'मेरे इकलौते लड़के ने मुझे धोखा दिया, मेरा गला काटा। कितने उत्साह से और कितनी आशा से मैंने उसे छोटे से बड़ा किया। पर...' मैं उत्सुकता से प्रश्न करता हूं, 'आपके लड़के का नाम क्या?' लम्बी आह भरकर वृद्ध कहता है, मनुष्य।'

"वसू के डाक्टर मुझसे मिलने आये तब यह आभास विलुप्त हो गया—मन को अधिक बेचैन करके। बुद्ध, ईसा, गांधी, स्विटजर, विवेकानंद—अगनित नाम याद आये। कितने संतों ने, कितने फरिश्तों ने, कितने महात्माओं ने, कितने समाज-सेवकों ने परमेश्वर के आंसुओं को आजतक पोंछा होगा, पर वे अभी तक बह रहे हैं—लगातार बह ही रहे हैं।

"यह इसी तरह चलेगा। युग के बाद युग आये और चले गए। तब भी परमेश्वर को हमेशा रुलानेवाले और उसके आंसुओं को पोंछने की कोशिश करनेवाले मनुष्य के ये दो वर्ग इस दुनिया में हमेशा होने चाहिए—क्या यही सृष्टि का संकेत है?

"अपने ऊपर से कहता हूं मैं, नंदा, मनुष्य स्वभावतः क्षुद्र है, स्वार्थी है, अहंकारी है, सुखलोलुप है। नाना प्रकार की वासनाओं से लथपथ है। संस्कृति ने उसे जो सात्विक मुखौटे दिये हैं, उन्हें लगाकर वह आजकल दुनिया में विचरण कर रहा है। पर मुखौटों से मन नहीं बदल जाते। मनुष्य के उद्दाम मनोविकारों को उत्कट करुणा का जोड़ मिलना चाहिए। "तत्वमसि"—ऐसी सहानुभूति देनेवाली करुणा—'बट फॉर द ग्रेस गॉड, देयर गो आई,' ऐसा लगने को मजबूर कर देने वाली करुणा। यह करुणा न हो तो मनुष्य पशु हो जायगा। पैशन

एण्ड कम्पैशन मस्ट गो हैण्ड इन हैण्ड।

"मनुष्य का मन बदलने पर ही यह दुनिया बदल सकेगी। उसके अन्दर का दुःख कम हो जायगा। पहले मनुष्य का मन बदलना चाहिए। देवदत्त को प्रामाणिकता से यही लगता है न? तो उसे इस प्रयोग की शुरूआत स्वयं से ही करनी चाहिए।

"मैं सोचता रहा। परमेश्वर के आंसू पोंछनेवाले लोग इस दुनिया में थोड़े होंगे, पर उनका आनन्द अलौकिक होना चाहिए। सर्वस्व समर्पित कर देने की मस्ती मानवता के प्रति प्रेम की मस्ती—मैं कितना अभागा हूं! इस मस्ती का अद्भुत आनन्द मुझे कभी नहीं मिला। बापू जैसा दरिद्री मनुष्य देशभक्ति के रूप में उसे यथेष्ठ चखे, और जमींदार देवदत्त को उसका दर्शन भी न हो!

"अंधेरा कभी का हो चुका था, पर किसी भी तरह विचार-चक्र का भ्रमण रुक नहीं रहा था। मैं उठा। लायब्रेरी में गया। पर आज सारी 'प्रिय पुस्तकें मेरे लेखे अप्रिय हो गईं। वापस लौट आया। कितने ही दिनों बाद सितार हाथ में लिया। कुछ क्षण के लिए मन के बिच्छू ढीले पड़ गए। सितार मूक हुई और बिच्छुओं ने फिर अपने डंक उठाए।

"मैं अपनेको हमेशा अभागा मानता आया—अश्वत्थामा की तरह। एकाकी, परित्यक्त, बहिष्कृत, सब लोगों से सब दृष्टि से वंचित। स्वयं के ही दुःख के पोखर में मैं आठों पहर डूबा रहा—वहां के कीचड़ को कुरेदता हुआ।

"आज प्रथम बार ही मैंने यह जाना कि अश्वत्थामा ने जो भोगा, उसमें उसका भी उतना ही दोष है जितना भाग्य का। उसने पांडवों से जो बदला लिया, वह अमानुषिक था। एक अंधे मनोविकार के नंगे नाच के सिवा वह दूसरा और क्या था? उस बदले ने ही उसकी बलि ली। चिरजीवन का अभिशाप क्या उस अकेले को ही मिला है? छः महान सहप्रवासी अनन्त काल की इस यात्रा में उसके साथ हैं, सर्वस्व रूप में निरपराधी होते हुए भी। फिर अश्वत्थामा अपना ही दुःख चिरकाल तक क्यों सहता रहे? जन्म लेनेवाला प्रत्येक मनुष्य अपनी-अपनी तरह से शापित होता है। अश्वत्थामा का पिता द्रोण क्या कम अभागा था? इस विद्वान

किन्तु गरीब ब्राह्मण को द्रुपद के दरबार में अपमानित होना पड़ा। दरिद्रता ने उसे कौरवों के आश्रय में जाने के लिए बाध्य कर दिया। पेट ने पाप से उसका हमेशा के लिए रिश्ता जोड़ दिया। केवल लड़के के प्रेम के कारण "अश्वत्थामा मर गया" की पुकार कानों में पड़ते ही उसने हथियार डाल दिये। मृत्यु के लिए रास्ता साफ कर दिया। इसमें का कौन-सा दुःख अश्वत्थामा ने बांट लिया? वह सदैव अपने-आपमें ही उलझा रहा। अभी भी वह उसी तरह है—मस्तक पर लगे घाव की वेदना कम हो, इसलिए तेल की भीख मांगता हुआ मारा-मारा घूम रहा है।

"मैं भी उसीकी तरह जिया--हर क्षण अपने ही दुःख को सहलाता हुआ, क्षुद्र और क्षणिक सुखों का प्राणपण से पीछा करता हुआ। मनुष्य का छोटा सा दुःख दुनिया के बड़े दुःख में मिल गया, कि उसे सुख का स्वाद आता है, यह मैं कभी न जान पाया।

"नंदाजी, मैं जा रहा हूं उस स्वाद को चखने दुनिया के दुःखों के नजदीक आकर उनका दर्शन करने। पहले मैं ऋषिकेश जाऊंगा, लक्ष्मण झूला के पास दोपहर की चिलचिलाती धूप में भीख मांगने बैठे कोढ़ियों से मिलने। 'हमारा और तुम्हारा भाई-भाई का रिश्ता है', ऐसा उनसे कहने के लिए और यह देखने के लिए कि उनका दुःख मैं किस तरह हलका कर सकता हूं। फिर...

"डाक्टर का मत है कि वसू को शॉक ट्रीटमेंट देना होगा और उसे पूरी तरह अच्छा होने के लिए साल-छः महीने लगेंगे। इस अवधि में अगर मैं यहां रहा तो लोगों को अकारण ही अनेक कुतर्क करने के मौके मिलेंगे। मेरे लिए वैसे तुम कोई भी अग्नि-परीक्षा देने को तैयार हो, यह सच है। फिर भी...

"वसू के अच्छे होने तक मैं देश-भर में घूमता रहूंगा। पहले की तरह—बिलासपुर के जमींदार की हैसियत से नहीं, बल्कि विशाल जन-सागर की एक छोटी-सी बूंद की हैसियत से—सब तरफ फैले हुए दुःख को देखता हुआ—आंखों में आनेवाले आंसुओं से स्वयं के पापों को धोता हुआ।

"मेरी चिंता मत करना। देवदत्त कहीं भी रहे, पर उसके हाथ से कहीं भी ऐसा कोई काम नहीं होगा, जिससे तुम्हें दुःख हो। इस विषय में तुम अब बिल्कुल निश्चित रहो। अपनी इस तीर्थयात्रा पर बाह्यतः मैं अकेला ही जा रहा हूं, परंतु मेरे साथ छाया के रूप में नंदा रात-दिन रहेगी, इस विषय में मैं निःशंक हूं।

"एक पगली आशा का अंकुर भी मन में पैदा हुआ है। मेरे इस भ्रमण में मुझे कहीं-न-कहीं मेरी मां मिलेगी। कौन कह सकता है कि न भी मिले! पांच-छः महीने पहले यदि कोई मुझे भविष्य बताता कि तुम मेरे जीवन में आओगी, तो मैं उसकी पागलों में गिनती करता।

"मां मिली तो उससे मैं एक ही बात कहूंगा, "मां, तुम्हें लगता है कि इस दुनिया में सभी गुनहगार हैं। पर सच बताऊं? इस दुनिया में कोई भी गुनहगार नहीं।"

तुम्हारा
देवदत्त"

पत्र लेकर नंदा बाहर निकली।

बाहर फैली हुई रात उसे कोख में सोये हुए बालक की ओर स्निग्ध दृष्टि से देखनेवाली मां की तरह लगी। अनजाने उसे उस दूसरी भयानक रात का स्मरण हो आया। आत्म-हत्या करने के लिए समुद्र में एक-एक कदम आगे बढ़ानेवाली नंदा उसकी आंखों के सामने मूर्त हो उठी, पर किसी भी तरह उस नंदा को वह पहचान नहीं पा रही थी! वह अपने-आप ही हँस पड़ी।

उल्लसित मन से उसने ऊपर देखा। भिन्न-भिन्न प्रकार के फूलों से भरी हुई चंगेरी की तरह आकाश दीख रहा था। पूर्व की तरफ चमकनेवाला शुक्र उस चंगेरी के मोगरे के फूल की तरह लग रहा था। वह गुनगुनाने लगी :

"मोगरा फूला, मोगरा फूला।"

मण्डल द्वारा प्रकाशित

उपन्यास साहित्य

❑

- मेघ मल्हार
- विराट
- आँचल और आग
- प्रेम की देवी
- सुल्तान और निहालदे
- अग्निशिखा
- गौर प्रिया
- अथाह की थाह
- भाग्य की विडम्बना
- ज़िन्दगी दाँव पर
- प्रेम और प्रकाश
- तूफान और ज्योति
- चट्टान नहीं पिघलती
- अमृतघट
- कित्तूर की रानी
- ज्वालामुखी
- प्रेम प्रपंच
- नवीन यात्रा
- भोर की आहट
- राजकुमार की प्रतिज्ञा
- मोगरा फूला

❑ ❑

ISBN 81-7309-029-7

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन